प्रकाशक—
मागीलाल अमरचन्द लोढ़ा,
ब्यावर (अजमेर)

प्रथम आवृत्ति, ५००	मूल्य १॥)	संवत् २००८ कार्तिकी पूर्णिमा

"जीवन चरित्र महापुरुषों के,
हमें शिक्षा देते हैं।
हम भी अपना अपना जीवन
स्वच्छ रम्य कर सकते हैं।"

मुद्रक—
श्री आत्मसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
ब्यावर में मुद्रित

धन्यवाद !

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन धर्मप्रेमी दानी सज्जनों ने अपना आर्थिक सहयोग दिया है, वे धन्यवाद के पात्र हैं। उनकी शुभ नामावली नीचे दी जाती है—

१०१) श्रीमान् गुमानमलजी रंगरूपमलजी सिंघी
सोजतसीटी (मारवाड़)
२०१) श्रीमान् मायाकराजजी विसनराजजी भण्डारी,
(सोजतसीटी) (मारवाड़)
१०१) श्रीमान् चौसालालजी मुकनराजजी
सोजतसीटी (मारवाड़)
१०१) श्रीमती सूरजकुंवरबाई
१०१) गुप्तदान, ब्यावर की एक बहन की ओर से।
५१) श्रीमती राजकुंवरबाई कोठारी इन्दौर, (मध्यभारत)
५१) श्रीमान् छगनमलजी रेखचन्दजी बगड़ी, (मारवाड़)
१५१) „ मांगीलाल अमरचन्द लोढ़ा,
ब्यावर (प्रकाशक)

कुल ८५८) रु०

इस पुस्तक के प्रकाशन में करीब १२२५) खर्च हुए हैं उनमें से ८५८) विविध सज्जनों की ओर से प्राप्त हुए हैं। ५०० पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें आर्थिक सहायता देने वालों को और कुछ पुस्तकें लायब्रेरियों व संस्थाओं को भेजी जायगी। शेष पुस्तकों की बिक्री होने पर बचत के रुपये पुनः साहित्य कार्य म या किसी शुभकार्य में खर्च कर दिये जायेंगे।

निवेदक—
मांगीलाल अमरचन्द लोढ़ा
(प्रकाशक)

प्रवर्तिनीजी के देहावसान पर सतियों के नाम पर पूज्यश्री गणेशीलालजी म० की ओर से शुभ-सन्देश

महासती प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुंवरजी म० के देहत्याग के समाचार सुन कर मेरे हृदय में महती कष्टानुभूति हुई। उनका अभाव सम्पूर्ण समाज के लिए एक महान् क्षति के रूप में उपस्थित हुआ है। मेरे हृदय पर उनके वियोग का जो गहरा असर हुआ है, उसे किसी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके आज्ञाकारिता, संयमवृद्धि की अभिरुचि, सरलता, कष्ट सहिष्णुता आदि गुण तथा उनके चेहरे की सौम्यता, सब पर मातृवत् प्रेम आदि भुलाये नहीं जा सकते। सम्प्रदाय की व्यवस्था को उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से निभाया था। आज आप सभी को भी उनके वियोग का खेद है। पर वह महान् आत्मा जिन कार्यों को संभाले हुए थीं, उनके वियोग में उन कार्यों का उत्तरदायित्व पीछे रहने वालों के कन्धों से हट नहीं जाता, किन्तु दुगुने रूप से बढ़ जाता है। अतः महासतीजी के वियोग में शांति का एकमात्र मार्ग यही है कि उनके न रहने पर आप सब पहले से भी अच्छी तरह सम्प्रदाय की वृद्धि, वृद्ध सतियों की सेवा, सम्प्रदाय के नियम-पालन में दृढ़ता और संयम की वृद्धि करते हुए बड़ों की आज्ञाकारिता की ओर अधिकाधिक ध्येय रक्खें। आप सबके प्रति प्रवर्तिनीजी के अभाव में मेरा भी उत्तरदायित्व बढ़ गया है। उनके रहते हुए मैं निश्चिन्त था। मेरी इच्छा थी कि उनसे एक बार मिल कर एकता के लिये प्रारंभिक कार्य की फिर आगे बढ़ाऊं। पर मैं उनसे नहीं मिल सका, मेरे दिल की दिल में ही रह गई। अब इस कार्य में हाथ बटाना आपका ही कार्य है। मुझे आशा है आप सब उनके उठाये हुए कार्य को अच्छी तरह निभायेंगी।

(—'जैन प्रकाश' ता० १४-६-५१ में से)

पं० रत्न मुनिश्री मिश्रीमलजी म० का अभिमत

स्व० साध्वीजी श्री आनन्दकुमारीजी बहुत उच्च-चारित्र शीला आर्या थीं। समाज में उनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी। सतीजी की शान्तमुद्रा ने जन समाज को अपनी ओर अत्यधिक आकर्षित कर लिया था। उनके पास पहुँचने वाले व्यक्ति को बड़ा अच्छा आनन्द मिलता था, इसीलिए उनका 'आनन्द' नाम भी 'यथा नाम तथा गुण' को चरितार्थ करने वाला था।

सतीजी में नम्रता का गुण भी बड़ा अच्छा था। शरीर की अस्वस्थता के कारण व कई दिनों से ब्यावर ही विराज रही थीं, समय समय पर सुख-शान्ति पृच्छा के निमित्त से कई बार मुझे अपने श्रद्धेय पूज्य गुरुवर्य श्रीहजारीमलजी म० के साथ उनके यहाँ आने का अवसर मिलता रहता था। उस समय सतीजी की विवेकपूर्ण नम्रता को देख कर हृदय में बड़ा आनन्द आता था।

उक्त सतीजी का यह जीवन-चरित्र प्रकाश में आ रहा है। इसके लेखक पण्डित मुनिश्री नेमिचन्द्रजी म० हैं। श्रीयुत मुनिश्री अपनी समाज के एक बड़े अच्छे उदीयमान विद्वान्, विनम्र और विवेकशील मुनिराज हैं। लेखन पर भी आपका खासा अच्छा अधिकार है।

आशा है पं० मुनिश्री नेमिचन्द्रजी म० की सुन्दर लेखनी से लिखा हुआ यह चरित्र सतीजी के जीवनसौरभ को समाज के प्रांगण में अधिक से अधिक वितरित करेगा।

—पं० मुनि मिश्रीमलजी 'मधुकर'
न्याय काव्य-तीर्थ

अभिनन्दन

"भारतीय संस्कृति पुरुष प्रधान है" — ऐसी कुछ धुंधले तथा दुर्बल मन-मस्तिष्कों की आवाज है। परन्तु, जैन संस्कृति एवं जैनधर्म की मूलधारा की तात्त्विक अथच वास्तविक चिन्तनिका ने ऐसे अभद्र तथा तत्त्वविहीन विचार को ललकार कर महान् चुनौती दी है। उसने सत्य की भाषा में कहा है कि "पुरुष और नारी दोनों जागतिक रंगमंच पर समकक्ष अभिनायक के रूप में अवतरित हुए हैं। उन में छोटे बड़े और उच्चावच भाव के भेद-भरे प्रश्न को अवकाश देना आत्मा का घोर अपमान करना है, उसे मानवोचित अधिकारों से वंचित करना—अपनी दरिद्र विचारधारा का खुला परिचय देना है। धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्र में पुरुष तथा नारी प्रगति की सड़क के अमर राहगीर बनकर अपने अपने कर्तव्य का पूर्ण परिचय दे सकते हैं। पुरुष के समान नारी भी मंजिल के लक्ष्य बिन्दु की ओर अपने शानदार कदम बढ़ा कर विकास की सर्वोच्च परिणति एवं भूमिका को समाप्त कर सकती है।"

जैनधर्म का यह महास्वर केवल मन-मस्तिष्क के पुर्जों से ही टकराकर रह गया हो—ऐसी बात नहीं है। उसने इस स्वतन्त्र विचारधारा को आचार का साकार रूप प्रदान कर नारी-जीवन के मूल्य का रचनात्मक एवं सही आकलन करके, विश्व के समक्ष एक स्वतन्त्र आदर्श प्रस्थापित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में जैन जगत की एक ऐसी तेजस्विनी सती साध्वी के जीवन की झाँकी का रूप-दर्शन कराया गया है, जिस

के विचार एवं आचार में जीवन के आदि काल से ही सबलता थी, प्रखरता थी, चमक थी, तेजस्विता थी। उस जीवन में जब अन्तर्जागरण की गहराई, अंगड़ाई आती है तो वह महान् आत्मा विश्व के पार्थिव बन्धनों को तोड़कर त्याग-वैराग्य तथा संयम के महापथ पर निर्भयभाव से निकल पड़ती है—एक संयम साधक के रूप में। आप जानते हैं कि संयम का मार्ग कोई फूलों का बिछौना नहीं है, वह तो काँटों से भरा पथ है। अतः पग पग पर काँटे और विघ्न अपना विकराल कराल रूप लेकर आए, प्रलोभन अपना मनोमोहक रूप बना कर आँखों के सामने नाचे, एकाधिकवार विकट उलझनें आगे आकर खड़ी हुईं। पर, मजाल उस संयम की अटल पुजारिणी के मन-वचन-काया में चलभाव का जरा भी स्पन्दन आया हो। उसकी एक मधुर मुस्कान ने काँटों को फूल बना दिया, उसके वज्र धैर्य ने विघ्नों की पर्वतमाला को समतल पगडंडी के रूप में बदल दिया।

वह संयम के उस महामार्ग पर स्वयं भी अटल अचल भाव से आगे बढ़ती रही तथा अपने जीवन की दिव्य सुगन्ध से आसपास के वातावरण को महकाती हुई, अपने संगी साथियों को भी उत्स्फूर्त बनाती रही। वह एक ऐसी जलती हुई मशाल थी, जो जीवन-पर्यन्त अन्धकार से टक्कर लेती रही और इधर-उधर सब ओर निरन्तर प्रकाश की जाज्वल्यमान किरणें बिखेरती रही।

उसका हृदय 'वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि मृदुल' था। जहाँ संयम, त्याग-वैराग्य की कसौटी का प्रश्न आया, वहाँ वह धैर्य की कृपाण हाथ में लेकर अविगभाव से जीवन के चौराहे पर स्थिरता का प्रतीक बन कर खड़ी रही। परन्तु जहाँ दूसरों की रक्षा, दयाभाव एवं जीवन की अन्य समस्याओं का प्रश्न

आया, वहाँ वह फूल बन कर कोमलता को दोनों हाथों से लुटाती रहीं, उदारता को मुक्त कर से बरसाती रहीं।

जैन जगत् के उदीयमान लेखक पं॰ मुनिश्री नेमिचन्द्रजी ने उस महामहिम आत्मा का चरित्र चित्रण कर अपनी प्रौढ़ लेखनी का एक अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। दूसरे स्पष्ट शब्दों में कह दूं तो उस शान्त-दान्त आत्मा के प्रति एक तरह से अपना श्रद्धा अदा किया है। उनकी फड़कती हुई लेखनी की पैनी नोक से अंकित यह जीवन का सच्चा रूप जन-मन-नयन के समक्ष साकार होकर नाचने लगता है। अनुशीलन-परिशीलन करते करते चरितनायिका की शान्त-दान्त मूर्ति आँखों में मूर्तित हो उठती है।

आशा है यह ज्योतिर्मय जीवन अन्धकार से परिव्याप्त जन-मानस में त्याग वैराग्य की जीवित ज्योति जगा सकेगा।

लोढ़ा धर्मशाला
अजमेर
१२-११-५१

उपाध्याय अमर मुनि

प्रकाशकीय निवेदन

स्वर्गीय प्रवर्तिनी महासती श्री आनन्दकुमारीजी म० का स्थानकवासी समाज में एक विशिष्ट स्थान था। वे तेजस्विनी, शान्तमूर्ति और मधुरभाषिणी साध्वी थीं। उनके जीवन में एक ऐसा आकर्षण था जो मनुष्य को बलात् अपनी ओर खींच लेता था। वे महान् होती हुई भी अभिमान से दूर थीं।

प्रवर्तिनीजी म० के समग्र जीवन के सम्बन्ध में लिखने का यहां अवकाश नहीं है। उनका जीवन कैसा था, यह तो जीवन-चरित्र के पृष्ठों को पढ़ने पर ही भलीभाँति जाना जा सकता है। प्रस्तुत जीवन-चरित्र के लेखक हैं-श्रद्धेय गुरुदेव जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज के सुशिष्य पं० मुनिश्री नमिचन्द्रजी म०। उन्होंने प्रवर्तिनीजी म० के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का बड़ा ही आकर्षक एवं रोचक वर्णन किया है। पाठक पढ़ते समय ऊबता नहीं। साथ ही उनके जीवन की घटनावलियों को लेकर प्रसंगोपात्त कल्याण-प्रद शिक्षाओं की धारा भी बहाई है। जो पाठकों को कल्याण की ओर प्रेरित करने में काफी सहायक बनेगी।

स्व० महासती प्रवर्तिनीजी म० कई बार ब्यावर पधार चुकी थीं। यों तो प्रवर्तिनीजी का हमसे पहले ही से परिचय था। आप जब सं० २००१ में ब्यावर पधारीं तो वृद्धावस्था के कारण आपकी शारीरिक कमजोरी बढ़ती जारही थी, ब्यावर श्री संघ ने आपको यहीं विराजने के लिए आग्रह किया। आप श्रीसंघ

की आग्रहपूर्ण विनती को मानकर यहीं विराजने लगीं। तब से तो हमें आपश्री का अधिकाधिक परिचय होता गया और आपके प्रति हमारी भक्ति दिनोंदिन वृद्धिंगत होती गई।

सं० २००६ में गुरुदेव श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी म० का चातुर्मास जयपुर था। चातुर्मास के अनन्तर पूज्यश्री ने यहाँ से अत्रविराजित वृद्ध-सन्तों की सेवा और अध्ययन दोनों प्रमुख कार्यों के लिए पं० मुनिश्री नेमिचन्द्रजी म० और सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्द्रजी म० को यहाँ भेजे। मुनिश्री नेमिचन्द्रजी सेवा के साथ ही जैनन्याय और हिन्दी-साहित्य का अध्ययन करते थे।

सौभाग्य से इसी वर्ष सं० २००७ में उपाध्याय कविश्री अमरचन्द्रजी म० का चातुर्मास ब्यावर हुआ। चातुर्मास में मुनिश्री का आप से अध्ययनादि का अच्छा अवसर मिल गया। कविश्री म० ने मुनिश्री की लेखनशक्ति देख कर कहा—'आप विशेष रूप से कोई एक चीज लिखने का प्रयत्न करें, जिससे आपकी शक्ति का अधिक विकास होगा।

इधर श्रीमती प्रवर्तिनी महासती श्री आनन्दकुमारीजी म० की शिष्याएँ सुगुनकुमारीजी, सम्पत्कुमारीजी, गुलाबकुमारीजी आदि साध्वियों ने एक दिन अपने लिखे हुए जीवन-चरित्र के संक्षिप्त नोट्स पं० मुनिश्री नेमिचन्द्रजी को बतलाए और कहा—यदि आप इन नोट्स के आधार पर साहित्यिक ढंग से सुन्दर जीवन चरित्र लिखने की कृपा करें तो यह समाज सेवा का एक बहुत अच्छा कार्य होगा। पण्डित मुनिश्री नेमिचन्द्रजी को साध्वियों की प्रेरणा तो थी ही, साथ ही मुनिश्री इन्द्रचन्द्रजी म० ने भी उन्हें लिखने के लिए प्रेरित किया और कहा—आप समय की कोई चिन्ता न करें, और जीवनचरित्र लिखना प्रारम्भ कर

दें, मैं आपका सेवादि-कार्य सम्भाल लूंगा। इस तरह मुनिश्री ने चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर इसे लिखना प्रारम्भ कर दिया।

जीवन-चरित्र की अधिकांश घटनाएँ प्रवर्तिनीजी म० की उक्त शिष्याओं ने उनसे पूछ-पूछ कर अपनी ओर से नोट करके मुनिश्री को दी थीं, कुछ घटनाएँ समय समय पर पं० मुनिश्री ने स्वयं पूछ कर नोट करके लिखी है। यद्यपि प्रवर्तिनीजी म० अपने जीवन की घटनाओं को बताने में अत्यन्त संकोच का अनुभव किया करती थीं, फिरभी जीवन चरित्र में घटनाओं की पूर्णता और विपर्यास होने के डर से उन्हें पूछकर लिखना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त पं० मुनिश्री के द्वारा एक एक प्रकरण लिखे जाने के बाद म प्रवर्तिनीजी की शिष्याओं न उन्हें दो दो बार पढ़कर सुना दिया है। इस तरह जिस उत्साह के साथ पं० मुनिश्री ने इस जीवन चरित्र को लिखने का कार्य हाथ में लिया, उसी उत्साह से उसकी पूर्णाहुति की। पं० मुनिश्री ने यह कार्य समाज-सेवा और जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही किया है।

इस प्रकार यह जीवन चरित्र हमें प्राप्त होगया है। हमने इसे आद्योपान्त पढ़ा और इसमें कहीं शास्त्रीय, ऐतिहासिक, या भाषा की दृष्टि से भूल न रह जाय इस विचार से श्रद्धेय गुरुदेव जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी म० को दिखाया। उन्होंने अपना अमूल्य समय निकाल कर इस का अवलोकन किया और यथास्थल आवश्यक संशोधन करने के लिए सूचना भी दी। कवि रत्न उपाध्यायश्री अमरचन्द्रजी म०, उनके शिष्य मुनिश्री विजयचंद्र जी म० ने भी इसे देखा और आवश्यक सुझाव दिए। तथा पण्डित रत्न मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज ने भी जीवन चरित्र का अवलोकन किया है। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। इसके

पाद जैन गुरुकुल ब्यावर के प्रधानाध्यापक पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल 'न्यायतीर्थ' ने भी इसका आद्योपान्त अवलोकन करके कई स्थलों पर संशोधन किया। अतः पण्डितजी के हम हृदय से कृतज्ञ हैं। इस प्रकार यह जीवनचरित्र तैयार होगया।

इसी बीच महोदय प्रवर्तिनी म० का स्वर्गवास होगया। हमारी इच्छा प्रवर्तिनीजी म० की स्मृति के रूप में इसे अपनी ओर से प्रकाशित करने की हुई और 'गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस' में इसे दे दिया गया। और यह प्रकाशित होकर आपकी सेवा में पहुँच रहा है। कागजों की महगाई तथा दुष्प्राप्यता के कारण पुस्तक जैसी चाहिए वैसी सुन्दररूप में नहीं निकाल सके हैं। पुस्तक के मुद्रण एवं संशोधन के लिए हम 'गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस' के मैनेजर श्रीशांतिलाल वनमाली सेठ के हृदय से कृतज्ञ हैं, जिन्होंने दिलचस्पी के साथ अपने कर्त्तव्य को निभाया है। पुस्तक के मुद्रण एवं संशोधन सम्बन्धी कुछ भूलें रही हों, उनके लिए प्रेमी पाठक हमें क्षमा करेंगे। आशा है विचारशील पाठक इस कमी की ओर ध्यान न देते हुए सुधार कर पढ़ेंगे और इस जीवन चरित्र से अधिकाधिक शिक्षा ग्रहण करेंगे।

निवेदक

कार्तिकी पूर्णिमा
२००८

मांगीलाल अमरचन्द लोढ़ा
ब्यावर

विषयानुक्रमणिका

प्रवेश

गगन के विशाल वक्षस्थल पर असंख्य तारागण उदित होते हैं और अस्त हो जाते हैं, परन्तु उनसे प्रकृति में कोई खास परिवर्तन नहीं होता। बहुतों के सम्बन्ध में तो पता भी नहीं चलता कि वे उदित हुए भी या नहीं? विश्व ने उनका न उदय होना जाना, न अस्त होना ही। परन्तु इन सब से विलक्षण चन्द्र का जब काली अंधेरी निशा को चीर कर उदय होता है तब क्या होता है? नीतिकार तो उस समय चुप नहीं रहते, वे कहते हैं—

''एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च''

'एक ही चन्द्रमा जब उदित होता है तो सारा का सारा अन्धकार नष्ट कर देता है, परन्तु हजारों तारे मिलकर भी उसे नष्ट नहीं कर सकते।'

सचमुच, चन्द्रमा का प्रकाश ऐसा ही है। पूर्व दिशा के कमनीय अंक में से जब चन्द्रदेव अपना उज्ज्वल प्रकाशमान मुख मण्डल लेकर बाहर झांकते हैं तो विश्व का दृश्य कुछ और का और हो जाता है। जुगनुओं का प्रकाश फीका पड़ जाता है। तारे भी मन्द पड़ जाते हैं। समुद्र का जल, उस समय हिलोरें लेने लगता है मानो वह हर्ष से उछल रहा हो। जगलों और उपवनों के दृश्य का तो कहना ही क्या? वहाँ की वन्य औषधियाँ और जड़ी बूटियाँ इसे ही अपना जीवनाधार और जीवनदाता मानती

हैं। जिन्हें चन्द्रोदय देखने का सौभाग्य मिला है, वे जानते हैं कि वह कितने प्राणियों को अपनी शीतलता और जीवन प्रदान करता है ! छोटे-छोटे बच्चे अपनी माता से हठ ठान कर बैठ जाते हैं और कहते हैं—'माँ, मैं चन्दामामा लूँगा।' यह क्यों ? बच्चा स्वभावत सुन्दर और निर्मल वस्तु की ओर आकर्षित होता है। और जो अपने उत्तम प्रासादों या पर्वत शिखरों पर चढ़कर इसके सुरम्य रूप का निरीक्षण करते हैं, वे जानते हैं कि चन्द्रोदय विश्व प्रकृति का कितना महान्, कितना विलक्षण चमत्कार है ! कवियों की तूलिकायें भी चन्द्रोदय के रमणीय रूप को देखकर द्रुतगति से चलने लगती हैं। उनके हृदय में भी भावों का प्रवाह उमड़ आता है।

हाँ, तो जगत् के इस विशाल प्राङ्गण में भी न मालूम कितने हजार प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं ! कौन किसको जानता है ? यों ही आये, कुछ दिन रहे और भोग-वासना की अँधेरी गलियों में ठोकरें खाकर एक दिन चले गये। जिनका हँसना और रोना प्रथम तो अपने तक ही सीमित रहा और यदि आगे बढ़ा भी तो आसपास के इने-गिने लोगों तक। वे विश्व के सुख दु-ख में संविभागी न बन सके। उन्होंने अपने वंश की यश-पताका नहीं फहराई तो जन्म ही क्या लिया ? वह पैदा होना ही किस काम का ? एक कवि न ठीक ही कहा है—

"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्
परिवर्तिनि संसारे मृत को वा न जायते" ?

पैदा होना उसी का सार्थक है जिसके पैदा होने पर उसका वंश उन्नत हो, संसार में उसका वंश विश्रुत हो, नहीं तो इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं जन्म लेता और कौन नहीं मरता ? अर्थात् सभी जन्म लेते हैं और मरते हैं।

क्या ऐसे व्यक्ति कहीं चमक सकते हैं, जो अपने ही क्षुद्र

स्वार्थ के घेरे में बन्द हों, जो भौतिक जगत् के ही प्रतिनिधि हों ? वे तो अन्धकार में से ही आते हैं और अन्धकार में ही चले जाते हैं। ऐसे लोग अन्धकार के कारागार को क्षण भर के लिए भी नहीं तोड़ पाते।

परन्तु एक वे महान् आत्माएँ होती हैं, जो चन्द्रमा के समान अज्ञान की अंधेरी काली निशा को चीर कर जन्म के समय भी संसार में शीतलता और शान्ति फैलाती हैं और बाद में भी ज्ञान का प्रकाश फैलाती रहती हैं। वे स्वयं अज्ञान तिमिर को ध्वंस करके आध्यात्मिक आलोक से जगमगाती हैं और विश्व की सोई हुई मानवता को जगाने का महान् उत्तरदायित्व पूर्ण करती हैं। उनके दर्शन पाकर मानव-जगत् की जड़ता सहसा पलायमान हो जाती है। समग्र जनता चेतना की एक नई अंग ड़ाई लेने लगती है।

ऐसी आत्माएँ सन्त के रूप में भी आती हैं और सती के रूप में भी। बाह्य शरीर का कोई महत्त्व नहीं, उनके आन्तरिक गुणों का ही महत्त्व है। महाकवि भवभूति ने क्या ही सुन्दर शब्दों में कहा है—

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिङ्गं न च वयः'

गुणियों में रहे हुए गुण ही पूजा के पात्र होते हैं, उनके बाह्य चिह्न—स्त्रीत्व या पुरुषत्व अथवा उम्र का कोई महत्त्व नहीं।

हाँ, तो वे एक महासती हैं, जिनका जीवन मुझे यहाँ अङ्कित करना है। ये वह महासती हैं, जिन्होंने जन्म लेकर अपने समाज, देश, राष्ट्र तथा धर्म की उन्नति के लिए अपनी आत्मा को कष्टों की शय्या पर सुलाया और जनसमुदाय के लिए एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया है कि वह उसके पवित्र चरण-चिह्नों पर चल सकता है और अपनी मञ्जिल प्राप्त कर सकता है। वे संसार से उदासीन, निस्पृह और चरित्रशीला महासाध्वी हैं। उन्होंने

संसार के भोग-विलासों को, चढ़ती हुई तरुणाई में, जब कि सारा संसार मोह-निद्रा में सोया रहता है, ठोकर मारी और जागृत होकर त्याग वैराग्य की कठोर राह ली। उनके संयम के मार्ग में कितने ही विघ्न आए, रोड़े अटके, उन्हें विचलित करने का प्रयत्न भी किया गया; पर सब निष्फल। उन्होंने कष्टों और विघ्नों को हँसते-हँसते सहन किया है।

उनका साध्वी-जीवन स्वच्छ और उज्ज्वल रहा है। वह युग-युग तक आने वाले साधकों और साधिकाओं के लिए मील के पत्थर की तरह मार्गदर्शक रहेगा। ऐसी आत्माएँ ही विश्व की अमूल्य सम्पत्ति होती हैं। ऐसी सम्पत्ति जिस किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को मिल जाती है, वह कितना भाग्यशाली होता है ? सचमुच, जैन समाज ऐसी महासती, महानिधि, को पाकर धन्य धन्य हो गया है।

जैनधर्म में महिलाओं का स्थान

जैनधर्म में महिलाओं को भी वही स्थान प्राप्त है, जो पुरुषों को है। अन्तिम तीर्थङ्कर महाप्रभु महावीर ने, जिनका शासन आज चल रहा है, साधना के लिए दोनों को समान अवसर और अधिकार दिया था। इतिहास के पृष्ठों को जब हम उलटते हैं तो पता लगता है कि आजतक महिलाओं का नाम पुरुषों से कई बातों में आगे ही रहा है। महापुरुषों की वाणी को जीवन में सब से अधिक रूप से उतारने के लिए ये महिलाएँ ही आगे आई। इन्होंने अपने जीवन को भगवान् की अमूल्य वाणी के सहारे सत्कर्म में ढालने का प्रयत्न किया। युगादि-तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव की पुत्री, ब्राह्मी और सुन्दरी ने चारित्र का उज्ज्वल मार्ग अपनाया। वे शिक्षा में, संयम में पुरुषों से एक कदम भी पीछे नहीं थीं। और जब हम उस प्रातःस्मरणीय महासती राजमती का जीवन आगम के पन्नों में पढ़ते हैं तो हमारा हृदय महिला समाज के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठता है। उसने संयम की कड़कड़ाती धूप से तप्त मार्ग पर चलते हुए रथनेमि को, जिसके मन में साधु बन जाने पर भी वासना की चिनगारियाँ दबी पड़ी थीं और जो उस मार्ग से हट जाने को तैयार हो रहा था— मार्गारूढ़ किया। इतना ही नहीं, उस वीराङ्गना ने उस मार्ग भ्रष्ट साधु की वासना की चिनगारियाँ ऐसे उपदेश-जल द्वारा बुझाई कि वे पुनः भभक न उठें। यही तो उस महासती की महा

नता थी। उसके जीवन में संयम का वह तेज चमक रहा था कि उठती हुई तरुणाई में जब कि सारा संसार भोगों की अंधेरी गलियों में ठोकरें खाता फिरता है अथवा वासना की गुदड़ी ओढ़ कर नींद के खुर्राटे लेने लगता है, उसने सब को लात मार दी, और चल पड़ी अपने (लोकोत्तर) प्रियतम का अनुसरण करते, साधना की सम राजवीथी पर। वह पुरुषों से एक इञ्च भी पीछे नहीं थी।

और उस महासती चन्दनबाला के जीवन पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो मालूम होता है, वह एक महाशक्ति थी। उसने जनता के सामने महिला-जीवन का उच्च आदर्श रक्खा था। उस समय, जब कि राजालोगों में धर्म-साधना दबी पड़ी थी। महिलाओं को चन्द चाँदी के टुकड़े फेंक कर खरीदने की एक निन्द्य प्रथा चल रही थी। यह बात उस महाशक्ति को सह्य न हो सकी। उसने अपनी सारी शक्ति उस निकृष्ट प्रथा को सुधारने और महिला-समाज का कल्याण करने में लगा दी और उन सत्ता में मदान्ध राजाओं को भी उसने चुनौती दी कि एक राज कन्या भी अभूतपूर्व कार्य करके दिखा सकती है! यही कारण है कि महाप्रभु महावीर ने बालब्रह्मचारिणी राजकुमारी चन्दन बाला को साध्वियों में सबसे प्रमुखस्थान दिया।

महिलासमाज में जागृति का प्रधान कारण यही है कि भगवान् महावीर ने उस समय के एक विपरीत नारे का जोरों से विरोध किया था। वह नारा वैदिक धर्म की उस संकीर्ण संस्कृति से उठ रहा था। वह था—"स्त्रियों को शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है, वे पुरुषों की अपेक्षा नीची हैं" परन्तु भगवान् महावीर ने चतुर्विध संघ में महिलाओं को भी समान स्थान दिया और कहा—वे भी पुरुषों की भाँति ही अपना कल्याण कर सकती हैं। उनकी धर्म-प्रियता और धर्म में दृढ़ता का सब से प्रमाण

यही है कि भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ—साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका—में सब से अधिक संख्या महिला साधिकाओं की थी। २५०० वर्ष से जब हम उस पाठ को दुहराते हैं तो हमें पता लगता है कि भगवान् महावीर के शिष्य साधु तो १४००० ही थे जब कि साध्वियाँ—आर्याएँ ३६००० थीं। महाप्रभु महावीर ने उन महिलाओं को भी ऊँचा उठाया, जो समाज की दृष्टि से नीचे गिरी पड़ी थीं।

हम देखते हैं कि वे राजरानियाँ, जिनका जीवन बड़े-बड़े राजमहलों में गुजरा था, जिनके एक इशारे पर दास-दासियाँ नाचने को तैयार थे, भगवान महावीर के पवित्र धर्म को भारत के कोने २ में फैलाने के लिये कटिबद्ध होगईं। वे कौन थीं? वे थीं काली, महाकाली, कृष्णा, महाकृष्णा आदि राजवैभव में पली हुई रानियाँ। ये महारानियाँ, जिनका जीवन सुख के पालने में ही भुला हुआ था, जिन्होंने कभी शर्दी-गर्मी के अनुभव नहीं किये थे, लेकिन जब निकलीं तो संसार की विषय-वासना की बेड़ियाँ तोड़ कर ऐसी निकलीं कि उन्हें दुःख क्या होता है, इसका पता भी न चला। वे वीराङ्गनाएँ नंगे पैरों बड़े-बड़े गाँवों, नगरों में भिक्षा पात्र लेकर जनता के सामने आतीं हैं। जिनका हाथ दान देने को तैयार रहता था, आज वे ही कड़कड़ाती हुई धूप और पौष महीने की कड़ी ठण्ड की परवाह न करके भिक्षा के लिए फिरतीं हैं। उन्होंने अपने अन्तिम जीवन को तपस्या की कसौटी पर कस कर शुद्ध स्वर्णमय बना दिया था।

जैन-महिलाएँ तो ऐसी हो चुकी हैं, जिन्होंने अपने धर्म पर दृढ़ रहने के लिए बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहन की हैं। उनके पति दूसरे धर्मों की मान्यता रखते थे, फिर भी वे अपने पवित्र जैनधर्म पर अविचल रहीं। वे भगवान् महावीर के मार्ग पर चलती हैं तो संसार को चुनौती देकर चलती हैं। भगवान् महावीर और

राजा श्रेणिक का इतिहास जैनागमों में बराबर चला आता है। पर उस सम्राट् को भगवान् महावीर के चरणों तक पहुँचाने में किसका हाथ था ? वह कौन थी, जिसने मगध-सम्राट् श्रेणिक का पहले-पहल हृदय पलटा था ? वह थी रानी चेलना। वह जैनत्व की सच्ची पुजारिणी थी। उसकी रग-रग जैनधर्म से ओतप्रोत थी, राजा श्रेणिक को भी उसने अपने पिता के शुद्ध धर्म का मार्ग बतलाया। श्रेणिक पहले दूसरे धर्म की ओर झुका हुआ था। पर रानी चेलना की सुन्दर विचारधाराओं को सुनकर वह जैनधर्म की सड़क पर आ गया था, और बाद में अनाथी मुनि से विशेष बोध पाकर भगवान् महावीर का भक्त बन गया था।

जैनधर्म में ऊँची ऊँची विचारक महिलाएँ भी आईं जो भगवान् महावीर के धर्म को स्वीकार करके चली हैं। भगवान् महावीर के पास आकर जहाँ गौतम जैसे बड़े-बड़े साधक प्रश्न पूछते हैं, वहाँ महान् नारी जयन्ती कुमारी के प्रश्न भी चलते हैं। हमें देखकर आश्चर्य होता है कि उस महान् नारी ने कैसे कैसे जीवन-स्पर्शी प्रश्न किये हैं ? वह पूछती है—'भगवन् ! मनुष्य का दुर्बल रहना अच्छा, या बलवान् ? भगवान् फरमाते हैं—एक दृष्टि से दुर्बल रहना अच्छा, एक दृष्टि से बलवान् रहना ठीक है।' उसका प्रश्न बन्द नहीं हुआ। वह पुन तर्क की पगडंडी पर आकर बोलती है—'से केणट्ठेणं भंते ?' अर्थात् 'भगवन् ! यह कैसे ?'

भगवान्—'जो आदमी पापी है, दुराचारी है, उसका दुर्बल रहना अच्छा है, पर जो संयमी, सदाचारी पुरुष है उसका सबल रहना ठीक है।'

उसने दूसरा प्रश्न भी किया—'भगवन् ! मनुष्य का सोते रहना अच्छा है या जागते रहना ?' भगवान ने इस प्रश्न का भी यही उत्तर दिया। आप सुनकर हैरान होंगे कि एक महलों में

रहने वाली नारी के ये जीवन के छोटे, किन्तु मार्मिक प्रश्न हो सकते हैं ? इससे हमें पता लगता है कि उस समय की महिलाओं का मानस कितना जागृत था, उनकी विचार शक्ति कितनी विकसित थी !

इस तरह हम देखते हैं कि त्याग की दृष्टि से, तपस्या की दृष्टि से, विचारों की दृष्टि से अबला कहलाने वाली उन प्रबला महाशक्तियों ने बड़े-बड़े काम कर दिखाए हैं। वे धर्म-युद्ध के मैदानों में भी डट कर खड़ी रही हैं। पुरुषों की अपेक्षा, जैनसमाज की उन महिलाओं में हमें धर्म की दृढ़ता किसी कदर भी कम नजर नहीं आती।

जैनसमाज में ऐसी-ऐसी महिलायें आई हैं, जो अपने आदर्श पर, अपनी कृत प्रतिज्ञाओं पर डटी रही हैं। उन्हें डिगाने का साहस बड़े बड़े राजाओं और सम्राटों तक को नहीं हुआ।

महासती रंगूजी, जिनके नाम पर वर्त्तमान साध्वी-सम्प्रदाय प्रचलित है, एक ऐसी ही साहसी और दृढ़धर्मा सती थीं। उनको विषय वासनाओं की ओर प्रेरित करने और शील से भ्रष्ट करने के लिए उनकी ससुराल 'धम्मोत्तर' ग्राम के रूप-लोलुप ठाकुर ने तरह-तरह के उपाय किये और बलात् पकड़ कर मंगाने का षड्यन्त्र भी रच लिया, परन्तु उस वीरता की प्रतिमूर्ति सती के रोम-रोम पर शील का रङ्ग छाया हुआ था। वह हटे तो कैसे हटे ? शील के प्रभाव से महासतीजी का बाल भी बाँका न हुआ। कामवासना के रोग से ग्रस्त ठाकुर मन मसोस कर रह गया, उसकी एक भी न चली। आखिर सत्य की विजय हुई। महासतीजी सानन्द अपने पीहर (मायके) नीमच पहुँच गई और थोड़े ही दिनों के बाद त्याग और वैराग्य के उस पुनीत पथ को उन्होंने अङ्गीकार कर लिया। वह एक महासती बन गई और अपने पवित्र गुणों से प्रवर्तिनी-पद को अलंकृत करने लगीं।

आज उन्हीं की पट्टधर वर्तमान महामती श्री आनन्द कुमारीजी हैं। इन्हीं के जीवन चरित्र की पवित्र गाथाएँ लिखने के लिए यह लेखनी तत्पर हुई है। आप जैनसमाज की एक महा शक्ति हैं, त्याग और वैराग्य की साक्षात् मूर्ति हैं। आपके मुख पर सर्वदा प्रसन्नता की लहरें दौड़ती रहती हैं, जिससे आगन्तुक व्यक्ति अशान्त हो तो आपके प्रसन्न वदन को निहार कर शान्ति प्राप्त कर लेता है।

जैनधर्म में ऐसी कई उच्च आत्माओं ने जन्म लेकर नारी समाज को, जो आज के युग में अन्धकार में चक्कर काट रहा है, अमूल्य प्रेरणाएँ देकर सत्पथ पर लाने का प्रयत्न किया है। पुरुषवर्ग ऐसे महान् रमणी-रत्नों को भुला नहीं सकता। भगवान महावीर, राम, कृष्ण और बुद्ध को जन्म देने वाली ये ही जगज्जननियाँ थीं। इनका पुरुष-समाज पर महान उपकार है।

जन्म

रेगिस्तान के किसी यात्री से पूछो कि जब तुम्हारा गन्तव्य मार्ग आँधी, तूफान और भीषण अंधड़ से धूलिधूसरित हो जाता है एवं पद चिन्हों से रहित हो जाता है तब तुम्हारी क्या दशा होती है? वह किंकर्त्तव्य विमूढ़, विवश और लाचार होकर मार्ग विशेषज्ञ राही की बाट देखा करता है। और जब रास्ता जानने वाला राही निकल आता है, तब उसके पद चिह्नों का सहारा लेकर वह भी चल पड़ता है।

यही बात भारतीय नारी-जाति के सम्बन्ध में है। उस समय नारीजाति जीवन के रेगिस्तान में राह भूली हुई थी। उसके सामने देवी-देवताओं का जाल बिछा हुआ था। अबला जीवन एवं रूप के कैदखाने में व्यतीत हो रहा था और गहनों की बेड़ियों से उसका शरीर मजबूती से जकड़ दिया जाता था। नारी-जाति के व्यावहारिक जीवन में कोई खास आकर्षण नहीं रहा था। वह आडम्बरों और रीतिरिवाजों की कंटीली झाड़ियों में उलझी हुई थी। उस समय पथभ्रष्ट नारी-जाति को अपने जीवन-रूप रेगिस्तान पार करने के लिए एक ऐसी पथ-प्रदर्शिका की आवश्यकता महसूस हो रही थी, जो स्वयं अपने बल द्वारा उसे पार कर दिखाए। सम्भव है हमारी चरितनायिका के जन्म होने में यही कारण रहा हो।

आज से लगभग ७६ वर्ष पहले, विक्रम संवत् १६३२ की भाद्रपद शुक्ला ५ चन्द्रवार को रात्रि के आठ बजे हमारी चरित

नायिका का चन्द्र के रूप में उदय हुआ। वस्तुतः हमारी चरित नायिका का जन्म जैन जगत् को प्रकृति की ओर से महान् वरदान के रूप में प्राप्त हुआ था।

हमारी चरित नायिका का जन्म मारवाड़ की उस पवित्र भूमि में हुआ है, जिसके पीछे इतिहास की अनेक कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। वह है—जोधपुर राज्यान्तर्गत प्रसिद्ध नगर-सोजत। सोजत नगर मारवाड़ के नगरों में अपना अनुपम स्थान रखता है। वहाँ के पुराने खण्डहरों और विशाल परकोटों को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि कभी यह विशाल जनसंख्या वाला, समृद्ध नगर रहा होगा। उन परकोटों की मजबूत दीवारें अब भी सोजत नगर की चारों ओर से हिमालय पर्वत की तरह रक्षा कर रही हैं। कहते हैं यह शहर पहले कुम्भावातीय क्षत्रियों के अधिकार में था। वे ही इसका शासन-सूत्र अपने हाथों में लिये हुए थे। बाद में विक्रम की १५ वीं शताब्दी में यह जोधपुर राज्य के अन्तर्गत हो गया। यही इस नगर की छोटी-सी कहानी है। ऐसी भी किंवदन्ती है कि यह शहर प्राचीन की प्रसिद्ध ताम्रवती नगरी था। अब भी इसमें कहीं-कहीं ताम्बे की खानें निकली हैं।

जो, हो, यह नगर अपनी प्राचीनता की गरिमा को लिये-हुए आज भी धनिकों के भव्य प्रासादों से सुशोभित हो रहा है। पास ही पर्वतों की श्रेणियाँ ऊँचा मस्तक किये खड़ी हैं, मानो वे, वीरभूमि की उन वीराङ्गनाओं को, अपने लाड़ले लालों और प्यारी पुत्रियों को देश की रक्षा और धर्म के पवित्र संदेशों को, कोने कोने में प्रसारित करने के लिए उत्साहित करने का संकेत कर रही हों।

हमारी चरित-नायिका का जन्म सोजतनगर के ओसवंश में हुआ था। आपका कुल प्रतिष्ठित था और वंश परम्परा

से उच्च मान-मर्यादा का अधिकारी रहा था। आपका गोत्र 'सिंघी' था, जो उस समय के ओसवालों में उच्च गिना जाता था। उस समय के क्षत्रिय राजाओं के मंत्री अधिकतर वैश्य और ओसवाल ही होते थे। मालूम होता है ओसवालों में सिंघी (सिंही) गोत्र भी वीरता को लेकर रक्खा गया है। चरित-नायिका के पितामह (दादाजी) प्रभुदानजी उस समय के विख्यात साहूकार और व्यापारियों में प्रमुख गिने जाते थे। उनके सुपुत्र किशनमलजी हमारी चरित-नायिका के पिताश्री थे। रहने के लिये पक्की हवेली थी। सब तरह से सम्पन्न थे। वे अपने नगर में आसपास के गाँवों के आसामियों के साथ लेन देन का व्यवसाय करते थे, इस कारण आसपास के गाँवों में भी उनकी प्रतिष्ठा जमी हुई थी।

चरितनायिका की माताश्री का नाम अमृतबाई था। वह वस्तुतः अमृत के समान ही थीं। उनका पीहर बीलाड़ा ग्राम में था, जो मारवाड़ के परगनों के अन्तगत है। आपके मातामह (नानाजी) का नाम मोतीलालजी सेठिया था, जो उस गाँव के प्रसिद्ध व्यक्तियों में माने जाते थे। आपकी माताश्री का स्वभाव बड़ा ही सौम्य और उदार था। चरितनायिका का कुटुम्ब-परिवार भी विशाल था। आपके माता-पिता के ५ पुत्र और ६ पुत्रियाँ थीं। छठी पुत्री आप ही थीं। चरितनायिका अकसर कहा करती थीं—"मुझ पर पिता की अपेक्षा माता का ही अधिक प्रभाव पड़ा है। इतना विशाल परिवार होते हुए भी माता से मुझे अकृत्रिम स्नेह मिला था। माता की छत्र-छाया में रह कर मैं आनन्द-विभोर हो जाया करती थी।"

जन्म के बाद
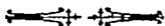
राजपूताना उस समय अपनी प्राचीन लकीरों पर ही चल रहा था। उसके सामने प्राचीनता की मजबूत दीवारें खड़ी थीं। भारत के अन्य प्रान्तों की भांति राजपूताने में भी यह रिवाज था कि पुत्र पैदा होता तब तो खुशियाँ मनाई जातीं और पुत्री के पैदा होने पर घर घर में उदासीनता छा जाती थी। मगर राजपूतों के घरों में यह अत्याचार अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था। लड़की का जन्म होते ही वे उसे मरवा डालते या कहीं फिकवा देते। हाय! भारत माता के लालों में, वीरपुत्रों में यह अज्ञान! ऐसे ऐसे अत्याचार सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। राजपूताने में किसी के यहाँ पुत्र होता है तो थाल बजाया जाता है और पुत्री होते ही उदासी प्रकट करने के लिए सूप (छाजला) बजाया जाता है। इससे बढ़कर अशिक्षा और क्या हो सकती है!

इस बात को लेकर प्राचीनकाल के कवियों ने भी अपनी कलमें चलाई हैं। उन्होंने लिखा है—

> "पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
> कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
> दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा नवेति,
> कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्।"

'जब कन्या पैदा हुई तो महान् चिन्ता पैदा हो गई। फिर

विचार आने लगा कि इसे किसे देना ? यानी किसके साथ विवाह करना ? किसी को दे देने पर भी वह सुख पायेगी या नहीं ? इस प्रकार की अनेक चिन्ताओं के कारण, लड़की का पिता होना महान् दुःखरूप है।"

इस तरह के अज्ञान से प्रभावित होकर लोगों ने मनमानी गाथाएँ बना डाली हैं। उनके मुंह पर यही बातें बैठी हुई हैं— "पुत्रियाँ तो पराया धन हैं, पुत्र घर की सम्पत्ति है। पुत्री दूसरे के घर को सुशोभित करती है पर पुत्र विवाहित होकर पुत्रवधू के सहित घर में प्रवेश करते ही घर की शोभा बढ़ा देता है।"

इस तरह लोगों ने सन्तान-सन्तान के बीच भेद-भाव करके कन्याओं के साथ महान् अन्याय किया है। कई-कई जगह तो पिता ऐसा राक्षसी रूप धारण कर लेते हैं। वे कन्या को वेचन का सौदा कर लेते हैं, फिर चाहे वर कैसा ही कुरूप हो, दुराचारी हो या अपढ़। उन्हें तो पैसे से मतलब है। ऐसे व्यक्ति अपने पितृत्वपद के उत्तरदायित्व को नहीं निभाते हैं। वे मानवता से सैकड़ों कोस दूर हैं, जो निर्दयता के साथ कन्या को जैसे तैसे व्यक्ति के हाथों सौंप देते हैं। जैनधर्म का पालन करने वाले अहिंसक व्यक्ति के लिए तो यह कार्य सर्वथा अनुचित है। उनके हृदय में पुत्र या पुत्री पर समता की भावना होनी चाहिए। समता का पालन केवल धर्मस्थानकों तक ही सीमित नहीं है। घर में और दैनिक-जीवन के प्रत्येक व्यवहार में वह समभाव का पढ़ा हुआ पाठ अमल में आना चाहिए, उसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

दुर्भाग्य से कई जैनों ने भी इस निन्द्य प्रथा को अपना लिया है लड़की पैदा होने पर उनके मन पर विषमता की छाया छा जाती है। ऐसे लोगों को पहले ही अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिये ताकि सन्तान पैदा ही न हो। परन्तु

वैसा न करके एक मानवात्मा के साथ अन्याय करना मनुष्यता के विरुद्ध है। मनुष्यता भी यह दृश्य देखकर काँप उठती है।

अगर आप विदेशों की ओर नजर डालेंगे तो मालूम पड़ेगा कि वहाँ की नारी जाति ने कितने बड़े-बड़े कार्य अपने देश के लिए किए हैं। वहाँ सन्तानों के प्रति ऐसी विषमता आपको देखने को न मिलेगी। उन देशों में महिलाएँ, लड़कों और लड़कियों को अपनी दोनों आँखों के समान देखती हैं। यह भारत का दुर्भाग्य है कि इसने अपनी स्वार्थपरता के कारण अपने देश की नारियों का तिरस्कार किया, उनके उचित हकों को छीन लिया।

आप सोलह सतियों का नाम क्यों लेते हैं? इसीलिए कि उन्होंने नारी होकर भी अपनी आत्मकल्याण की साधना में पुरुषों से पीछे कदम नहीं रक्खा। यही कारण है कि लोग उनके नाम की माला जपते हैं। क्या इन कन्याओं ने अपने माता पिता का मुख उज्ज्वल नहीं किया? क्या उन्होंने पिता के घर को सुशोभित नहीं किया? आदर्श ब्रह्मचारिणी चन्दनबाला ने क्या आजीवन स्वपर का कल्याण नहीं किया? क्या उसने अपने माता पिता के सिर पर किसी प्रकार का बोझ डाला था? क्या सीता महासती ने अपने पति के साथ वन में जाकर वहाँ के अपार कष्टों को सहन नहीं किया? उसकी महिमा कम है? आपने सुना होगा कि लोग सीताराम कहते हैं न कि राम-सीता। सीता की महत्ता ही के कारण उसका नाम पहले लिया जाता है। आज भी भारत में कई बहन आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर समाज की सेवा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर रही हैं। क्या वे अपने वंश और माता पिता के नाम पर चार चाँद नहीं लगा रही हैं?

इसके विपरीत कई पुत्र तो ऐसे होते हैं, जो अपने दुराचार के कारण माता-पिता के नाम को कलंकित करते हैं। वे अपने

माता पिता की सेवा करना तो दूर रहा, उलटे उनसे पृथक् होकर सारी सम्पत्ति को उड़ा देते हैं। और उन्हें महान् संकट की घड़ियों में डाल देते हैं, वृद्धावस्था में वे अपने माता पिता को सेवा के नाम पर धक्के देते हैं। ऐसे पुत्रों से तो पुत्रियाँ अच्छी हैं, जो माता पिता की कुछ सेवा तो करती हैं। यही कारण है कि एक अँग्रेज विद्वान् ने तो अपनी पुत्री के लिये बड़े उदार विचार व्यक्त किये हैं—

'My son is my son till he gets wife.
My daughter is my daughter whole her life"

"मेरा पुत्र तब तक ही मेरा पुत्र है, जब तक कि उसकी पत्नी न आजाय, पर मेरी पुत्री तो अपनी सारी जिन्दगी भर मेरी पुत्री है।"

परन्तु अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि मारवाड़ में इस अन्धपरम्परा ने अपने पैर मजबूती के साथ जमा लिये थे। किशनमलजी के घर पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आपके घर में पहले ही लड़कियाँ काफी थीं, अत हमारी चरित-नायिका का जन्म होने पर आपके मन में उदासीनता ही रही। आपके जन्म से उन्हें किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं थी। पुत्रियों की बाढ़ के कारण वे एक तरह से ऊब गये थे और इसी कारण आपका नाम 'धापूबाई' रक्खा गया था। अर्थात् हम अब पुत्रियों से पूरी तरह तृप्त हो गए हैं।

आपके पिताजी के इस व्यवहार का आपके ऊपर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। आप अपनी मस्ती के साथ आनन्द में बालक्रीड़ा कर रही हैं। प्रकृति को आपको तो महान् बनाना था। आपको कसौटी पर कसे बिना यह खरा सोना कैसे साबित कर सकती थी ?

इधर आपके पिताजी की उदासीनता, उधर आपके

बाल्यकाल

मानव-जीवन के निर्माण में अधिकतर पूर्वजन्म के संस्कारों का हाथ रहता है। साधारण जनता अपनी प्रगति का प्रवाह यहीं खोजना चाहती है, उसकी दृष्टि केवल यहीं तक सीमित रहती है, उसकी दृष्टि सुदूर अतीत और भविष्य की ओर नहीं फैलती। यही कारण है कि साधारण मनुष्य अपने जीवन को आमोद-प्रमोद और विलास के वातावरण में ही खो बैठता है। वह समझता है कि जीवन तो अभी बहुत लम्बा चौड़ा है, अभी से कौन कष्ट उठाए? पर जो महान् आत्माएँ होती हैं, उनका जीवन प्रारम्भ से ही गम्भीर वातावरण में बीतता है, उनका प्रत्येक कदम संभल संभल कर पड़ता है। उनकी वृत्ति तो उत्तरा ध्ययन सूत्र के 'चरे पयाइं परिसकमाणो' के मूल-मन्त्र को लेकर चलती है। वह इधर उधर के अनिष्ट वातावरणों में नहीं उलझती। वह तो भूतकाल को टटोल कर अपने भविष्य का निर्माण करती है।

यही कारण है कि हमारी चरित-नायिका को पहले जहाँ सभी कोस रहे थे, झिड़क रहे थे वहाँ अब सभी उनके आन निस मन को देख कर अब आशीर्वाद बरसा रहे हैं। आप तो अपना मार्ग शान्ति से तय कर रही हैं। पूर्वजन्म के विलक्षण प्रभाव से आपकी वृत्ति हमेशा शान्त ही रही है। पड़ौस के और घर के सभी लड़के-लड़कियाँ खेल-कूद मचा रहे हैं, पर आपका

आनन्दित मन और ही कहीं खेल रहा है। आपको उनके खेल कूद में, तूफान में इतना रस नहीं है। साथी लड़के और लड़कियाँ आपको खींचतान कर मण्डली में सम्मिलित करना चाहते हैं, पर आपकी एकान्त प्रिय-प्रकृति इसे कम ही पसन्द करती है। आप अपने गम्भीर चिन्तन में मग्न हो जाती हैं।

जब कभी वश चलता है और अवसर मिलता है तो हमारी चरित-नायिका अपने घर के एक कोने में, या मकान की छत पर चली जाती और घण्टों बैठी-बैठी कुछ विचार किया करती। घर के माता-पिता और अन्य लोग आश्चर्य करने लगते, उन्हें आप की विलक्षण-प्रकृति का कुछ पता ही न लगता।

हमारी चरित्र नायिका में सब से बड़ी विशेषता यह थी कि वे बाल्यकाल से ही नम्र और विनीत रही हैं। उन्होंने अपने से बड़ों के सामने कभी भौंहें चढ़ाकर सामने बोलना तो सीखा ही नहीं। उनकी प्रकृति को ठेस पहुँचा कर, उनके चित्त में आघात पहुँचा कर कोई भी काम करना आपको इष्ट नहीं था। इसी कारण आपके माता-पिता और भाई बहन सभी आप पर स्नेह बरसाते थे। उनका दिल आपकी प्रसन्नमुखमुद्रा देखकर प्रफुल्लित हो उठता था।

इस तरह आपका बाल्यकाल आनन्द से व्यतीत हो रहा था। प्रकृति को आपके लिए एक विशेष चिन्ता थी। उसे संसार में आपको एक महासती के रूप में दिखाना था। यही गुण वह आप में भर रही थी। आपने अपना जीवन भी उसी तरह का बनाना प्रारम्भ कर दिया। आपकी तुतली और मधुर बोली सुन कर सब के हृदय गद्‌गद्‌ हो जाते थे।

मातृ-शिक्षा
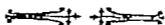
बाल्यकाल बच्चों के लिए शिक्षा ग्रहण करने का समय है। उस समय की शिक्षा के संस्कार जीवन में अमिट हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का यह सिद्धान्त है कि—"बालक अपने प्रारम्भिक पाँच वर्षों में जो कुछ सीख जाता है, वही उसके जीवन में स्थायी रहता है।" हमारी चरित-नायिका भी बाल्यकाल की शिक्षा माता की पाठशाला में ले रही थीं। आपको अपनी माता का स्नेह बार बार मिलता ही था। जब आप चार वर्ष की थीं तो आप अपनी बाल-सुलभ भाषा में माता से कहने लगीं—"माँ, मुझे एक बार तो अपने स्तनों का दूध पिला दो। मैं फिर कभी माँग नहीं करूँगी।"

माता अमृतकुँवरबाई ने यह कोमल और प्रेम भरी वाणी सुनी और उनका हृदयसरोवर प्रेम से छलक उठा। माता आखिर माता ही है। वह अपनी सन्तान के लिए हमेशा सुनहले स्वप्नों में घिरी रहती है। जिसने मातृ हृदय का अनुभव किया है, वह जानता है कि उसके हृदय में निरन्तर कितने प्रेम का प्रवाह उमड़ता रहता है। मातृ प्रेम अमूल्य है। उसका दूध स्वर्ग के देवों को भी दुर्लभ है। उसकी एक उंगली सारे संसार को मार्ग बताने वाली है।

माता ने सहसा चौंक कर हमारी चरित-नायिका को छाती से लगा लिया और बड़े प्रेम के साथ स्तन-पान कराया।

बस, यही स्तन पान हमारी चरित-नायिका के लिए अन्तिम स्तन-पान था, उसके बाद आपने कभी स्तन पान नहीं किया। मानो यह सन्देश दे रहा था कि इस श्वेत दूध में कभी कायरता का, दुराचरण का काला दाग न लगाना। इस शिक्षा को हमारी चरित-नायिका ने मानो पय पान के साथ ही पी लिया और दिनोंदिन चन्द्रमा की उज्ज्वल कला की तरह शरीर और गुण दोनों से बढ़ने लगीं।

बाल प्रकृति की सहज प्रेरणा से एक बार आप पड़ौस के लड़के-लड़कियों के साथ खेल रही थीं। खेल में एक पक्ष ने सही नीति नहीं रक्खी और अपनी हार को भी जीत बताने लगा। आपस में दोनों पक्ष के बातचीत बढ़ गई। होते-होते गाली गलौज तक की नौबत आगई। उधर से सहसा आपकी माताजी आ रही थीं। उन्होंने यह सुना तो कुछ बनावटी कोप दिखाते हुए कहा—"आनन्द! तू सयानी होकर अपने मुँह से ऐसे गन्दे शब्द क्यों निकालती है? मुँह गाली-गलौज से गन्दा करने के लिए नहीं है। इसे अमृतमय-वाणी से भर।"

माता की मधुर और प्रेम-भरी वाणी सुनकर आनन्द कुमारीजी सहसा नेत्रलज्जा के कारण अपना मुख नीचा कर लिया और माता की उत्तम शिक्षा को शिरोधार्य की तथा भविष्य में कभी अपने पवित्र मुख पर गाली-गलौज जैसे गन्दे शब्द न चढ़ने दिये।

यह है मातृ शिक्षा का प्रभाव! यह है सच्चे गुरु के उपदेश का असर! वस्तुतः माता ही सच्चा गुरु है। किसी ने तो यहाँ तक कहा है—

"एक माता सौ शिक्षकों का काम कर सकती है।"

माता की पाठशाला में पढ़ा हुआ पाठ ही बालक के जीवन में दृढ संस्कार जमा लेता है। यही अन्त तक उसके पवित्र

जीवन-मार्ग की हर-मोड़ पर मार्ग-दर्शक बनता है। बालक माता के हाथ का खिलौना है। वह चाहे तो उसे बना सकती है, सुधार सकती है और चाहे तो तोड़-मरोड़ सकती है, बिगाड़ सकती है। एक कुम्भकार कच्चे घड़े को तो मनचाहा तैयार कर सकता है, पर आँवे में पक जाने पर उसकी ताकत नहीं कि वह उसे दूसरा रूप दे दे। यही बात बालक के सम्बन्ध में है। माता-पिता चाहें तो प्रारम्भ से ही कच्ची अवस्था में उसका सुधार कर सकते हैं, बड़ा होने पर उसका सुधार होना दुष्कर है।

शिवाजी को वीर शिवाजी बनाने वाली कौन थी? वह थी, उनकी माता जीजीबाई, जिसने प्रारम्भ से ही शिवाजी के हृदय में वीरता के भावों का प्रवाह बहाया, और वीर पुरुषों की कहानियाँ सुनाकर उत्साह का सञ्चार किया। वही शिवाजी जब १६ वर्ष के हुए तो सिंहदुर्ग को जीत कर मुगलों को चकित कर दिया। वीर अभिमन्यु का नाम आपने सुना है? उसने १६ वर्ष की उम्र में चक्रव्यूह को भेदन कर दिया और उन द्रोणाचार्य, कर्ण आदि दिग्गज महारथियों के हौंसले पस्त कर दिये। यह किसका प्रताप था? वह उसकी वीर माता सुभद्रा की ही गर्भ में दी हुई शिक्षा का प्रताप था। रानी मदालसा ने अपने सुकुमार ७ शिशुओं को क्रमशः वैराग्य की शिक्षा दी और उसका यह प्रभाव पड़ा कि बड़े होने पर वे सातों संन्यास-मार्ग पर आरूढ़ हो गये। और जब उसके पति ने यह कहा कि तुमने मेरे सात सात पुत्रों को तो सन्यासी बना दिया है, अब मेरी राज्यधुरा कौन संभालेगा? तो मदालसा ने कहा—"प्राणनाथ! आप इस बात की चिंता न करिये। मैं ऐसा उपाय करूँगी जिससे इस बार होने वाला पुत्र आपकी राजगद्दी संभालने योग्य होगा।"

और उस वीराङ्गना ने यही कर दिखाया। जो काम हजारों अध्यापक नहीं कर सकते थे वह काम अकेली आदर्श

जननी मदालसा ने कर दिखाया।

वास्तव में माता की शिक्षा ही बालक के कोमल मस्तिष्क में जितनी ठस सकती है, उतनी अध्यापक की नहीं। माता की दी हुई शिक्षा में प्रेम का पुट होता है। उसकी वात्सल्य-भरी पदावली को सुनकर बालक सहसा ग्रहण करने को आतुर हो जाता है। अध्यापक तो कर्कशभाषा में जबरदस्ती बच्चे के मस्तक पर ज्ञान लादने की कोशिश करता है। माता की शिक्षा उसके आचरण-रूप प्राण से परिपूरित होती है, जिसका बालक के कोमल मानस पर झटपट असर पड़ता है।

हमारी चरितनायिका की माता भी अपनी पुत्री को देख कर हर एक बात प्रेम से करती थी और हर बात को सिखाने से पहले खुद कर दिखाती थी। मैं समझता हूँ, हमारी चरितनायिका के जीवन पर माता का ही अधिक प्रभाव पड़ा है। वह एक सौम्य, स्नेहमूर्ति और चतुर माता थी। जिसके प्रभाव से ही हमारी चरित-नायिका आज जीवन की ऊँचाइयाँ प्राप्त कर सकी हैं।

जिन्हें अपनी सन्तान को सदाचारी, वीर या सुशील बनाना हो, उन्हें सर्व प्रथम स्वयं उस योग्य बनना चाहिये। जो सचरित्र होता है वही अपनी सन्तति को सचरित्र बना सकता है। खुद तो झूठ बोलता रहे और बच्चों से सच बोलने को कहे तो उसकी शिक्षा का असर कैसे पड़ सकता है? भारतीय माता पिता में आज प्रायः इसी बात की कमी है कि वे अपनी सन्तान को धर्मात्मा और सुशील देखना चाहते हैं पर स्वयं अनीति और अधर्म की राह पर चलेंगे। उनका यह स्वप्न कैसे पूर्ण हो सकता है?

इस तरह हमारी चरितनायिका ने माता के पास से गृहस्थ जीवन की शिक्षाएँ लीं। आप प्रत्येक कार्य को बड़ी दक्षता

से करने लगीं। रसोई बनाना, कपड़े सीना, बरतन मांजना, सफाई करना आदि घर के सभी कार्यों में आपने कुशलता प्राप्त कर ली।

समय समय पर माता की ओर से आपको विनय, सेवा, धैर्य, मधुर भाषण, विवेक, स्वच्छता, लज्जा, सभ्यता, आदि गुणों की मौखिक शिक्षा भी दी जाती थी। आप सभी बातों को एकाग्रचित्त होकर सुनती रहतीं और उन्हें जीवन में परिणत करने का प्रयत्न करती रहतीं।

महान् व्यक्तियों में बचपन के संस्कार ही पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं। उनका जीवन चरित्र समझने के लिये उन संस्कारों का अध्ययन करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति और महान् व्यक्ति में यही अन्तर होता है कि साधारण व्यक्ति के बाल्यकाल के संस्कार बड़े होने पर अन्य बातों से दब जाते हैं या सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, परन्तु महान व्यक्ति में बचपन के संस्कार प्रबल रूप में मौजूद रहते हैं। वे अन्य बातों को अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। इस प्रकार वे संस्कार यथासमय दृढ़ता पाकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं और जगत्-कल्याण के साधन बन जाते हैं।

हमारी चरितनायिका में माता के डाले हुए बचपन के संस्कार ही बाद में विकसित हुए हैं। बचपन की दी हुई माता शिक्षा ही उनके जीवन में पल्लवित हुई है। आपकी माता में धार्मिक भावना, दया की भावना, अत्यन्त उग्र रूप में थी, वही भावना आपमें साध्वी बन जाने पर भी बद्ध मूल हो गई। यह आपके जीवन चरित्र के पृष्ठों में पढ़ने पर पता लग सकता है।

गृहस्थ-जीवन में प्रवेश

मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास है। वह अनन्त काल से परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता आरहा है, उसकी दौड़ धूप अभी तक जारी है पर उसे सफलता मिली नहीं है। उसकी दुर्बलता का पता यहीं आकर लगता है।

श्री किशनमलजी अपने गृहस्थ जीवन को आनन्द-पूर्वक व्यतीत कर रहे थे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। चिन्ता थी तो दो पुत्रियों के विवाह की थी। वास्तव में तो पुत्रियों के लिये कोई चिन्ता की बात नहीं होनी चाहिए। पर मनुष्य जिन परिस्थितियों में पला हुआ होता है, उसका प्रभाव उसके दिमाग पर पड़े बिना नहीं रहता। मारवाड़ में प्रायः विवाह शादियों के मौके पर लड़की के पिता को तो अपनी धन की थैली खाली करनी पड़ती है। साथ ही कई कुप्रथाओं (जो उस समय प्रचलित थीं) का भी पोषण करना पड़ता है। विवाह के नाम पर ये चौंटी-खोरा, मास, दहेज वगैरह की कुप्रथाएँ मनुष्य को हैरान कर डालती हैं। फलतः किशनमलजी ने सोचा—कन्याओं का विवाह करेंगे तो यह सब करना ही पड़ेगा।

चरितनायिका की बड़ी बहिन थीं—फूलकुँवरबाई। वह आप से २॥ साल बड़ी थीं। आपकी उम्र उस समय १० साल की थी और उनकी थी १२॥ साल की। आपके पिताजी ने सोचा—

से करने लगीं। रसोई बनाना, कपड़े सीना, बरतन माँजना, सफाई करना आदि घर के सभी कार्यों में आपने कुशलता प्राप्त कर ली।

समय समय पर माता की ओर से आपको विनय, सेवा, धैर्य, मधुर भाषण, विवेक, स्वच्छता, लज्जा, सभ्यता, आदि गुणों की मौखिक शिक्षा भी दी जाती थी। आप सभी बातों को एकाग्रचित्त होकर सुनती रहतीं और उन्हें जीवन में परिणत करने का प्रयत्न करती रहतीं।

महान् व्यक्तियों में बचपन के संस्कार ही पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं। उनका जीवन चरित्र समझने के लिये उन संस्कारों का अध्ययन करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति और महान् व्यक्ति में यही अन्तर होता है कि साधारण व्यक्ति के बाल्यकाल के संस्कार बड़े होने पर अन्य बातों से दब जाते हैं या सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, परन्तु महान व्यक्ति में बचपन के संस्कार प्रबल रूप में मौजूद रहते हैं। वे अन्य बातों को अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। इस प्रकार वे संस्कार यथासमय दृढ़ता पाकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं और जगत् कल्याण के साधन बन जाते हैं।

हमारी चरितनायिका में माता के डाले हुए बचपन के संस्कार ही बाद में विकसित हुए हैं। बचपन की दी हुई मातृ शिक्षा ही उनके जीवन में पल्लवित हुई है। आपकी माता में धार्मिक भावना, दया की भावना, अत्यन्त उग्र रूप में थी, वही भावना आपमें साध्वी बन जाने पर भी बद्ध मूल हो गई। यह आपके जीवन-चरित्र के पृष्ठों में पढ़ने पर पता लग सकता है।

गृहस्थ-जीवन में प्रवेश

मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास है। वह अनन्त काल से परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता आरहा है, उसकी दौड़ धूप अभी तक जारी है पर उसे सफलता मिली नहीं है। उसकी दुर्बलता का पता यहीं आकर लगता है।

श्री किशनमलजी अपने गृहस्थ जीवन को आनन्द पूर्वक व्यतीत कर रहे थे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। चिन्ता थी तो दो पुत्रियों के विवाह की थी। वास्तव में तो पुत्रियों के लिये कोई चिन्ता की बात नहीं होनी चाहिए। पर मनुष्य जिन परिस्थितियों में पला हुआ होता है, उसका प्रभाव उसके दिमाग पर पड़े बिना नहीं रहता। मारवाड़ में प्राय विवाह शादियों के मौके पर लड़की के पिता को तो अपनी धन की थैली खाली करनी पड़ती है। साथ ही कई कुप्रथाओं (जो उस समय प्रचलित थीं) का भी पोषण करना पड़ता है। विवाह के नाम पर ये मीठी डोरा, माठ, दहेज वगैरह की कुप्रथाएँ मनुष्य को हैरान कर डालती हैं। फलत' किशनमलजी ने सोचा—कन्याओं का विवाह करेंगे तो यह सब करना ही पड़ेगा।

चरितनायिका की बड़ी बहिन थीं—फूलकुँवरबाई। वह आप से ३॥ साल बड़ी थीं। आपकी उम्र उस समय १० साल की थी और उनकी थी १३॥ साल की। आपके पिताजी ने सोचा—

इन दोनों का विवाह साथ ही कर देगें तो खर्च भी काफी बचेगा, और इन दो की चिन्ता से तो मुक्त हो जायेंगे।

रूढ़ियों के कारण भारत के अधिकतर माता पिता इसी चिन्ता में घुले रहते हैं। कई तो सब तरह से सम्पन्न होने पर भी अपनी लड़कियों का छोटी उम्र में ही विवाह कर देते हैं। वे उनके हित को नहीं देखते, और अपने ही स्वार्थ को देखते हैं। स्वार्थ लोलुप लोग कन्या के भावी जीवन की ओर भी दृष्टिपात नहीं करते। वे तो यही समझते हैं कि झटपट बला टले तो अच्छा। हमारे घर में रहेगी तो इसके खाने-पहिनने का सारा खर्चा हमें उठाना पड़ेगा। पर प्राचीन भारत का आदर्श यह नहीं था। उस समय वर और वधू की समान योग्यता, और योग्य रूप गुण आदि देखते थे। जैनशास्त्रों में हमें प्राचीनकाल के विवाहों की बातें पढ़ने को मिलती हैं। वहाँ 'सरिसवया' 'सरित्तया' आदि विशेषण पाये जाते हैं। उस समय के लोग अपनी कन्याओं के लिए वर खोजते समय निम्न लिखित गुण देखते थे—

"कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तञ्च वपुर्वयश्च।
एतान्गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्"

अर्थात्—मैं जिसके साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हूँ, उसका कुल कौन-सा है? उसका शील कैसा है? उसका कोई संरक्षक है या नहीं? वह पढ़ा-लिखा है या अपढ़? उसके पास धन या कमाई करने का कोई साधन है या नहीं? उसका शरीर स्वस्थ है या नहीं? उसकी अवस्था कन्या के पाणिग्रहण करने योग्य है या नहीं? इन गुणों को देख कर ही बुद्धिमान् पुरुषों को अपनी कन्या देनी चाहिए। शेष बातों के लिये कोई विचार न करना चाहिये।

यह है कन्याविवाह करते समय का विवेक! पर समाज में आजकल इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। बहुत से

लोग तो और खासतौर से बहिनें अपने लड़के या लड़कियों का विवाह बचपन में ही कर देने में अपना अहोभाग्य समझती हैं। लड़के या लड़कियों के हाथ पीले किये और मानो उन्हें स्वर्ग या वैकुण्ठ मिल गया। मगर इस प्रकार की घातक प्रथा से मानव समाज का कितना घोर पतन हुआ है, इसने भावी मनुष्य प्रजा का कितनी निर्दयता से सत्त्व चूसा है इस बात पर जरा विचार करो। इस नृशंसप्रथा ने समाज की जड़ खोखली कर डाली है। हमारे क्रान्तिकारी युगद्रष्टा स्व० आचार्य श्री जवाहरलालजी म० के शब्दों में—

"विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शक्ति के लिये मंगलवाद्य बजवाये जाते हैं। शक्ति के लिए ज्योतिषी से महादिक पूछा जाता है। शक्ति के लिए सुहागिनों का आशीष लिया जाता है। परन्तु जहाँ अशक्ति के लिये यह सब काम किये जाते हैं, वहाँ के लोगों से क्या कहा जाय ? बाल विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना ही है। इससे शक्ति का नाश होता है। अतएव चाहे कोई जैन श्रावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा और कोई हो, सब का कर्त्तव्य है कि अपनी सन्तानों के हित के लिये—अपनी सन्तान की रक्षा के लिए इस घातक-प्रथा को त्याग दें। इसका मूलोच्छेदन करके सन्तान का और सन्तान के द्वारा समाज एवं राष्ट्र का मङ्गल-साधन करें।"

सभी भारतीय शास्त्र एक स्वर से छोटी उम्र में बालक बालिकाओं के विवाह का निषेध करते हैं। प्राचीनकाल में बालक की उम्र २५ वर्ष और बालिका की १६ वर्ष निर्धारित की गई थी। पर आज तो इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अकाल में वीर्य नष्ट करना बालकों की हत्या के बराबर है। और ऐसे बेमेल विवाह करके, उन्हें एक कमरे में बन्द करके वीर्य-पात कराने का महान भयङ्कर कार्य माता पिता

कहलाने वाले मनुष्य करते हैं। कहाँ तक कहा जाय! लेखनी भी ऐसा विषय लिखने में रो पड़ती है। ऐसी मूर्खता से मानव-समाज का भयङ्कर पतन हुआ है। मैं इस विषय को ज्यादा लिखकर वामनरूपधारी विष्णु के समान विराट् और पाठकों के लिए बोझ रूप नहीं बनाना चाहता। लेखनी की ताकत ही क्या है जो अक्षरों के घेरे में इस लम्बे विषय को आबद्ध कर दे?

हाँ, तो हमारी चरितनायिका को भी विवाह के सूत्र में बाँधने के लिए किशनमलजी ने विचार किया। आपने अपनी कन्या के जीवन पर ध्यान नहीं दिया, आपकी दृष्टि समाज की परिस्थितियों से दबी हुई थी। समाज के कई अग्रगण्यों ने भी किशनमलजी को यही सलाह दी कि इन दोनों बहनों का साथ ही विवाह कर दिया जाय। चन्द्र लोगों के सामने विशेष तर्क वितर्क करने या अनुनय करने का मौका नहीं था, अतः किशनमलजी ने उनकी बात मान ली और चरितनायिका की माताजी के सामने सारी हकीकत रखी। उस समय की कुप्रथा मारवाड़ की प्रत्येक माता के हृदय में अपना स्थान प्रभाव जमाए हुए थी। माता ने सोचा—ठीक है, इस तरह लड़की झटपट अपने ससुराल चली जायगी। होशियार तो है ही। अपना घर सम्भालते देर नहीं लगेगी, ऐसी दशा में विलम्ब करना उचित न होगा। माता ने भी अपनी अर्धस्वीकृति सी दे दी। चरितनायिका के काकाजी वगैरह तो पहले से ही सम्मत थे। किशनमलजी वर की खोज करने लगे।

वर के लिये किशनमलजी को कहीं दूर नहीं जाना पड़ा। सोजत में ही एक सम्पन्न घराने वाले श्रीमान् शलराजजी मूथा से मिले। वे अपनी ईमानदारी और व्यवसाय के कारण सोजत में प्रख्यात थे। शलराजजी के पिताजी उन दिनों जोधपुर राज्य

के हाकिम थे। उनका नाम था हेमराजजी। हेमराजजी का अपने शहर में भी अच्छा प्रभाव था। कहते हैं सोजत में एक 'जटियों का वास' था, वहाँ अकसर जटिया जाति के लोग रहते थे। वे लोग शहर में बहुत उपद्रव मचाते थे और लोगों को तङ्ग कर रहे थे। हेमराजजी ने उन लोगों को वहाँ से हटा कर ओस वालों को वहाँ बसाया, और शहर में शान्ति स्थापित की। उनके घर में रामसनेही साधुओं पर परम भक्ति और अटल श्रद्धा थी। रामसनेही लोग राम को ही एक मात्र उपास्य देव (ईश्वर) मानते हैं। वे किसी देवी देवताओं के आगे मत्था नहीं टेकते। न विवाह के बाद कहीं देवी-देवों के द्वार पर जात देन के लिए भटकते हैं। ये लोग राम की मूर्ति बनाकर पूजा नहीं करते। अपने हृदय में ही राम का ध्यान करते हैं या राम की माला फेरते हैं। हाँ, ये रामसनेही साधुओं को जरूर राम का प्रतीक मानते हैं। उनकी सेवा करते हैं।

इस तरह हेमराजजी का घर 'रामरामवाला' के नाम से मशहूर था। बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं। धन-सम्पत्ति की कोई कमी नहीं थी। हेमराजजी के पुत्र शक्तराजजी भी बड़े कोमल स्वभाव के थे। शक्तराजजी के ४ पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। चारों के नाम क्रमशः फतहचन्दजी, सुखरामजी, लादमणदासजी और कुशलरामजी थे।

इन चारों में लादमणदासजी सबसे कुशल, मेधावी और भाग्यशाली थे। शरीर का डील-डौल भी अच्छा था और बड़े होनहार प्रतीत होते थे। वे उत्साही भी बहुत थे। किसी काम को करने में अपना मन लुभा देते थे, उनके उत्साह और पुरुषार्थ का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे जब १८-१९ वर्ष के थे उस समय उन्होंने सोचा—मुझे अपनी बुद्धि और बल को अजमाना चाहिये, मुझे दूसरे के सहारे हाथ पर हाथ दिये नहीं बैठे रहना

चाहिए। कहीं विदेश जाकर अपने भाग्य का परचाश्रा खोलना चाहिए। पिताजी के सामने अपने विचार रक्खे। उन्होंने कहा— "हमें तुम्हारे जीवन पर विश्वास है कि तुम अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना भाग्य कहीं भी रहकर चमका सकोगे, पर परदेश भेजने के लिए अभी हमारा मन मानता नहीं है। तुम कभी बाहर निकले हुए नहीं हो। और अपने घर में किसी बात की कमी भी नहीं है। इसलिए हमारे विचार से तुम्हारा देश में ही रहना ठीक होगा। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।" लक्ष्मणदासजी ने बड़े नम्र शब्दों में पिताजी को अपनी बात समझाई और परदेश भेजने के लिए मना लिया। शुभ मुहूर्त में दिल्ली रवाना हो गये। भाग्य से आपको वहाँ सेठ बालायक्सजी ने अपने यहाँ रख लिया। लक्ष्मणदासजी पढ़े लिखे और बुद्धिमान् तो थे ही, थोड़े ही दिनों कामकाज सीखकर होशियार हो गये। आप सेठजी की दूकान का काम बड़ी दिलचस्पी से करने लगे और शीघ्र ही सेठजी के प्रेमपात्र बन गये।

हमारी चरितनायिका के पिताजी ने जब लक्ष्मणदासजी के विषय में प्रशंसा सुनी तो उन्हें जच गया कि 'यह वर मेरी लड़की के लिए उपयुक्त होगा। शंकरराजजी से अपने पुत्र के साथ सम्बन्ध करने के लिये परामर्श किया। आपके विषय में पूछ साछ की। आप की प्रशंसा तो सोजत के ओसवालों के घरों में प्राय फैली हुई थी। आप चतुर, सुशील और सुन्दर थी ही। दूसरी बात यह है कि आपकी भूआबदन भी उसी घर में ब्याही हुई थी जिससे वे आपके स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो गये थे। आपकी सगाई निश्चित हो गई। सगाई ६ मास तक रही। लग्न तिथि संवत् १९४२ की फाल्गुन कृष्णा ८ तय हुई।

हमारी चरितनायिका के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। सारे कुटुम्बी उसमें लगे हुए थे। चारों तरफ दौड़-धूम मची

थी। आपके ससुराल में भी सब लोग विवाह की तैयारी में लगे थे। दोनों ओर हर्ष के फौहारे छूट रहे थे। पर हमारी चरित नायिका किसी दूसरी तरफ ही अपनी तान जोड़े हुए थीं। इन्हें यह मालूम ही नहीं था कि सांसारिक सम्बन्ध कैसा होता है? इनकी सखी-साथिनें आ-आ कर पूछ रही हैं, पर आप तो अपनी प्रसन्न मुद्रा से कुछ और ही चिन्तन कर रही हैं। आपको उस समय कोई राम भजन सुनाता तो बड़ा प्रिय लगता, मानो आपने पहले कभी सुन रखा हो। आपसे किसी ने कहा—तुम्हारा ससुराल तो 'राम राम वालों के यहाँ है।' आपने सोचा—राम राम वाले तो ये ही रामसनेही सन्यासी हैं जो 'राम राम' कह कर रोटी लेने आते हैं। ये तो गेरुए वस्त्र पहनते हैं। क्या मुझे भी वहाँ गेरुए वस्त्र ही पहनने पड़ेंगे? कोई चिन्ता नहीं! किसी तरह से शरीर ही तो ढाँकना है।

कहने का मतलब यह है कि आपकी प्रकृति में इतनी भद्रता थी कि आप इन बातों के सम्बन्ध में विशेष दिलचस्पी नहीं रखती थीं। आप तो यथालाभ सन्तोषी थी। आपकी बड़ी बहिन फूलकुँवरबाई का विवाह भी साथ ही होने वाला था। उनके ससुराल से बहुत से गहने आए थे। आपकी ससुराल से इतने नहीं आए थे, तो भी आपके हृदय में किसी प्रकार का रंज नहीं था।

भीकमचन्ददासजी की बहन का भी साथ ही विवाह था, वहाँ जिस लवाजमे के साथ आपके बहनोई बरात लेकर आये थे, उसी सरकारी लवाजमे को लेकर लछमणदासजी किशनमलजी के यहाँ बरयात्रा लेकर आए। विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। वरवधू एक पवित्रता के सम्बन्ध-सूत्र में जुड़ गये। गृहस्थ जीवन की पगडण्डी पर दोनों साथ-साथ यात्रा कर रहे थे।

विवाह के पश्चात् होने वाली रस्में अभी पूरी न हो पाई थीं। मारवाड़ में ओसवालों में विवाह होने के बाद अकसर देवी-देवताओं के, स्थानों पर वर-वधू को फिराने की प्रथा है। इसे मारवाड़ी भाषा में 'जात दिलाना' कहते हैं। हमारी चरित नायिका के पीहर वालों ने भी जात दिलाने के लिये आपके ससुराल वालों से आग्रह किया। पर ये तो कट्टर रामभक्त (राम सनेही) थे, उनके यहाँ 'राम' को छोड़कर किसी को उपास्य देव नहीं माना जाता था। वे भला ऐसी कुप्रथाओं के पोषण के लिए कब तैयार हो सकते थे ? उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। वे अपनी मान्यता पर दृढ़ थे।

अफसोस है कि 'जैन' कहलाने वाले भाई, अरिहन्त देव को ही उपास्य मानकर भी भैरों भवानी आदि की शरण ढूंढते फिरते हैं। जिसका मस्तक वीतराग अरिहन्त देव के सामने झुका है उसे समझना चाहिए कि उन्हें छोड़कर कुदेवों के सामने माथा रगड़ना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है। वीतराग देव संसार से छुड़ाने का मार्ग बताते हैं और कुदेवों की पाषाण मूर्तियाँ संसार में भटकने को प्रेरित करती हैं। क्या उन पत्थर की मूर्तियों सचेतन कहलाने वाले मानव की आशा पूर्ण हो सकती है ?

पर हमारी कई जैनधर्मी कहलाने वाली बहिनें भी इन कुदेवों की चौकी और मढ़ीमूर्तियों के आगे फेरी लगाने और माथा रगड़ने में नहीं हिचकतीं। उन्हें अपने सम्यक्त्व का फैसला कर लेना चाहिये कि क्या कुदेवों की पूजा से हमारा सम्यक्त्व गुण हराभरा रह सकता है ?

हाँ, तो हमारी चरितनायिका इस कुरूढ़ि का पालन करने से बच गईं। आपके विवाह के बाद ससुराल वालों ने अपने रामसनेही महन्त (धर्मगुरु) को भोज देने का विचार किया।

सोजत में ही आपके ससुराल वालों का एक रामद्वारा व एक मठ भी थी। वहाँ सभी रामसनेही साधुओं को न्यौता दिया गया। भिन्न-भिन्न गाँवों से करीब तीन सौ साधु आए थे। सब को उन्होंने सम्मान-पूर्वक जिमाया, और सत्कार के साथ विदा किया।

नई वहू के रूप में

मनुष्य का महत्त्व इसी में है कि वह जहाँ कहीं भी रहे और जिससे भी मिले, अपने व्यक्तित्व का प्रभाव अङ्कित करे। वह मनुष्य ही क्या, जो मिलने वाले पर अपनी विलक्षणता की छाप न डाल सके। जैन संस्कृति का सदा आदर्श यही है कि मनुष्य को अपने आपको प्रभावशाली बनना चाहिए। अपने आपका जीवन सुसंस्कृत बनाना चाहिए। जैनधर्म तो हर साधक से यही कहता है कि "तू इतना विनीत हो कि वृद्ध तुझे देखते ही प्रसन्नता से उमंगने लगे। तू पुरानी और नई दोनों पीढ़ियों पर अपना प्रभाव डाल। तू अपने अहङ्कार और आलस्य को इतनी दूर फेंक दे कि वे स्वप्न में भी कभी तेरे पास न फटकने पावें। तू वृद्धजनों की सेवा करते हुए उनकी भावना में इतना घुलमिल जा कि वे तुझे जीवन भर न भूल सकें।"

हमारी चरितनायिका में यही गुण भरे हुए थे। वह अपने पिता के घर को छोड़ कर आईं, फिर भी उसे इस घर में कोई कष्ट नहीं हुआ। भारतीय संस्कृति का यह आदर्श है कि पीहर को छोड़कर नववधू ससुराल में आकर उस तरह घुल मिल जाती है जैसे नदी पहाड़ को छोड़कर समुद्र में आकर मिल जाती है। वह अपना हृदय जैसे समुद्र के सामने खोल कर रख देती है उसी तरह नववधू भी अपना हृदय ससुराल में विशाल बना लेती है। हमारी चरितनायिका में वैसे उदारगुण पहले से ही

विद्यमान थे। यह उस समय १० वर्ष की थीं फिर भी हर एक काय करने में दक्ष और बुद्धिमती थीं।

आपके सासूजी का स्वभाव बड़ा ही कोमल था। वे नव वधू के विनयशील व्यवहार को देखकर बड़ी सन्तुष्ट हुई। हमारी चरितनायिका का स्वभाव बड़ा ही मद्र था, यह अविनय करना तो जानती ही न थीं। मानो आपने उत्तराध्ययन सूत्र का विनय श्रुत अध्ययन पढ़ रक्खा हो, जिसमें बताए हुए—

'आणानिद्देसकरे गुरूणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने से विणीए त्ति वुच्चइ ।'

अर्थात्—जो अपने से गुरु यानी बड़ों की आज्ञा का पालन करने वाला होता है, जो हर समय बड़ों के पास रहता है या उनको हृदय में स्थान देता है, व उनके इशारे और आकृति से समझने वाला हो वह विनीत कहलाता है।

इस लक्षण के अनुसार ही ससुराल में आपका व्यवहार था। इस व्यवहार से आप सब की प्रेम-भाजन बन गई थीं। आपकी विनयभावना और नम्रता केवल वाणी में नहीं, किन्तु मन और कर्म में भी अभिव्यक्त हो रही थी। आपकी सासूजी व सेठानियाँ और ननन्द आदि जहां कहीं बैठतीं, वहाँ आप पहले से ही आसन बिछा देती थीं। आप अपने सासु-ससुर आदि की आज्ञा का इतना ध्यान रखती थी कि कहीं उनका मन न दुःख जाय। आपके शरीर में आलस्य बिलकुल नहीं था। शरीर स्वस्थ हो या अस्वस्थ, किसी काम के लिए इन्कार करना तो जानती ही न थीं। कठिन से कठिन काम भी आप प्रसन्न मुद्रा से करती थीं आपकी सेवा भक्ति से मोदित होकर घर के प्रत्येक व्यक्ति आपकी प्रशंसा करते थे।

आपका व्यवहार आजकल की सासू बहुओं का-सा नहीं था। आज की कई सासुएँ अपना हुकूमत अलग जमाना चाहती हैं

और बहुएँ अपनी तरुणाई के जोश में अलग आपे से बाहर हो जाती हैं। ऐसा हाल जिस घर में होता है वहाँ तीसों दिन महा भारत मचा रहता है। और घर नरक-सा बन जाता है।

आपकी स्थिति इनसे ठीक उलटी थी। आप बड़े घराने की होने पर भी सासू आदि के साथ कभी कटुता का व्यवहार नहीं होने देती थी। आपके इस आदर्श से बहिनों को शिक्षा लेनी चाहिये।

बहुत सी स्त्रियाँ गहनों के लिये अपने घर वालों के नाक में दम कर देती हैं। कई तो अपनी जेठानियों या देवरानियों के गहने कुछ ज्यादा देख कर ईर्ष्या करने लगती हैं। पर हमारी चरितनायिका शुरू से ही सादगी में पली थी। इन्हें गहने कपड़ों का इतना मोह नहीं था।

कई बहनें अपने वजन से भी भारी जेवर अपने कोमल शरीर पर लाद लेती हैं। सोने चाँदी की ईंटों को, जिनकी शक्ल ईंटों की सी नहीं होती; दुनिया को दिखला दिखला कर ढोने में अपनी प्रतिष्ठा का अनुभव करती हैं। कई बहनें 'गहनों से शरीर सुशोभित हो जाता है' ऐसा मानती हैं, पर मारवाड़ की बहनों की अपेक्षा बङ्गाल और महाराष्ट्र या गुजरात जैसे देशों में मैं समझता हूँ बिना ही गहने पहने सौन्दर्य है। सौन्दर्य गहनों में नहीं शील में है। आजकल जिस तरह के टेढ़े मेढ़े बेडौल और बेढंग जेवर बहनें पहनती हैं, उसे देखकर यही समझ पड़ता है कि अधिकांश बहनें अपने रिवाज का पालन करने के लिये पहनती हैं, अधिकांश अपना बड़प्पन लोगों को दिखाने के लिए पहनती हैं। हर्बर्ट स्पेंसर ने गहनों के विषय में लिखा है कि सर्व प्रथम आभूषणों की उत्पत्ति जङ्गलीपन व शिकारीपन से हुई है। पहले के जङ्गल में रहने वाले मनुष्य शिकार खेलते और पशुओं को मार कर अपना निर्वाह करते थे। उनकी खाल वे पहनने के

काम में लेते और उनके दाँत हड्डियाँ सींग या पंजे आदि गले में डाल कर टाँक लेते या सिर में जड़ लेते। अमेरिका और इङ्गलैण्ड में आज भी युवतियाँ जङ्गली चिड़ियों के कोमल कोमल पंख अपने हेट में लगाने के लिए उन्हें मार डालती हैं। वस्तुतः सौन्दर्य विघातक अलंकार धारण करने की प्रथा अत्यन्त खराब है। इस पर हर एक और विशेषतः मारवाड़ी बहिन को विचार करना चाहिये।

हमारी चरितनायिका को गहनों से लदी रहने का शौक नहीं था। प्रकृति ने प्रारम्भ से ही इन्हें कष्ट-सहिष्णु बनाया था। जो गहने पहन कर दिनभर आलस को अपनाए खा पीकर बैठी रहती हैं, वे भला, कष्टों को कैसे सहन कर सकती हैं? हमारी चरितनायिका के सामने छोटीबहू होने के नाते कई जिम्मेदारियाँ थीं। आप उनको सहर्ष निभाती थीं।

पर आपको नई बहू के ऊपर लादा हुआ यह पर्दे का रिवाज बारबार खटकता था। आपकी ससुराल में पर्दे का कड़क रीति से पालन किया जाता था। उस समय मारवाड़ में इस प्रथा का बहुत जोर था। मारवाड़ की बड़े घरों की देवियाँ तो पर्दानशीन होते हुए भी जब कहीं बाहर जाना होता तो बड़ा बुर्का डाल कर चलती थीं, जिसमें ५-७ औरतें रहती थीं और एक नौकरानी उसे खींचकर चलती थी।

वास्तव में देखा जाय तो पर्दा कोई धर्म का अङ्ग नहीं है। यह तो मुगलकालीन लोगों के मस्तिष्क की उपज है। उससे पहले कहीं पर्दा नहीं था। पर्दे का विधान किसी भी भारतीय ग्रन्थ में नहीं मिलेगा। पर्दा मुस्लिम काल के बादशाहों के आतङ्क से बचने के लिए चलाया गया था। परन्तु अब तो किसी प्रकार का आतङ्क नहीं है। भारतवर्ष के सिवाय टर्की आदि मुस्लिम देशों में, जहाँ पहले पर्दे का बहुत प्रचार था, आज पर्दे का

नामोनिशान भी नहीं है। पर भारत उसी पुरानी रूढ़ि से चिपटा हुआ है।

कई पर्दा प्रथा के हिमायती कहते हैं—'पर्दा स्त्रियों के शील की रक्षा करने वाला है।' पर क्या शील की रक्षा पर्दे से होती है? शील की रक्षा का सम्बन्ध मन से है, न कि बाहरी पर्दे से। यदि आंखों में शर्म हो और मन मजबूत हो तो कोई किसी का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। पर्दा उठाने से महिलाएँ सदाचार छोड़ देंगी, स्वच्छन्द वृत्ति अपना लेंगी यह कथन ही उनका घोर अपमान है। जिन बङ्गाल गुजरात आदि प्रदेशों में पर्दा नहीं, वहां पर्दा वाले प्रान्तों की अपेक्षा कम सदाचार नहीं देखा जाता।

प्राचीन काल में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ धार्मिक-कार्यों में शरीक होती थीं, पठन पाठन करती थीं तथा बड़ी २ राजरानियाँ राजदरबार में आकर प्रजा का न्याय करती थीं। सती शिरोमणि सीता रामचन्द्रजी के साथ वन में गई थी। यदि पर्दा होता तो वह वन में कैसे जा सकती थी? मीराबाई को कौन नहीं जानता? वह एक क्षत्रियकन्या थी। फिर भी उसने पर्दा नहीं रक्खा, वह स्वतन्त्र रूप से मन्दिरों में भगवद्भजन करने जाती थी और साधु-सन्तों के दर्शन करती थी। महारानी अहिल्या बाई ने पति के देहान्त होने पर स्वयं राज्यकार्य चलाया था। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम वीराङ्गनाओं में सर्वप्रथम लिया जाता है। उसने संग्राम में स्वयं जूझ कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे। इतने उदाहरण होने पर भी यह का मोह क्या? कोई बात पुरानी है इसलिए अच्छी है ऐसा मान लेने से बहुत सी गलतियाँ हो जाती हैं। पाप, व्यभिचार, दुर्गुण आदि क्या कम प्राचीन हैं? फिर क्या आवश्यकता है कि उन नारियों को भेड़ बकरियों की तरह, बल्कि उससे भी बदतर अवस्था में घर में

बन्द करके रक्खा जाय ?

आज पर्दा-प्रथा ने हमारी समाज की स्थिति को हास्यास्पद बना रक्खा है। पर्दे ने आज उलटा रूप ले लिया है। घर वालों के सामने तो पर्दा रखा जाता है, जो कि संरक्षक हैं, पर नौकरों, चूड़ीवालों, खौंचे वालों आदि के साथ खुलकर बातें की जाती हैं। बिना पर्दे वाली स्त्रियों से भी कहीं अधिक बेशर्मी और बेहयाई का नङ्गा नृत्य किया जाता है।

पर्दे से स्वास्थ्य दुर्बल होता है, भीरुता बढ़ती है, बाहरी दुनिया का ज्ञान नहीं हो सकता, अपने विचारों को बड़े-बूढ़ों के सामने साफ तौर से नहीं रख सकतीं। इस तरह के कई नुकशानों को देखते हुए समाज के सुधारकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई है। महिला समाज जागृत हो रहा है, वह अधिक दिन ऐसे कैदखानों में रहने वाला नहीं।

हमारी चरितनायिका भी पर्दे को बन्धन-कारक समझ रही थीं। आपके पतिदेव भी बड़े शान्त-स्वभाव के थे। वे भी समाज की इस बर्बर प्रथा को समझ रहे थे। पर व्यापारिक झंझटों में फांसे रहने के कारण उन्हें इस ओर सोचने का अवकाश कम मिलता था। आपके पतिदेव विवाह के करीब दो मास बाद ही दिल्ली रवाना होगए। करीब साल-भर रह कर फिर दिल्ली से वापिस लौट आए क्योंकि उनकी बहन गुलाबबाई के पति का अचानक ही देहान्त हो गया था। इससे उनके हृदय में काफी धक्का पहुँचा। पर मनुष्य क्या कर सकता है? बदमलप्रासजी सोजत में फिर दो महीने तक रहे और वापिस दिल्ली चले गये। इधर प्रकृति क्या लीला दिखाती है। यह पाठक आगे पढ़ेंगे।

वज्राघात!

मानव अपने जीवन में कितनी ही बातें सोचा करता है। वह अपने जीवन का ही नहीं, दूसरों के जीवन के सम्बन्ध में भी सुनहले स्वप्न देखा करता है। वह न जाने कितने कल्पनाओं के पहाड़ अपने सामने खड़े कर लेता है और सोचता है कि मैं शीघ्र ही इन पहाड़ों पर चढ़ाई कर लूँगा। पर उसकी वह चढ़ाई अधूरी ही रह जाती है। उसका बुना हुआ वह काल्पनिक जाल अपूर्ण ही रहता है, उसकी रङ्गीन दुनिया बनाने के स्वप्न अधूरे ही रह जाते हैं।

मनुष्य की दशा उस भौंरे की सी है जो सन्ध्या-समय कमल के ऊपर बैठा है। मन्द-मन्द सुगन्ध से मोहित होकर विचार कर रहा है—क्या जल्दी है, थोड़ा और सुगन्ध का आनन्द उठा लें, फिर तो उड़ कर चलना ही है। परन्तु थोड़ी देर में सूर्य छिपने से कमल का फूल बन्द हो जाता है। भौंरा फिर भी यही विचारता है—क्या बात है? हो जाने दो बन्द। सुबह तो होगा ही। सूर्य भी निकलेगा ही। फूल भी खिलेगा। बस हमें उड़ चलेंगे। परन्तु वह अज्ञानी क्या जानता है कि इतनी देर में क्या का क्या हो जायगा। उसकी सारी आशालताएँ मुरझा जाती हैं। वह इस प्रकार सोच रहा है इतने में एक हाथी आ जाता है और अपनी सूँड से उस फूल को जड़ से उखाड़ कर फेंक देता

है। इन्हीं भावों का सुन्दर चित्र नीतिकार आचार्य भर्तृहरि ने बड़ी ही मार्मिक ढंग से खींचा है—

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा! हन्त हन्त! नलिनीं गज उज्जहार!"

ऐसी ही उधेड़बुन में मनुष्य लगा रहता है कि बीच में ही मृत्यु आकर गला धर दबाती है। काल की गति बड़ी विचित्र है। वह किसी के लिए रियायत नहीं करता। भगवान् महावीर का जब बहुत निकट भविष्य में संकट पड़ता देखकर देवराज इन्द्र, भगवान् के चरणों में पहुँच कर नम्र निवेदन करता है—

'भगवन्! इस समय आपका निर्वाण होने से आप पर महान् संकट आने वाले हैं। आप अपनी आयु के क्षणों को थोड़ा और बढ़ा लें तो यह सब संकट दूर हो सकते हैं।' इस पर भगवान ने क्या कहा? उन्होंने यही कहा—"देवराज! यह असम्भव है। समय की गति को रोका नहीं जा सकता। जीवन समाप्त होने को है, मैं उसे बढ़ा नहीं सकता। मैं क्या, संसार की कोई भी शक्ति यह काम नहीं कर सकती।"

'कालस्य कुटिला गतिः' इस उक्ति में कितना सत्य है! बड़े-बड़े राजा महाराजा इस पृथ्वी पर आए और अपने बाहुबल से एक बार सारी पृथ्वी को कंपा गए। उन्होंने सारा भूमण्डल अपने अधिकार में कर लिया। और वह मूछों पर ताव देकर कहते—हम-सरीखा कौन बली है? कौन ऐसा है जो हमारे सामने टिक सके? पर जब काल विकराल रूप में सामने आकर खड़ा हुआ तो उनके पैर भी काँपने लगे। मृत्यु का अट्टहास कितना भयंकर है! उस समय सारे मंसूबे धरे ही रह जाते हैं

और काल के हाथ में अपने को सौंपना पड़ता है। यहीं आकर मनुष्य की सारी बुद्धि, सारी फिलॉसोफी खतम हो जाती है।

हाँ, तो हमारी चरितनायिका के पतिदेव लक्ष्मणदासजी अभी दिल्ली पहुँचे ही थे। वे हृदय में कई सुनहली कल्पनाओं को स्थान दिये हुए थे। वे युवक-दिल थे और अपने भविष्य को सोचने वाले थे। उन्हें क्या पता था कि इस बार दिल्ली से लौटना हो सकेगा या नहीं? दिल्ली आए चार छह महीने ही हुए थे कि अकस्मात उनके ऊपर सर्दी के कारण भीषण व्याधि ने हमला कर दिया। दिल्ली जैसे प्रसिद्ध शहरों में साधनों की कोई कमी नहीं थी। सेठ बालाबक्सजी का भी आप पर पुत्र से बढ़कर स्नेह था। वे भोजन वस्त्र आदि में आप से किसी प्रकार का द्वैत नहीं रखते थे। उनको आपका सिर दुखना भी असह्य मालूम होता था, तो इस बीमारी को सुनकर कैसे बैठे रह सकते थे? सेठजी ने दिल्ली के बड़े से बड़े नामीगिरामी डाक्टरों को लाकर दिखाया, पैसा पानी की तरह बहा दिया। स्नेह के आगे पैसे का क्या मूल्य है? उन्होंने यहाँ से लक्ष्मणदासजी के घर (सोजत भी) अर्जेंट (शीघ्रगामी) तार दिलाया। तार मिलते ही लक्ष्मण दासजी के बड़े भाई फतहचन्दजी उन्हें सोजत लाने के लिये दिल्ली रवाना हुए। उन्हें क्या पता था कि हमारे भाई की बीमारी इतना भयंकर रूप ले लेगी? वे सीधे दिल्ली आए। आते ही अपने भाई की मरणासन्न हालत देख कर सन्न रह गए। कई प्रसिद्ध डाक्टरों से मिलकर उन्होंने सलाह ली। पर काल के आगे उन डाक्टरों की क्या चल सकती थी? 'टूटी की बूटी नहीं' यह कहावत अक्षरशः सत्य है। कोई रोग होता तब तो ठीक हो जाते। पर यह तो मरण रोग था, जो अपना रूप बदल कर आया था। उसका वारंट खाली नहीं जा सकता था। वह आया और हमारी चरितनायिका के साथी, पतिदेव को संवत् १६६४ को

मार्गशीर्ष कृष्णा ८ को छीन ले गया। इस नवल जोड़ी को, जिसने अभी गृहस्थाश्रम की पगडण्डी पर पैर रखा ही था, वह छिन्न भिन्न कर गया! पूरे दो वर्ष भी इस जोड़ी को अक्षयण्ड नहीं रहने दिया! वह निर्दय काल रूप गजराज इस खिलते हुए कोमल फूल को उखाड़ गया। हा! लेखनी भी, जो इस दुःखद घटना को लिखने से पहले वज्र सी बनी हुई थी, स्याही की बूंदें बरसा कर मानो अश्रुपात कर रही है!

फतहचन्दजी लक्ष्मणदासजी की शय्या के पास ही बैठे थे। थोड़ी देर पहले दोनों भाई बातें कर रहे थे और सब हालात पूछ रहे थे। अचानक अपने भाई को मौन देख कर फतहचन्दजी ने मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—लक्ष्मण! अब तुम्हारी तबियत कैसी है? लक्ष्मणदासजी मौन थे। फतहचन्दजी ने सोचा—'शायद इसे निद्रा आ गई है' परन्तु वे तो सदा के लिये महा निद्रा की गोद में सो गये थे। उन्होंने तो अपना विश्रामस्थल और ही कहीं ढूंढ लिया था। नाड़ी देखी तो अवरुद्ध! बोली बन्द! बस, भाई के धैर्य का धागा टूट गया। उन्होंने समझ लिया कि मेरे भाई ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी है, इस असार संसार से उसने अपना डेरा उठा लिया है। शोक के आँसू उमड़ पड़े। उनका दाह संस्कार वगैरह किया। उनका एक सहारा भाई इस संसार से चला गया था, अतः अब दिल्ली में रह कर उन्हें क्या करना था। वे तुरन्त सोजत आए।

घर वाले तो यही सोच रहे थे कि फतहचन्द दिल्ली गया है इसलिये—लक्ष्मणदास को लेकर ही लौटेगा। वे उनके आने की प्रतीक्षा में थे और हमारी चरित्रनायिका को भी अपने पीहर से बुलवा लिया था। चरित्रनायिका को माताजी ने नहला धुला कर वस्त्राभूषण पहना कर ससुराल भेजा था। पर मनुष्य का सोचा हुआ कुछ नहीं होता। "तेरे मन कछु और है हरि के

मन मस्तु और

फलहचन्दजी ने अपने भाई की आकस्मिक मृत्यु का दुःखद समाचार अपने कुटुम्ब को सुनाया। सारा कुटुम्ब ही नहीं सारा नगर इस वज्रपात-सी घटना को सुनकर शोकसागर में डूब गया। जिसने भी काल की यह निर्मम घटना सुनी वह चकित-सा हो गया। सारे घर में कोहराम मच गया।

हमारी चरितनायिका ने जब यह घटना सुनी तो आप की आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। पैरों के नीचे से मानो भूमि खिसकने लगी। यह मर्मान्तक हाल सुनकर आपके ऊपर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। परन्तु आप क्या कर सकती थीं? होनहार निश्चित था, संसार की कोई भी ताकत उसे रोक नहीं सकती थी। यह घड़ी तो हर्गिज नहीं टाली जा सकती थी। मगर आपको यह बड़ा भारी दुःख था कि अपने पतिदेव की अन्तिम समय में सेवा-शुश्रूषा न कर सकीं, उन्हें कुछ भी सान्त्वना न दे सकीं। दो वर्ष के लिये गृहस्थाश्रम की रंगस्थली पर जो नाटक खेलना था, नाटक का एक अङ्क समाप्त हो गया है। यवनिका गिर गई है। अब आगे भविष्य न जाने क्या नाटक दिखाती है, यह पाठक देखेंगे।

हमारी चरितनायिका अब गृहस्थाश्रम की पगडण्डी पर अकेली चल रही हैं, उनका साथी बिछुड़ गया है। बारबार दिल के दुःख-बाष्प से आँसुओं के बादल बन कर उमड़ते हैं, आप दिल की बाष्प समझा-बुझा कर रोकती हैं और पोंछती हैं। कई मिलन वाले कुटुम्बी आते हैं और सान्त्वना देते हैं पर आपके दिल पर जो गहरा घाव हो रहा है, वह झटपट कैसे दुरुस्त हो सकता है? कई बहिनें आती हैं और अनायास ही रोने का बहाना करके आपके सामने उस दुःखद घटना को ताजा कर देती हैं और सान्त्वना देने के बदले और अधिक रुलाती हैं।

मारवाड़ में किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर रोने पीटने की भयङ्कर प्रथा है। इस प्रथा के पीछे अधिकतर तो ढोंग मच पड़ा है। घर के किसी बड़े-बूढ़े के चले जाने पर उतने आँसू नहीं आवें; क्योंकि वह तो अपनी जिन्दगी किनारे लगाये ही बैठा था और परलोक जाने की प्रतीक्षा में था। उसके लिए भी नकली आँसू बहा कर लोग अपनी आत्मा को आर्तध्यान में डालते हैं।

हाँ, सच्चा रोना तो किसी का भी रोका नहीं जा सकता। पर रोने के पीछे भी विवेक होना चाहिए। कई जगह देखा गया है कि रोना नहीं आता है तो पनापटी भी आँसू बहा कर मुँह की मुँह वहीं में उस बहिन को, जिसका पति अभी अभी परलोक गमन कर गया है, रुलाती रहती हैं। उनके रोकर समवेदना प्रगट करने के लिए आने का भी तो निश्चित समय नहीं है। एक टोली आकर गई और दूसरी तैयार रहती है। मरने वाला तो परलोक चला गया पर उसके पीछे बिचारी विधवा बहिन को ये रुला रुला कर अधमरी कर डालती हैं। उसकी विरहाग्नि को बार बार याद दिला कर हवा देती रहती हैं और अग्नि को प्रज्वलित करती रहती हैं। ऐसी प्रथाएँ उर्मादातर अशिक्षित समाज में अन्ध विश्वास के सहारे चल पड़ी हैं और अब भी जहाँ कहीं ये प्रथाएँ चल रही हैं, वहाँ अशिक्षा ही उनका प्रधान कारण है। जनता को और खास कर जैन कहलाने वाले लोगों को इस विषय में अधिक ध्यान देने की जरूरत है। उन्हें इस पर गहराई से सोचना चाहिये।

जैनधर्म किसी के मरने के बाद मृतात्मा का मिलन हो ही, यह बात नहीं मानता। वह तो कर्म सिद्धान्त पर चलने वाला है और कहता है—किसी भी प्राणी की गति उसके शुभाशुभ कर्मों पर निर्भर है। ऐसी दशा में मृतात्मा के पीछे व्यर्थ ही रो-पीट कर अपनी आत्मा को शोक में डालने से क्या फायदा ?

हमारी चरितनायिका कहा करती थी कि—"मेरे दादा ससुरजी के समय तक घर में किसी के मर जाने पर रोने-पीटने की प्रथा बिलकुल नहीं थी। रामभक्त यही समझते थे कि "हमें राम ने ही दिया है और रामजी ही ले गये, इसके लिये हम शोक सन्ताप क्यों करें ?" पर बाद में दूसरे लोगों के सम्पर्क से यह प्रथा रामभक्त शालरामजी मूथा के घर में भी प्रचलित हो गई।"

वास्तव में इस प्रथा के पीछे अज्ञान चक्कर काट रहा है। किसी की मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता। जो जन्मा है वह एक दिन मरेगा ही। मरना कोई दुःख नहीं। उसने तो अपने पुराने चोले को बदल दिया है इसमें दुःख किस बात का ?

विधवा-जीवन

मनुष्य हमेशा सुख की खोज में भटकता रहता है। इसके लिये कई लोग तीर्थों, मन्दिरों, पण्डे, पुजारियों और फकीरों के द्वार खटखटाते हैं। पर वहाँ भी उनके मनोरथ पूरे नहीं होते। कई लोग दुःख के नाम से बचने के लिये गृहस्थाश्रम की शरण लेते हैं और समझते हैं, विवाह हो जाने पर सुख की धारा बहने लगेगी। पर वहाँ भी वे मृगतृष्णा जैसे उन वैषयिक सुखों में ऐसे फँस जाते हैं कि उनके लिए वास्तविक सुख की राह मिलनी बड़ी कठिन हो जाती है। इन वैषयिक सुखों को भोगते समय तो क्षणिक सुख का आभास होता है, पर जब वे छूट जाते हैं तो मनुष्य उनके लिए शोक करता है, आँसू बहाता है। ऐसे समय में वह किसी न किसी शान्तिदायक वस्तु का आश्रय लेकर ही अपने जीवन में सुख की प्यास बुझा सकता है। वियोग के ताप से तप्त मनुष्य के लिए धर्म ही एक मात्र दवा है जो शांति दे सकती है। प्रसिद्ध नीतिज्ञ आचार्य चाणक्य ने कहा है—

"सुखस्य मूलं धर्मः"

—चाणक्य सूत्र

विधवा बहनें जो अपने पति के वियोग में व्याकुल हो रही हों, उनके लिए भी धर्म का आश्रय श्रेयस्कर है। धर्म का सहारा लेकर वे अपने जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त कर

सकती हैं। शिक्षा (स्वाध्याय), भगवद्भजन आदि धर्म के अङ्ग हैं।

हमारी चरितनायिका के पतिदेव का अचानक वियोग हो जाने पर वे कुछ दिन तो अन्यमनस्क-सी रहीं, पर बाद में आपने देखा कि इस तरह तो सारी उम्र बिताना मुश्किल ही हो जायगा। मुझे कोई न कोई ऐसा अवलम्बन ढूंढना चाहिए जिसके जरिये मेरे दिन शान्ति से बीतें। आपके जेठ (ज्येष्ठ) फतहचन्दजी बड़े समझदार थे। वे ही आपके पतिदेव की मृत्यु के समय उनके पास थे, इसलिए आपको देखकर उनका मन दयार्द्र हो गया। वे आपकी इस अवस्था को देख न सके। उन्होंने आपके जीवन को सुखपूर्वक बिताने के लिए शिक्षा का सहारा हितकर समझा।

शिक्षा से शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का विकास होता है। शिक्षा के बिना कोई भी मानव अपने कर्त्तव्य को भली भाँति नहीं समझ सकता। शिक्षा के अभाव में अपना हिताहित का ज्ञान नहीं हो सकता। धार्मिक और आध्यात्मिक बातों को समझने के लिए भी शिक्षा की जरूरत है। शिक्षा-हीन कोरे मस्तिष्क क्या आध्यात्मिक उड़ान भरेंगे?

पुरुषों की तरह स्त्रियों के लिए भी शिक्षा आवश्यक है। जो लोग कहते हैं कि स्त्री शिक्षा से बिगड़ जाती है, उन्हें समझना चाहिए कि क्या वह शिक्षा, जो पुरुषों का जीवन ऊँचा बनाती है, स्त्रियों को बिगाड़ सकती है? क्या माता भी वन्ध्या हो सकती है? आज पुरुषसमाज स्त्रियों के सुधार की आवश्यकता महसूस कर रहा है। पर सुधार की जड़ क्या है? स्त्री-शिक्षा के बिना स्त्रियों का सुधार लंगड़ा है, अधूरा है। वह स्थायी नहीं। कई पुराणपंथी लोग स्त्रियों की शिक्षा के लिए काफी विरोध करते हैं। वे एक पद में दो कलंग, बलामा, अनिष्टकारक समझते हैं।

उन्हें यह सोचना चाहिये कि क्या भगवान् ऋषभदेव यह नहीं समझते थे, जो अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को उन्होंने शिक्षा दी ? आज पुरुष भले ही स्त्री शिक्षा का निषेध करें पर उन्हें यह न भूलना चाहिये कि रमणीरत्न ब्राह्मी ने ही पुरुषों को साक्षर बनाया है। उसी की यादगार में लिपि का नाम भी 'ब्राह्मी' प्रचलित है। विद्यालय के लिए स्त्री शिरोमणि सरस्वती की पूजा करके, उसी नारी-समाज को निरक्षर बनाए रखना, अन्याय नहीं तो और क्या है ? समाज और राष्ट्र को गांधी और जवाहरलाल जैसे योग्य नागरिक देने के कार्य में शिक्षित स्त्रियाँ ही पूर्ण सफल हो सकती हैं। एक शिक्षित स्त्री घर को सुख और शान्ति का केन्द्र बना सकती है। नारी पुरुष की अर्धाङ्गिनी मानी जाती है। क्या यह कभी संभव है कि किसी का आधा अङ्ग बलिष्ठ हो और आधा अङ्ग दुर्बल हो ? जो स्त्री शिक्षित न हो वह पुरुष का आधा अङ्ग कैसे बन सकती है ? वह पुरुषों के कार्यों में क्या हाथ बटाएगी, जो खुद ही अशिक्षित हो ? अशिक्षित बहनें अपने ऊपर गार्हस्थ्य का भार आ पड़ने पर अत्यन्त घबरा जाती हैं, पर शिक्षित महिलाएँ घर के प्रत्येक कार्य को धैर्य और उत्साह के साथ करती हैं। वे गृहस्थी के बोझ से कभी घबराती नहीं। शिक्षित महिलाएँ अपने वैधव्य-काल को बड़ी सुगमता से काट लेती हैं और अपने आश्रितों की यथायोग्य सहायता करने में भी पर्याप्त क्षमता पा लेती हैं। शिक्षित महिला अपना जीवन स्वावलम्बी बना सकती है, उसे छोटे-मोटे कामों के लिए दूसरों का मुख नहीं ताकना पड़ता। संक्षेप में यों कहना चाहिए—शिक्षा प्रकाश है तो अशिक्षा अन्धकार है।

बहनों में यदि शिक्षा का संचार होता तो वे परमात्मा को छोड़कर किसी देवी-देवताओं के दरवाजे नहीं भटकती फिरतीं। आज स्त्री-समाज में अन्धविश्वास और कुरूढ़ियों का जो राज्य चल

रहा है यह उस अशिक्षादेवी का ही प्रताप है। गहनों में गहनों और कपड़ों के लिये हठ और मोह इस अशिक्षा-पिशाचिनी ने ही पैदा किया है। रोने-पीटने और पुराने रीति रिवाजों में धर्म समझने के उपरोक्त अशिक्षा के ही प्रभाव से होते हैं। अतः समाज को शीघ्र ही महिलासमाज की शिक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा से ही उनमें नम्रता, शिष्टता, मधुरभाषिता, शील और सदाचार तथा ऊँचे विचारों का प्रवेश हो सकता है।

हाँ, तो मुझे कहना चाहिए कि उस शिक्षा के प्रभाव से ही हमारी चरित्रनायिका धार्मिकता और सत्यता के मार्ग पर आरूढ़ हो सकी थीं। और प्रवर्तिनी-पद दिलाने में भी शिक्षा का मुख्य हाथ रहा है।

हमारी चरित्रनायिका के ज्येष्ठ फतहचन्दजी ने शिक्षा प्राप्त कराने के लिए अपने छोटे भाई कुशलरामजी को कहा। कुशलरामजी चरित्रनायिका के देवर थे, अतः उनसे शिक्षा लेने में आपको कोई संकोच न था। उन्होंने अपनी विधवा बहन गुलाबबाई और आपको—दोनों को पढ़ाना शुरु किया। आपको ककहरा और 'सिद्धोवर्णसमाम्नायः' आदि पहले पहल सिखलाया गया। आपकी बुद्धि बड़ी पैनी थी। आप को जल्दी ही पुस्तकें पढ़ना आ गया था। यद्यपि आपकी शिक्षा सुन्दर ढंग से नहीं हुई थी तो भी यह कहना पड़ेगा कि आप जिन पुस्तकों को पढ़तीं उनका सारांश समझ जाती थीं।

महान् आत्माओं को पढ़ने के लिए किसी पाठशाला में प्रविष्ट होना नहीं पड़ता। प्रत्येक क्षण उनका अध्ययन काल है और प्रत्येक स्थान है—उनकी पाठशाला। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वे अपनी विशिष्ट प्रतिभा से नवीन-नवीन ज्ञानोपार्जन करने में लगे रहते हैं। वे उसका उचित उपयोग करते हैं। सामान्य व्यक्ति पुस्तकों में लिखी बातों को अपने मस्तिष्क में ठूँस लेता

हैं और समय पर उन्हें उगल देता है परन्तु जीवन में नहीं उतारता। ऐसे व्यक्तियों के लिए ज्ञान भारभूत होता है। महान् आत्माएँ ऐसा नहीं करतीं, वे तो जो कुछ सीखती हैं उसको जीवन में अमलीरूप दे देती हैं।

साधारण व्यक्ति अधिकतर पुस्तकों पर निर्भर रहते हैं। किसी से सुने या पढ़े बिना उन्हें ज्ञान नहीं होता। पर विशिष्ट आत्माओं के लिए सारा संसार ही एक खुली हुई पुस्तक है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिवर्त्तन, प्रत्येक स्पन्दन उनके सामने नया पाठ लेकर आता है और उन्हें नया बोध दे जाता है।

हमारी चरितनायिका भी अधिकतर प्रकृति के विद्यालय में ही पढ़ी। उन्हें अपने पतिदेव की मृत्यु की घटना नया ही बोध दे रही थी। वह तो उन्हें अपना जीवन पहले से भी सादा और स्वतन्त्र बिताने की शिक्षा दे रही थी। प्रकृति की यह शिक्षा आपको धार्मिक नारी बनने के लिये संकेत कर रही थी।

आपके मन में भी धर्म की बातें जानने की और तदनुसार आचरण करने की उत्कण्ठा जागी। यह पहले कहा जा चुका है कि आपकी ससुराल वाले रामभक्त थे। आपको भी एक राम भक्ति सिखाने वाली धर्मात्मा बुढ़िया मिल गई। वह बुढ़िया एक रामसनेही संन्यासी की माता थी। उसने आपको कई धर्म की बातें बतलाई और भजन भी सिखाए। वह बुढ़िया आपके नम्र स्वभाव और धार्मिकज्ञान की पिपासा देखकर आपसे बड़ा ही स्नेह रखती। आपको उसने रामलीला व कई प्रकार के हरजस (हरिकीर्त्तन) भी बतलाए। वह आपको रामसनेही संन्यासियों के दर्शन कराने लिए रात्रि के समय रामद्वारे में भी अपने साथ ले जाती। उनके विधि विधान भी वह समय-समय पर आपको बताती। आप प्रकृतिमग्न थीं ही, आपने अपना प्रतिदिन का यह कार्यक्रम बना लिया और हमेशा रामभजन और कीर्त्तन

करने लगी। आप रामद्वारे में जाते ही दण्डवत् करके एक तरफ बैठ जातीं और अपना भजनादि कार्य करतीं रहती। आपके धार्मिककृत्यों को देखकर घरवाले बड़े ही प्रसन्न रहते थे। वे आपकी भद्र और विनीत प्रकृति की बार बार सराहना किया करते थे। और आपके ज्येष्ठ तो आपको 'बेटी' कहकर पुकारते और बड़े मीठे शब्दों से आपको किसी काम के लिए कहते। आपके किसी धार्मिक कार्य में वे विघ्न नहीं डालते थे। उन्हें आपका जीवन पवित्र और सादगी से परिपूर्ण नजर आ रहा था। आपके विधवा होने पर कभी भी आपके घरवालों ने आपका मन कुपित या व्यग्र करने की चेष्टा नहीं की। वे आपको शील की देवी समझते थे। वे इस जीवन को घृणित और दुःखमय नहीं बल्कि पवित्र देवी जीवन समझते थे, जिसमें भोग जीवन की समाप्ति के साथ ही आत्यन्तिक सुख और परमानन्द की प्राप्ति कराने वाले आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है। इससे आज के समाज को शिक्षा लेनी चाहिए।

वास्तव में विधवा बहनें पुण्यशालिनी और भाग्यवती हैं। परन्तु आज समाज में विधवा को अपमानित और घृणित दृष्टि से देखा जाता है, उसका प्रातःकाल दर्शन होना अमंगल माना जाता है, उससे दास-दासियों से भी बढ़कर घर का काम लिया जाता है। कई जगह तो उन्हें विषय के अग्निकुण्ड में कूदने को विवश किया जाता है। उन्हें नाना प्रलोभन देकर अपने शीलधर्म से भ्रष्ट किया जाता है। पर यह समाज के लिये भयंकर अभिशाप है। क्रान्तिकारी स्व० आचार्य जवाहरलालजी म० के शब्दों में समाज को समझना चाहिए। उन्होंने कहा था—

"आपके घर में विधवा बहिनें शील की देवियाँ हैं। उनका आदर करो, उन्हें पूज्य मानों, उन्हें दुःखदायी शब्द मत कहो। यह देवियाँ पवित्र हैं, पावन हैं, मंगलरूप हैं, उनके शकुन अच्छे

हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमंगलमयी हो सकती है ? समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलमयी और शीलवती को अमङ्गला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है ?''

इस प्रकार हमारी चरितनायिका का जीवन धर्मकार्य में ही व्यतीत हो रहा था। आपके वैधव्यधर्म के पालन के लिये आपके ससुराल वालों ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई। उन्होंने खुद अपना जीवन सादा और संयमी-सा बना लिया था। आपके लिए यह महान् गौरव की बात थी। आप स्वयं अपने वस्त्र भड़कीले या रंग बिरंगे नहीं पहनती थीं। बारीक वस्त्रों के उपयोग से आप दूर ही रहती थीं। विकारोत्पादक चीजों का सेवन करना भी आपने बन्द कर दिया था। आप अब ब्रह्मचर्य के अमोल रत्न को साथ लिये जीवन की पगडंडी तय कर रही थी।

सत्य के द्वार पर

मनुष्य का जीवन संगति के कारण बदलता रहता है। उसे जैसी संगति मिलती है वैसे ही विचार और आचरण बनते जाते हैं। पारस पत्थर के पास में आकर लोहा भी सोना बन जाता है, तो मनुष्य का तो कहना ही क्या? वह तो चेतन और बुद्धिमान् प्राणी है। उसका रंग बदलते क्या देर लगती है? भगवान् महावीर के सत्संग में आकर अर्जुन मालाकार जैसा हत्यारा, जो ११४१ मनुष्यों की हत्या करने वाला था, थोड़ी देर में ही क्षमाशील बन गया और एक व्यसनी-भंगेड़ी-गंजेड़ी और जुआरी की संगति पाकर वही मनुष्य वैसा ही बन जाता है। हैं दोनों ही मनुष्य। पर एक अच्छाई का मार्ग—संयम की सड़क अपनाता है और एक अपनाता है बुरा मार्ग—नरक के गर्त में गिराने का मार्ग। नीतिकार भर्तृहरि ने तो सत्संग को संसार में सबसे श्रेष्ठ वस्तु बतलाई है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।

हाँ, तो हमारी चरित्रनायिका, जो अभी तक जैनधर्म के विषय में इतनी विज्ञ नहीं थी, एक ऊँची साधना की अधिकारिणी

बन गईं, यह सब किसकी सहायता से? यह सत्संगति के ही अद्भुत प्रभाव का फल था। हमारी चरित्रनायिका की बड़ी बहिन थीं—फूलकुँवरबाई। वह वास्तव में फूल के से ही गुणों वाली थीं। उनका जीवन भी धार्मिक था, और उन्होंने जब सुना कि मेरी बहन के पति का वियोग हो गया है, वह दाम्पत्य के बन्धन को तोड़ कर निर्मुक्त हो गई है, तो उसे भी धर्म की सच्ची राह बतलानी चाहिए। फूल केवल अपनी शोभा के लिये ही नहीं खिलता है, वह साथ ही दूसरों को भी, जो उसकी संगति में आता है, सुगन्ध प्रदान करता है। फूलकुँवर बाई ने अपने सच्चे धर्म की सुगन्ध से अपनी छोटी बहन को भी शुभ करना चाहा। उन दिनों आप पीहर चली आई थीं, फूलकुँवर बाई भी पीहर ही थीं। आपको भी वह अक्सर कहा करती थीं—"तुम्हें अपना जीवन अब परमात्म भजन में बिताना चाहिये, मैं तुम्हें अवसर आने पर धार्मिक बातें भी बताऊँगी और तुम्हें सच्चे धर्म का बोध कराऊँगी।"

जहाँ सच्ची चाह होती है वहाँ राह भी मिल ही जाती है। मनुष्य अपने दृढ़ सकल्प और अन्तर्वेग के द्वारा कठिन से और अलभ्य वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है। फूलकुँवर बाई इस फिराक में थी ही कि कोई भाग्यवती साध्वीजी म० यहाँ पधार जाँय तो मैं अपनी बहन को उनके पास लेजाकर धर्म का स्वरूप समझाऊँ।

दैवयोग से एक दिन फूलकुँवर बाई अपने पीहर आ रही थीं रास्ते में आपको एक महासतीजी महाराज के दर्शन हो गए वह महासतीजी महाराज जैन साध्वी थीं। उनका नाम था आनन्दकुमारीजी महाराज। वे स्थानकवासी-सम्प्रदाय में उच्चकोटि की साध्वी गिनी जाती थीं और जैनाचार्य पूज्यश्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के तत्कालीन

पट्टधर जैनाचार्य १००८ श्री उदयसागरजी महाराज की आज्ञानु वर्त्तिनी थीं। व उस समय मालवदेश से विहार करके जनता को अपनी अमृतवाणी का पान कराती हुई सोजत नगर में ठाणा ३ से पधारी थीं। साथ में दो महासतियाँ थीं उनका नाम क्रमशः केशरकुमारीजी म० और लक्ष्मीकुमारीजी म० था। यह वीर और तेजस्विनी वैराग्यवती प्रवर्त्तिनी श्री रंगूजी म० की सम्प्रदाय की अनुयायिनी थीं। सोजत में यह महासतियाँ हिमावतों के वास में ठहरी थीं। उसी वास में फूलकुँवर बाई का पीहर था। फूल कुँवर बाई वैसे तो जैनसम्प्रदायान्तर्गत मूर्तिपूजक सम्प्रदाय को मानने वाली थीं, पर उनका आग्रह किसी ओर ज्यादा नहीं था। वे गुण को महत्त्व देती थीं, और समझदार भी थीं। महा सतीजी आनन्दकुमारीजी म० के प्रभावशाली चेहरे को देखकर आप बड़ी प्रभावित हुईं। महासतीजी के त्याग और वैराग्य को देखकर फूलकुँवरबाई के हृदय में भी धर्मजिज्ञासा प्रकट हुई। उनके मन में भी महासतीजी के प्रति श्रद्धा का अंकुर पैदा हो गया। फूलकुँवरबाई ने महासतीजी से निवेदन किया—'महाराज! हम तो दूसरे मार्ग को मानने वाले हैं। हैं तो जैन ही। हमें आपके साधुमार्गी-सम्प्रदाय से विशेष परिचय नहीं है। आप मुझे अपने धर्म का कुछ परिचय दीजिये। मैं समझती हूँ, आप हमारे ही भाग्य से यहाँ पधारी हैं और जैनधर्म के सच्चे आदर्शों पर चलने वाली हैं।'

महासतीजी—"बहन, तुम जो कहती हो, वह ठीक है। मैं तो भी जैन संघ की एक तुच्छ सेविका हूँ। मैंने यह बाना इसीलिये धारण किया है कि मैं अपना भी कल्याण करूँ और दूसरों का भी। जो भी मेरी संगति में आवें, मैं उन्हें सफल जीवन बनाने की सच्ची बातें बताना चाहती हूँ। मेरा तो यह कर्त्तव्य ही है और धर्म तो कोई मत, सम्प्रदाय या पन्थ जैसी चीज नहीं

हैं। मतों, पन्थों या सम्प्रदायों में धर्म का पुट रह सकता है, पर मत, पन्थ या सम्प्रदाय ही धर्म हों, यह बात नहीं है। मत, पंथ, सम्प्रदाय आदि तो धर्म-पालन करने के लिये साधन हैं। धर्म तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में है। वह तो मन्दिरमार्गी (मूर्तिपूजक) और साधुमार्गी (स्थानकवासी) दोनों को समानरूप से मान्य है। इसमें कोई विवाद नहीं है। जैनधर्म संसार के लिए सबसे उच्च संदेश देने आया है। वह ससार के कीचड़ में फँसे हुए लोगों को निकालने के लिये अपना अमूल्य उपदेश दे रहा है। जैनधर्म दया का प्रबल पक्षपाती है। गरीबों की ही नहीं, वह तो प्राणीमात्र की भलाई करने को कहता है। जैनधर्म की यह खास विशेषता है कि अपना विकास वह खुद से ही होना बतलाता है। वह कहता है—तुम दुःखी हो तो तुम्हें किसी परमात्मा के आगे गिड़गिड़ाने की जरूरत नहीं है। तुम्हीं अनन्त शक्तियों के पुञ्ज हो। तुम्हारे कर्मों से तुम दुःखी बने हो और तुम्हीं उन्हें दूर करोगे तो स्वतंत्र हो सकोगे। तुम तो स्वयं सिद्धस्वरूप हो। थोड़े में मैं इतना ही कहती हूँ कि जैनधर्म अन्धकार में भटकते हुए संसार के लिए प्रकाश देने वाला दीपक है। तुम उसी की आराधना करो।"

महासतीजी के प्रभावोत्पादक वचनामृत सुनकर फूलकुँवर बाई गद्गद हो उठीं। वह समझने लगीं, मानो कई दिनों से भूखे को आज भोजन मिला हो, वह भी स्वादिष्ट। उनकी ज्ञानपिपासा जाग उठी। अब तो महासतीजी के पास प्रतिदिन आने लगीं और उनके धर्मोपदेश बड़ी रुचि से सुनतीं। एक दिन, अवसर पाकर फूलकुँवरबाई ने महासतीजी से श्राविका के व्रत ग्रहण कर लिये और महासतीजी से सविनय प्रार्थना की—महासतीजी म०! मेरी एक छोटी बहन है, वह अभी १६ वर्ष की है और उसके पति का वियोग हो गया है। आप उचित समझें तो उसमें जैन

गुत्थियों को समझने लिए आपकी चिन्तनशील मानसशक्ति तैयार हो गई।

जैनधर्म जहाँ आचारप्रधान धर्म है, वहाँ उच्चकोटि का विचारप्रधान धर्म भी। यह मनुष्य की प्रतिभा और तर्कबुद्धि को पङ्गु नहीं बनाता, प्रत्युत अधिकतर वेग प्रदान करता है। यही कारण है कि जहाँ पुस्तकों को रटा-रटा कर विषय को दिमाग में ठूँसने वाले इसके सिद्धान्तों को समझने में असफल हो जाते हैं, वहाँ साधारण-सा परिश्रमशील व्यक्ति इसके उपयोगी तत्त्वों को हृदयंगम कर लेता है। हमारी चरितनायिका की धार्मिक भावना जो अभी तक इनेगिने मिथ्याविश्वासों और असंस्कृत साधुओं तक ही सीमित थी, वह अब तर्क का वास्तविक रूप लेकर शुद्ध सत्य की ओर मुड़ने लगी। जैनधर्म पर आपकी श्रद्धा द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति निरंतर बढ़ती चली गई।

आनन्दकुमारीजी अब प्रतिदिन महासतीजी म० के दर्शनार्थ आने लगीं। आपने अपनी तीव्र बुद्धि के कारण थोड़े ही दिनों में सामायिक और प्रतिक्रमण का अभ्यास कर लिया। अपना आवश्यक कार्य करने के बाद बच हुए दिवस में महासती जी म० के पास जैनधर्म के नौ तत्त्व, पच्चीस बोल, लघुदण्डक आदि थोकड़े सीखने शुरू कर दिये। आपके हृदय में धर्म का रंग पक्का हो गया था, जो किसी तरह छूटने वाला नहीं था। आप अब प्रतिदिन सामायिक करना, महासतीजी का व्याख्यान सुनना या और कोई भी धार्मिक-कार्य हो उसमें रसपूर्वक उचित भाग लेना कभी न भूलतीं। महासतीजी म० की सत्संगति आपके जीवन की कायापलट करने में कितनी कामयाब होती है! सत्संगति से आप मत्य के दरवाजे तक तो पहुँच चुकी हैं, अब कितनी आगे बढ़ती हैं, यह पाठक देखेंगे।

वैराग्य के बादल

महासतीजी आनन्दकुमारीजी म० के व्याख्यान सुनने तो और भी कई बहनें आती थीं, पर हमारी चरितनायिका का सुनना सुनने तक ही सीमित नहीं था। वह श्रवण किये हुए पदार्थ को मनन द्वारा चबा कर रस बनाना चाहती थीं। वह अपने जीवन में उस अमूल्य वाणी को उतारना चाहती थीं। और महासतीजी ने जब उन बड़ी-बड़ी राजरानियों का वर्णन सुनाया, जो अपनी तरुण अवस्था में संसार के कामभोगों को असार समझ उन्हें ठुकरा कर निकली थीं, तो हमारी चरितनायिका के हृदयाकाश में वैराग्य के बादल उमड़ने लगे। उनके मानस में वैराग्य का सागर हिलोरें लेने लगा। संसार के भोग-विलास बन्धकारक, तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगे। हमारी चरित नायिका में अब तक विरक्ति तो मौजूद थी ही, पर वह गृहस्था श्रम की कामनाओं के बादलों से आच्छादित थी। वह एक तरह से सोई हुई थी। महासतीजी के मर्मस्पर्शी, जोशीले उपदेश ने मानो उसे झंझोड़ कर जगा दिया।

प्रबुद्ध आत्माओं के लिए साधारण-सा संकेत ही दिशा सूचन कर देता है। आत्मज्ञान होने वाला होता है तो मामूली-सी घटना से ही हो जाता है और यदि नहीं होने वाला होता है तो अनन्तानन्त काल गुजर जाता है पापड़ बेलते; कुछ नहीं होता।

मिथिला के महाराजा नमिराज दाहज्वर की दारुण वेदना से पीड़ित हो रहे थे। उस समय महारानियाँ तथा दासियाँ खूब चन्दन घिस रही थीं। हाथ में पहनी हुई चूड़ियों की परस्पर रगड़ से जो आवाज होती थी, वह महाराजा के कानों में टकरा कर वेदना में वृद्धि कर रही थी। महाराज ने उसी समय प्रधान मंत्री को बुलाया और कहा—मन्त्रिवर ! यह गड़बड़ मुझ से नहीं सही जाती, इसे बन्द कराओ। चन्दन घिसने वाली रानियों और दासियों ने अपने हाथ में सौभाग्यचिह्नस्वरूप केवल एक-एक चूड़ी रखकर बाकी सब उतार डालीं। चूड़ियों के उतरते ही शोर बन्द हुआ। थोड़ी देर बाद ही नमिराज ने पूछा—"क्या कार्य पूरा हो गया ?"

मन्त्री—नहीं महाराज !

नमिराज—तो शोर कैसे बन्द हुआ ?

मन्त्री ने सारी घटना कह सुनाई। उसी समय नमिराज के मन में आकस्मिक भाव उठा। उन्होंने सोचा कि—हाँ, अब मेरी समझ में आया ! जहाँ एक से अधिक होते हैं, वहीं शोर होता है। जहाँ सिर्फ एक होता है वहाँ शान्ति रहती है। इस गूढ़ चिन्तन के परिणामस्वरूप उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण हुआ और उन्हें शान्ति की प्राप्ति के लिए समस्त बन्धनों को छोड़ कर अकेले विचरने की इच्छा जागृत हुई और व्याधि शान्त होते ही वे महलों से ऐसे निकले मानो काले बादलों के कारागृह से निर्मल चन्द्रमा निकल आया हो। एकत्व-भावना के प्रबल पवन के झोंके से भोगवासना के काले बादल, इधर-उधर बिखर गए। त्याग व तपश्चर्या की अपूर्व ज्योति जगमगाने लगी। इन्द्र भी उनके त्याग और तपश्चर्या की कसौटी करने आया। पर वह भी उनका प्रगाढ़ वैराग्य देखकर चकित-सा, विस्मित-सा, भ्रमित-सा रह गया।

आत्मा में योग्यता हो तो किसी भी निमित्तकारण को पाकर वह कर्त्तव्य पथ पर कटिबद्ध हो जाती है।

महासतीजी का उपदेश सुनने वाली सैकड़ों ही बहनें थीं, परन्तु हमारी चरित्रनायिका ही ऐसी थीं जिन्हें वैराग्य का स्पर्श हो गया। पूर्वजन्म के संस्कारों के बिना किसी भी मनुष्य का असाधारण विकास नहीं हो सकता। पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण भूमिका तैयार थी, ज्यों ही बीज पड़ा वह अंकुरित हो उठा। अब तो दिन रात महासतीजी की सुनाई हुई वह राजरानियों की जीवनी आँखों के सामने नाचने लगी। कितनी त्याग की मूर्तियाँ थीं वे। यौवन की उन्मत्तदशा में भी इतनी विलक्षण वैराग्य साधना। भोगविलास की अपूर्वसामग्री उनके पास थी, फिर भी ठोकर मार दी। वह महासती राजमती मेरे जैसी ही तरुणी थी। उस सिंहनी को माया के पिंजरे में डालने का कितना प्रयास किया गया था, किन्तु वह सच्ची सिंहनी थी, बिलकुल नहीं फँसी। क्या मैं व्यर्थ ही संसार के मोह जाल में फँसी रहूँगी? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मेरी आदर्श वह ब्रह्मचारिणी महासती राजिमती है। मैं उसी के पदचिह्नों पर चलने का प्रयत्न करूँगी। अब तक मेरी नौका लक्ष्यशून्य थी, इस अन्धकाराच्छन्न संसारसमुद्र में गोते खा रही थी। परन्तु अब तो मुझे महासतीजी म० से त्यागजीवन का प्रकाशस्तम्भ मिल गया है। अब अपनी जीवन-नौका को मैं इधर-उधर नहीं भटका सकती। यदि प्रकाश पाने पर भी कोई भटकता रहे तो उसका उद्धार होना कठिन है, सर्वथा असम्भव है।

मेरे सामने ही मेरे पतिदेव—मेरे साथी की अकालमृत्यु हो गई, फिर भी मैं जागृत न होऊँ। वह मृत्यु मुझे जागृत करने आई थी वह मुझे अमर बनने का संदेश देने आई थी। मेरे सांसारिक-एक बन्धन को तो वह तोड़ कर चली गई है। यह

संसार कितना दुःख से भरा हुआ है ! जन्म, जरा, और मृत्यु के दुःख से संसार छटपटा रहा है। थोड़ा-सा सुख मिल जाता है तो मानव फूल उठता है। पर वह सुख नहीं, विषमिश्रित लड्डू के समान वह प्राणान्तक है। इस जीवन का क्या भरोसा है ! आज हैं, कल क्या होगा कौन, जानता है ? फिर भी मनुष्य न जाने आशाओं के कितने हवाई महल बनाता है ? भवन, स्वजन, तन और धन सब यहीं रह जाते हैं और यह अमर देवता आत्मा और कहीं उड़कर चला जाता है, कहीं दूसरी जगह ही अपना बसेरा करता है। इन वस्तुओं के मोह में पड़ा रहना ही क्या जीवन की सार्थकता है ? और यह शरीर भी मिट्टी का पुतला है। इससे धर्म की कमाई करली जाय तो सार्थक है, नहीं तो ऐसे-ऐसे अनन्त शरीर मिलने पर भी कुछ नहीं होता ! मैं क्यों मूर्खता कर रही हूँ। मुझे जल्दी से जल्दी सावधान हो जाना चाहिए। मुझे अब अपने जीवन की मोड़ बदलनी चाहिये।" हमारी चरित्रनायिका इन दिनों वैराग्यभावना की इसी प्रबल वेगवती धारा में बहने लगी थीं। जब कभी अकेली होतीं तो चिन्तन में उतर जातीं। बैठे हुए घण्टों बीत जाते, पर उन्हें पता ही न लगता कि समय कहाँ-से-कहाँ छलांग लगा गया है।

आपकी वैराग्य भावना प्रबल हो उठी थीं। आपने सोचा-मुझे वैराग्य की गंगा में अब स्नान करना है। मेरे सामने मोहों के उच्चतम पहाड़ खड़े थे। वे मेरे मार्ग में विघ्न डालने वाले थे, पर अब मैंने उन पहाड़ों पर चढ़ाई कर ली है। सामने ही वैराग्य की गंगानदी प्रबलवेग से बहती हुई मुझे दिखाई दे रही है। अब जरा तेज कदमों से चलूँगी तो उस नदी को पा सकूँगी। आपने अपनी अन्तरात्मा से मार्ग की ओर अपने मन में दृढ़निश्चय कर लिया कि "मैं अवश्य ही इन महासतीजी के श्रीचरणों का आश्रय लूँगी।"

यह है हमारी चरित्रनायिका की वैराग्य के प्रति दृढ़ता का ज्वलन्त प्रमाण। यह है भावीजीवन को उच्च बनाने का शुभ संकल्प। शुभ संकल्प क्या नहीं कर सकता? शुभ संकल्प एक ही क्षण में केवलज्ञान तक छलांग लगा सकता है और दुःसंकल्प एक ही क्षण में सातवें नरक की यात्रा करा सकता है। शुभसंकल्प करके हमारी चरित्रनायिका साधना के दुर्गम पथ पर चलने के लिए उत्सुक हो रही हैं। वह इस कठोरमार्ग पर किस प्रकार प्रखरगति से अग्रसर हुई, यह आगे के पृष्ठों में देख सकते हैं।

संसार कितना दुःख से भरा हुआ है ! जन्म, जरा और मृत्यु के दुःख से संसार छटपटा रहा है। थोड़ा-सा सुख मिल जाता है तो मानव फूल उठता है। पर वह सुख नहीं, विषमिश्रित वस्तु के समान वह प्राणान्तक है। इस जीवन का क्या भरोसा है ! आज हैं, कल क्या-होगा कौन, जानता है ! फिर भी मनुष्य न जाने आशाओं के कितने हवाई महल-बनाता है ? भवन, स्वजन, धन और धन सब यहीं रह जाते हैं और वह अमर देवता आत्मा और कहीं उड़कर चला जाता है, कहीं दूसरी जगह ही अपना बसेरा करता है। इन वस्तुओं के मोह में पड़ा रहना ही क्या जीवन की सार्थकता है ? और यह शरीर भी मिट्टी का पुतला है। इससे धर्म की कमाई करली जाय तो सार्थक है, नहीं तो ऐसे-ऐसे अनन्त शरीर मिलने पर भी कुछ नहीं होता ! मैं क्यों मूर्खता कर रही हूँ। मुझे जल्दी से जल्दी सावधान हो जाना चाहिए। मुझे अब अपने जीवन की मोड़ बदलनी चाहिए।"

हमारी चरितनायिका उन दिनों वैराग्यभावना की इसी प्रबल वेगवती धारा में बहने लगी थीं। जब कभी अकेली होतीं तो चिन्तन में उतर जातीं। बैठे हुए घण्टों बीत जाते, पर उन्हें पता ही न लगता कि समय कहाँ से-कहाँ छलांग लगा गया है।

आपकी वैराग्य भावना प्रबल हो उठी थी। आपने सोचा-मुझे वैराग्य की गंगा में अब स्नान करना है। मेरे सामने भोगों के उत्तुंग पहाड़ खड़े थे। वे मेरे मार्ग में विघ्न डालने वाले थे, पर अब मैंने उन पहाड़ों पर चढ़ाई कर ली है। सामने ही वैराग्य की गंगानदी प्रबलवेग से बहती हुई मुझे दिखाई दे रही है। अब ज़रा तेज कदमों से चलूँगी तो उस नदी को पा सकूँगी। आपने अपनी अन्तरात्मा से बातें कीं और अपने मन में दृढ़निश्चय कर लिया कि "मैं अवश्य ही इन महासतीजी के श्रीचरणों का आश्रय लूँगी।"

यह है हमारी चरितनायिका की वैराग्य के प्रति दृढ़ता का ज्वलन्त प्रमाण ! यह है भावीजीवन को उच्च बनाने का शुभ संकल्प ! शुभ संकल्प क्या नहीं कर सकता ? शुभ संकल्प एक ही क्षण में केवलज्ञान तक छलांग लगा सकता है और दुःसंकल्प एक ही क्षण में सातवें नरक की यात्रा करा सकता है। शुभसंकल्प करके हमारी चरितनायिका साधना के दुर्गम पथ पर चलने के लिए उत्सुक हो रही हैं। वह इस कठोरमार्ग पर किस प्रकार प्रखरगति से अग्रसर हुई, यह आगे के पृष्ठों में देख सकते हैं।

१३

दृढ-निश्चय

दृढ-निश्चय सफलता का प्रधान कारण है। महापुरुष हित अहित का और सम्भावनाओं का विचार करके एक बार जो दृढ़ शुभ निश्चय कर लेते हैं उससे फिर विचलित नहीं होते। विघ्नबाधाएँ उन्हें अपने पथ से डिगा नहीं सकती। आपत्तियाँ और रोड़े उनका मार्ग रोक नहीं सकते। वे अपने सारे साहस को बटोर कर उन आपत्तियों से संघर्ष करते हैं और उनका मूल मंत्र होता है—

'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम् ।"

'या तो कार्य सिद्ध करके छोड़ूँगा, या शरीर को विदाई दे दूंगा।'

वीर आत्माओं का संकल्प इतना प्रबल होता है। विफलता उनके दृढ़-संकल्प के आगे खड़ी नहीं रह सकती।

हमारी चरितनायिका ने भी अपने जीवन को संयम-मार्ग पर आरूढ़ करने का प्रबल संकल्प कर लिया। आपने अपने विचारों को कितने ही दिन तक तो रोक कर रक्खा। एक दिन आपने अपनी बड़ी बहन फूलकुँवरबाई के सामने अपने विचार प्रगट किये। आपकी दिनों दिन बढ़ती हुई वैराग्यवेल को देख कर फूलकुँवरबाई ने पहले से ही अनुमान लगा लिया था। फिर भी आपकी कसौटी करने के लिये फूलकुँवरबाई ने कहा—'रहने दे इन बातों को, तू अभी नादान बच्ची है। वैराग्य किस चिड़िया

का नाम है, यह तो पता ही नहीं है और कहती है मेरा विचार दीक्षा लेने का है। साधुता का मार्ग बड़ा कठिन है। मालूम होता है तू इसे फूलों का मार्ग समझ रही है। यह फूलों पर चलने का मार्ग नहीं है, यह है नंगे पैरों नुकीले कांटों पर चलने का मार्ग। विरले ही इस मार्ग को अपनाते हैं। कितने तो दूर से देख कर ही घबरा जाते हैं। तू मेरी बहन है, मेरे पास धर्म की बातें सीखने आई है। किसी को चढ़ाने के लिए नहीं। अगर तू ऐसी बातें करेगी तो तेरे ससुराल वाले मुझे क्या कहेंगे, पीहर भेजी थी और बहन ने बहकाकर साध्वियों के यहाँ चढ़ा दी! मैं तुम्हारी ससुराल की धरोहर को यों नहीं जाने दूंगी। तू बड़ी भाग्यशालिनी है, जो तुझे धर्म पर अतुल श्रद्धा हुई है। मेरा निमित्त पाकर तेरे पूर्वजन्म के संस्कार जागृत हो उठे हैं, इसके लिए मुझे बड़ी प्रसन्नता है। पर अभी साध्वी नहीं होने दूंगी। गृहस्थ में रहो। जितना धर्माचरण हो सके, करो। इसके लिए मैं तुम्हारे मार्ग में कोई रुकावट नहीं डालना चाहती। किन्तु साधु-जीवन तो बड़ा ही कठिन है। लोहे के चने चबाने हैं। सिंहवृत्ति है। तू अभी यौवन के सिंहद्वार पर है। इस अवस्था में विकारों की आंधियों से लड़ना कोई हँसी-खेल नहीं है। जरा सोच विचार कर काम किया कर।"

अपनी बड़ी बहन को आप माता की दृष्टि से देखती थीं। उनका सरल स्नेह माता से किसी प्रकार भी कम न था। जैसे कुम्भकार कच्चे घड़े के ऊपर से चोट लगाता है, पर अन्दर से अपना हाथ दिये रहता है ताकि घड़ा कहीं फूट न जाय, इसी तरह फूलकुँवरबाई ऊपर से कृत्रिमकोप और भय दिखा रही थीं, पर उनके हृदय में आपके प्रति अपार स्नेह था। अतएव आपने, अपनी बहन से अधिक संघर्ष करना उचित न समझा और गंभीरता धारण करली। आप अपने संकल्पों पर दृढ़ रहीं

और समय की प्रतीक्षा करने लगीं ।

इस तरह जब तक आप पीहर में रहीं तब तक फूलकुँवर बाई से काफी सहायता मिलती रही। वह आपको महासतीजी के पास आने-जाने के लिये कोई रुकावट नहीं डालने देतीं। कभी माताजी कुछ बोल उठतीं या कहने लगतीं—'घर का काम तो सूझता नहीं है दिनभर महासतीजी म० के यहाँ दौड़ती रहती है। आजकल तुझे क्या हो गया है ? रात को भी अधिकतर समय वहीं बिताती है।' उस समय आप तो चुप्पी साध लेतीं और अपना काम किया करतीं, पर फूलकुँवरबाई बीच में पड़कर माता को ठंडा करतीं, उन्हें समझातीं—माँ, क्यों बिचारी बच्ची पर गुस्सा कर रही हो ? महासती म० के पास आने में हानि ही क्या है ? इसने जन्म से ही दुःख के दिन देखे हैं। कहीं रह कर अपना मन बहलाती है और सुख से दिन काटती है तो तुम क्यों बाधक बनती हो ?" इस तरह माताजी की ओर से भी आपको छुट्टी मिल जाती। आपके ऊपर कोई विशेष कार्य का बन्धन नहीं था। इसलिए जब चाहतीं तब महासतीजी म० के पास पहुँच आतीं और सामायिक लेकर अपना ज्ञान ध्यान करने लग जातीं। महासतीजी म० उन दिनों करीब १२। वर्ष तक शारीरिक बीमारी के कारण से लोअर ही बिराजी हुई थीं। महासतीजी की स्नेहशील प्रकृति ने आपको मोह-सा लिया। अब तो दिन में दस-दस और कभी बीस-बीस चक्कर लगते थे। जब देखो तब महासतीजी के उपाश्रय में।

एक दिन मौका देखकर आनन्दकुमारीजी ने महासतीजी म० के समक्ष विनम्र शब्दों में निवेदन किया—"महासतीजी म० ! मैंने अब आपके पास रह कर साधु-जीवन की चर्या जान ली है। प्रतिक्रमण भी याद कर लिया है। अब आप उचित समझतीं हों तो मुझे चरण-शरण में लेकर कृतार्थ करें।"

महासतीजी—दृढ़ निश्चय कर लो तुम्हें क्या करना है ? जैन साध्वियों की जीवनचर्या तुम देख रही हो । यहाँ तो जीवित ही अपने को मरा हुआ समझना होता है । सांसारिक सुख-सुविधाओं को यहाँ अवकाश नहीं है । यहाँ तो दिन-रात अपने को साधना की अग्नि में तपाना और आत्मा का वास्तविक रूप निखारना होगा । सिर के बालों को उखाड़ना, नंगे पैरों चलना, सर्दी और गर्मी के भयानक कष्टों का सामना करना इत्यादि कष्टों को तुम जानती ही हो ? क्या तुम इन सब कष्टों को सहन कर सकोगी ?

हमारी चरितनायिका ने प्रसन्नमुद्रा के साथ कहा—हाँ, मैं इन कष्टों को तो क्या इनसे भयानक कष्टों को भी सहने के लिए तैयार हूँ । नरक में तो मैंने इनसे भी असंख्यगुणे कष्ट सहे होंगे । मैं इन कष्टों से डरने वाली नहीं हूँ । मैंने खूब सोच-समझकर यह मार्ग अपनाने का निश्चय किया है । कृपया, अब ज्यादा काल क्षेप न करें और मुझे अपनी शरण दें ।"

'क्या तुम्हारे ससुराल वालों से आज्ञा मिल चुकी है ?'

'महाराज अभी तक आज्ञा तो नहीं मिली है ।'

'बिना अभिभावकों की आज्ञा प्राप्त हुए जैन दीक्षा कभी नहीं हो सकती । अतः पहले उनसे आज्ञा प्राप्त करो ।'

'बिना आज्ञा शिष्या बनाने में क्या आपत्ति है ?'

'आपत्ति क्या यह तो एक तरह की चोरी है और साधु जीवन में किसी भी प्रकार की चोरी का यावज्जीवन त्याग होता है ।'

'यदि आज्ञा न मिले तो ?'

'यो का क्या प्रश्न है ! तुम्हारे अन्दर दृढ़ लगन होगी तो सब कुछ मिल सकता है । अन्दर की ज्वाला न बुझने दो । पक्की लगन रखो ।'

महासती आनन्दकुमारीजी के साथ ही एक दूसरी महा-

सती थीं। उन्होंने देखा—यह दीक्षा लेने को तैयार हो गई है पर इसमें शिष्या के गुण हैं या नहीं, विनय का गुण, जो सर्वप्रथम गुण होता है, वह कितनी मात्रा में है, इसकी जाँच करनी चाहिए। उन्होंने हँसते हुए कहा—तुम मेरे पास दीक्षा ले लो, मैं तुम्हारे पास से कोई भी काम नहीं कराऊँगी। भिक्षाचरी लाना आदि कोई भी सेवा का कार्य तुम से नहीं लिया जायगा। तुम्हें मेरी शिष्या बनना पसन्द है?

आनन्दकुमारीजी ने उनके मनोभाव जानकर उत्तर दिया—'तब-तो आप मुझे बिल्कुल आलसी बनाकर बिठाना चाहती हैं। आलसी को कहीं ज्ञान प्राप्त हो सकता है? बिना गुरु की विनय व सेवाशुश्रूषा के कभी ज्ञान को फलना यह सकता है? आप इस प्रकार से क्या कह रही हैं?

आखिरकार उन महासतीजी ने कहा—मैंने तो तुम्हारी परीक्षा के लिए ऐसा कहा था। वास्तव में तुम दीक्षा के योग्य हो। आज्ञा के लिये प्रयत्न करो।

अब आपको आज्ञा प्राप्त करने की धुन लगी। आप अपने पीहर से ससुराल चली गई। यह पहले कहा जा चुका है, कि ससुराल वाले रामसनेही थे, जैनधर्म की बातों से अन भिज्ञ थे। अतः उनसे दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करना बड़ी टेढ़ी खीर थी। फिर भी आपने साहस नहीं छोड़ा, हिम्मत नहीं हारी। कहावत है—'हिम्मते मर्दां मददे खुदा।' जो हिम्मत रखता है उसे ईश्वरीय सहायता भी मिल जाती है। आप अपनी ससुराल में रहतीं, तब भी जो नियम आपने महासतीजी से ले रक्खे थे उनका पालन करतीं। आपको घर के काम से अवकाश मिलता तो आप सामायिक में बैठ जातीं। ये लोग आपकी दिनचर्या देखकर कुछ भी समझ न पाए कि क्या माजरा है? सारे दिन ज्ञान ध्यान की ही बातें करना, फिजूल गप्पों या हँसी-ठट्ठा से

बिल्कुल दूर । पर वाले देखकर दंग रह गये और कहने लगे—'यह तो अब योगिन-सी बन गई हैं। एक दिन भोजन करने का समय था, उस समय आप सामायिक करने बैठ गई और अपनी माला फिराने लगीं। आपकी सासूजी व जेठानीजी आपके पास आई और कहने लगीं—'आज क्या बात है? भोजन का समय हो गया है, फिर भी तुम अपने आप में ही लगी हो? उठो जल्दी, भोजन ठंडा हो रहा है।' आनन्दकुमारीजी—यह तो मुझे मालूम है। पर अब मुझे आप कब तक भोजन करा-ओगी? मैंने अपने धर्म का स्वरूप समझा है। महासतीजी के दर्शन किये हैं, मेरी इच्छा अब शीघ्र उनके पास दीक्षित होने की हो रही है। मैंने संसार के सभी नाटक प्राय: देख लिये हैं। संसार का मार्ग अब मुझे भयानक प्रतीत होता है। इस मार्ग पर चलने से कभी अन्त आने का नहीं, इसलिए मैंने मुक्ति के मार्ग पर चलने की ठानी है, यही मार्ग भव भ्रमण का अन्त ला सकता है। यही मार्ग स्वाधीनता का मार्ग है। जैनधर्म संसार के सभी धर्मों से ऊँचा उठकर मुक्ति का मार्ग—मोक्ष का पथ बतलाता है। वह पूर्ण त्यागियों के लिए कञ्चन और कामिनी (पुरुष के लिए स्त्री, स्त्री के लिए पुरुष) का आत्यन्तिक त्याग बतलाने वाला अलौकिक धर्म है। उसी धर्म में मैं दीक्षा लेकर अपना आत्मकल्याण करना चाहती हूँ। आप जानती हैं कि जैन साध्वी बिना अपने संरक्षक की आज्ञा के किसी को दीक्षा नहीं दे सकतीं। अतः आप लोग मेरा हित देख कर मुझे हर्षपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कीजिये। आप समझती होंगी कि यह हमें छोड़ देगी, ऐसी बात नहीं है, मैं तो एक कुटुम्ब की सेवा छोड़कर—संकुचित सेवा को त्याग कर, संसार के समस्त प्राणियों की सेवा का मार्ग अपनाऊँगी। मेरा प्रेम अब एक कुटुम्ब तक ही सीमित नहीं रहेगा। अब तो सारा विश्व ही मेरा

कुटुम्ब बनेगा। जहाँ जाऊँगी मुझे लोग भिक्षा देने को तैयार रहेंगे। मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। इसलिए यदि आप सचमुच भोजन कराना चाहते हैं तो मुझे उस भगवती-दीक्षा के लिए अपनी अनुमति दे दें।"

आपके मुँह से सहसा ऐसी बातें सुनकर घर के सब लोग हक्के-बक्के रह गये। आपकी सासुजी वगैरह ने कहा—"बेटी! पहले भोजन तो कर लो, बाद में तुम्हारी बात सुन लेंगे। तुम्हें आज हो क्या गया है? इतने दिन तक तो कभी तुम्हें जिद करते नहीं देखा। आज तुम्हारे ऊपर क्या किसी ने जादू फिरा दिया है? और हम तो तुम्हारे हितैषी हैं। तुम्हारे जीवन को सुखी देखना चाहते हैं। तुम्हें दीक्षा जैसी कोई चीज लेना हो तो ले लेना, पर अभी इतनी जल्दी क्या है? अभी थोड़े दिन गृहस्थ में रहकर साधना करो, फिर देखा जायगा। समय आएगा तो तुम्हारी दीक्षा को कौन टाल सकता है?"

आप तो दीक्षा के लिए आज्ञा प्राप्त करने की धुन में थीं। आपको अपनी धुन के सिवाय और कुछ नहीं सूझ रहा था। आप किसी तरह भी भोजन करने को तैयार न हुईं। सन्ध्या हो गई, पर अभी तक आपने भोजन नहीं किया। ससुराल वालों का आप पर परमस्नेह था अतः उस दिन सभी लोग भूखे ही रहे। आपके मुख से बराबर आज्ञा की बातें सुनकर और आपकी लघुवय व कोमलप्रकृति का विचार कर आपकी सासुजी की आँखें डबडबा आई। वे एकदम अवसन्न और निश्चेष्ट हो गईं। वे कल्पना भी नहीं कर सकीं कि उनकी प्यारी पुत्रवधू जैन साध्वी बन सकती है!

अन्ततोगत्वा आपके ज्येष्ठ श्री फतहचन्दजी को जो उस दिन कहीं बाहर गये हुए थे, बुलाया गया। उन्होंने आपका यह हाल और कठोर साधना देखी तो वे भी हैरान हो गये। उन्होंने

बहुत कुछ समझाया। प्रलोभन भी दिये और कहा—'बेटी! हम तुम्हारे लिए घर में सब कुछ प्रबन्ध करा देंगे। तुम यहीं रहकर अपने धर्म की साधना करना और ज्ञान सीखना और दूसरों को सिखाना।" पर यहाँ तो पक्का रंग लग चुका था। जिसने आदर्श ब्रह्मचारिणी राजीमती सरीखी महासतियों की जीवनी सुन ली है, वह अपने ध्येय से कैसे विचलित हो सकती थी? उस महान् नारी के सामने क्या प्रलोभन कम थे? उसके सामने क्या विलासों के साधन कम थे? पर उसने उन सब को अपनी एक हुँकार से—एक सिंहगर्जना से खदेड़ दिया। वे सब विलासों के गीदड़ दुम दबा कर भाग गये। तो हमारी चरितनायिका भला ऐसे प्रलोभनों की बहकावट में कब आ सकती थीं? आप अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहीं, टस से मस न हुई। ज्येष्ठजी के सारे प्रलोभन-बाण व्यर्थ गए।

अब आपके ज्येष्ठजी को एक ही उपाय सूझ रहा था और वह यह कि आपके पिताजी को बुलाकर उनसे समझाया जाय। फतहचन्दजी झटपट आपके पीहर गये और आपके पिताजी को बुला ले आये। आते ही पिताजी को सारी घटना समझते देर न लगी। वे अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। उन्हें आपके विचार सुनकर बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। वे पहले जहाँ अपनी पुत्री के धर्मध्यान और जीवन विकास की प्रगति देखकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे, वहाँ अब खिन्नता का अनुभव करने लगे। उन्होंने पुत्री के विचारों की गहराई को नहीं पहचाना। सोचा—"नादान लड़की है। अभी जानती ही क्या है? किसी साध्वी के बहकाने में आ गई है। संयम के कष्टों को यह क्या जाने? अभी इसे संयम के कष्टों की कहानियाँ सुनाऊँगा तो सही रास्ते पर आ जायगी।" आपके पिताजी ने कहना शुरू किया—"देख बेटी, यह साधुवृत्ति कोई बच्चों का सा खेल नहीं है। यहाँ कायरों का

काम नहीं है। यह जम्बूकुमार जैसे सिंह से ही पल सकता है। तू समझती होगी यहाँ खूब खान-पीने को मिलेगा, लाड़-प्यार से रहेगी, पर तू इस भुलावे में मत रहना। रथनेमि जैसे महान साधक भी इस मार्ग से भटक गये, तो तू किस बाग की मूली है। पाँच महाव्रतों का पहाड़ सा बोझ उठाकर यात्रा करना हर एक व्यक्ति का काम नहीं है। तूने सुना होगा गजसुकुमाल मुनि को कितना कष्ट पड़ा था ? उनके मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने अंगारे रख दिये तो भी उफ तक न किया। यह है सच्ची साधुता। क्या तू ऐसे मार्ग पर चल सकेगी ? तू उन साध्वियों की बहकावट में आकर दीक्षा मत ले लेना। हर एक कार्य सोच-समझकर करना चाहिए।"

पर हमारी चरितनायिका तो संसार की वास्तविकता को समझ गई थीं। सच्चा साधक जो संयम-पथ पर अग्रसर होना चाहता हो, संसार की कौन सी शक्ति है जो उसे पथ भ्रष्ट कर सके ? सच्चा यात्री इधर उधर के सुख-स्वप्नों में उलझ कर अपने स्वीकृत-पथ से विचलित नहीं होता। दृढ़ निश्चयी यात्री को न मार्ग के नुकीले काँटे रोक सकते हैं और न आसपास के सुन्दर सुगन्धित पुष्प ही। हमारी चरितनायिका—वैराग्य-पथ की पथिक किसी भी तरह मार्ग से डिगी नहीं।

आपके पिताजी ने देखा कि इस तरह तो यह मानेगी नहीं। इस पर वैराग्य का भूत सवार है। अब डाँटफटकार बतानी चाहिए। उन्होंने कोपमयी आकृति बनाकर कहा—"देख, तू सीधी तरह से मेरी बात मान जा, नहीं तो पछताएगी। क्या रक्खा है साध्वियों के पास ? तुम्हें बिना आज्ञा तो वे दीक्षा दे नहीं सकतीं। आज्ञा देना हमारे हाथ है। तू अपना निश्चय बदल दे, ऐसे झूठे हठ से मैं मानूँगा नहीं। मुझे तो इतने दिनों मालूम ही नहीं था कि उन सतियों के पास कब जाती है, अब

सही ? -यह सारी करतूत उस फूलकुँवरबाई की है। वही तुझे प्रतिदिन सतीजी के पास ले जाया करती थी। तू समझती होगी भोजन नहीं करूँगी तो ये आज्ञा लिखकर दे देंगे। पर इस तरह आज्ञा कहीं मिल सकती है ?

पर यहाँ तो कवि की इस उक्ति पर आप चल रही थीं—

सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम् ।
असद्भिः शपथेनोक्तं जले लिखितमक्षरम् ॥

अर्थात्—'सज्जन पुरुषों का अनायास बोलना भी पत्थर की लकीर के समान होता है, परन्तु दुर्जनों का शपथ खाकर बोलना भी पानी की लकीर जैसा होता है।' आप तो अपने वचनों को पाषाण रेखा समझकर चल रही थीं। शक्ति-प्राप्त महान् आत्माएँ जिस ओर चल पड़ती हैं, भला इन्हें रोकने की किसमें शक्ति है ?

क ईप्सितार्थ स्थिरनिश्चय मनः ।
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥

जिसका मन दृढ़ निश्चयी है और जो अपनी इष्ट वस्तु को पाने में लगा हुआ है, उसे कौन रोक सकता है ? क्या नीचे की ओर बहती हुई पानी की धारा का मुख ऊपर की ओर किया जा सकता है ?

आनन्दकुमारीजी जब पिताजी के समझाने पर भी अपने ध्येय पर दृढ़ रही तो उन्होंने फूलकुँवरबाई को बुलाना उचित समझा। शायद उसका कहना मान कर भोजन करले ? फूलकुँवरबाई जब आई तो पिताजी ने उपालम्भ देना शुरू किया—'तुझे क्या पड़ी थी, जो इस छोकरी को सतियों के पास ले गई ? यह तो अब सारे घर वालों के नाक में दम किये हुई है। इतना मनाया तो भी भोजन नहीं करती है और दीक्षा के लिए आज्ञा लेने पर उतारू हो रही है। इसे अब तू ही समझा।

फूलकुँवरबाई आपके पास आई और कहने लगी-'अरी! आज तुझे क्या सनक। सवार हुई है? किसी का कहा नहीं मानती! आज्ञा लेनी है तो क्या इस तरह आज्ञा मिलेगी? थोड़े दिन धैर्य रख। अभी शीघ्रता न कर। यह तो तेरी कसौटी का समय है। अभी तो तू अपनी दुर्बलता और सबलता को सूक्ष्मदृष्टि से जाँच कर। यह आत्मनिरीक्षण का समय है। अभी दीक्षा का समय नहीं आया है। जब आएगा विचार करेंगे। पहिले उठकर भोजन कर ले और फिर इस पर विचार करना। जल्दी में किया हुआ कोई काम अच्छा नहीं होता। तू अभी इनके सामने धरना देकर आज्ञा के लिए बैठ जायगी तो लोग तुम्हें और महासतीजी म० दोनों को भला-बुरा करेंगे। तू देखती नहीं है, मैं तेरे इस काम म सहायिका हूँ। तेरी दृढ़भावना के अनुसार तेरा काम पूर्ण होगा ऐसी मुझे आशा है। चल, उठ भोजन कर ले।

अपनी ज्येष्ठभगिनी के समझाने और आश्वासन देने पर आप उसी समय उठीं और भोजन कर लिया। सब लोगों को तसल्ली हो गई। आपके मन में भी दृढ़-विश्वास पैदा हो गया कि मुझे आज्ञा अवश्य मिल जायगी। पर आप अपने संकल्प से, अपने निश्चय से हटी नहीं। आप महासतीजी से ग्रहण किए हुए नियमों पर दृढ़ रहीं।

हमारी चरितनायिका पूर्ण त्याग के मार्ग पर चलना चाहती थीं, अतएव उन्होंने पहले से ही अपनी तैयारी आरम्भ कर दी। आपने खाने की वस्तुओं में भी कमी कर दी। ससुराल वाले रामभक्त थे अतः वे जैनधर्म के रसनेन्द्रिय का निग्रहस्वरूप नहीं मानते थे। जैनधर्म में त्याग के उच्चमार्ग पर चलने वालों को सचित्त जल का आजीवन त्याग करना पड़ता है। वे या तो गर्म किया हुआ जल पीते हैं या धोवन (आटा, छाछ, साग वगैरह

का धोया हुआ पानी) पीते हैं। आपके ससुराल वाले इस बात को जानते नहीं थे। पर आप तो सचित्तजल पीने का त्याग कर चुकी थीं। ससुराल में इस नियम का पालन बड़ा ही कठिन था। वे लोग आपको अपने सामने ऐसा पीने नहीं देते थे। परन्तु आप विवेकशालिनी थीं। आपने एक राह खोज निकाली। रसोई करने के समय जो बथुआ वगैरह का उबाला हुआ पानी होता, उसे आप एक हंडिया में रख छोड़तीं। कभी छाछ की आछ होती उसे रख देतीं। यह सब उन लोगों के बिना देखे करना पड़ता था। उनके देख लेने पर वे ऐसा कड़वा और बेस्वाद पानी शायद ही पीने दें, स्नेहवश उनके चित्त में नाराजगी होगी, वे मन में मेरे लिये चिन्ता करेंगे, इस विचार से आप उनके परोक्ष में ही इस त्याग का पालन कर रही थीं। इस तरह आपने सचित्त वनस्पति खाने और रात्रिभोजन का भी त्याग कर दिया।

आत्मिक-उन्नति के लिए त्यागशील बनना, आवश्यक है। सभी मत और पंथ त्याग का समर्थन करते हैं। जैनधर्म तो त्याग की नींव पर ही खड़ा हुआ है। त्याग आत्मा में दृढ़ता पैदा करता है और कष्ट-सहिष्णु बनाता है। खाने-पीने, सोने बैठने आदि के काम में आने वाली भोग्य वस्तुओं में से जिसका जितना त्याग किया जाय आत्मा उतना ही बलवान् बनता है। क्या धार्मिक और क्या सामाजिक, सभी दृष्टियों से इन्द्रियसंयम जीवन-विकास के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

आपके उस दिन भोजन न करने का प्रभाव सब घरवालों पर पड़ चुका था। उनके दिल में यह बैठ गया था कि यह जरूर ही दीक्षा लेने वाली हैं। आपके ज्येष्ठजी सदैव आपकी ओर से चिन्तित रहते थे। वे ऐसा उपाय ढूँढने लगे कि किसी तरह से यह रुक जाँय। एक दिन वे महासतीजी आनन्दकुमारीजी म० के

पास गये और कहा—'महाराज ! मैं आपसे एक विनती करना चाहता हूँ।'

महासतीजी—'कहिये, क्या कहना है?'

फतहचन्दजी—"मेरे छोटे भाई की बहू कई दिनों से आपके पास ज्ञान ध्यान सीख रही है। उन्हें अब संसार से विरक्ति हो चली है। इसलिए हमसे आज्ञा के लिए बहुत आग्रह कर रही थी। मेरा कहना है कि जब तक मेरी माताजी और इनकी माताजी जीवित हैं तब तक यह दीक्षा न लें तो अच्छा है। इसके लिये हमारे कहने से तो यह मानेंगी नहीं। आप कह देंगी तो, इतने दिन ठहर जायेंगी।"

महासतीजी—क्या आपने मृत्यु को वश में कर लिया है? क्या पता कि आपकी माताजी और इनकी माताजी से पहिले ही यह अपना डेरा उठा ले? कौन जानता था कि तुम्हारे भाई इतना जल्दी चला जायगा, पर काल का निमित्त पाकर वह भी कूच कर गया। अब आप इसको दीक्षा के लिये रोक रहे हैं, इससे फायदा क्या होगा? भगवान् ने तो 'समयं गोयम, मा पमायए' (समय मात्र भी प्रमाद न कर) ऐसा फरमाया है। ऐसी हालत में हम तो इसे मना नहीं कर सकते। चाहे हमें कोई तलवार से या किसी भी तरह से प्राण लेने का भय दिखाए तब भी हमारे मुख से शुभ कार्य के करने में रुकावट की कोई बात नहीं निकलेगी। हाँ, हमें दीक्षा लेने वाले की योग्यता जरूर देखनी है। यह हमने इतने दिन में देख ली है। यह दीक्षा के लिए सब तरह से योग्य है। कष्ट-सहिष्णु भी है। कई नियमों का पालन भी कर रही है और प्रारम्भिक ज्ञान भी हासिल कर लिया है इसलिए आपकी ओर से आज्ञा देने में विलम्ब करना मैं तो उचित नहीं समझती हूँ।

फतहचन्दजी महासतीजी के मुख से यह बात सुन कर

अवाक् हो गये। उनके ऊपर भी महासतीजी की कोमलवाणी का जादू-सा असर पड़ा। वे वहाँ से सीधे घर आए और माताजी वगैरह से आपके विषय में परामर्श करने लगे। और कोई उपाय न देखकर आपके ज्येष्ठजी व पिताश्री ने मिलकर यह निश्चय किया कि 'इन्हें महासतीजी म० के यहाँ आने जाने न दिया जाय। इस प्रकार का प्रतिबन्ध हो जाने पर इनका वैराग्य थोड़े ही दिनों में उड़ जायगा। 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'। अर्थात् वैराग्य ही न रहेगा तो आज्ञा वगैरह की झटपट भी छूट जायगी। वैराग्य बेल की जड़ महासतीजी ने सींची है। जब वह सिंचाई बन्द हो जायगी तो अपने आप वैराग्यबेल मुरझा कर सूख जायगी।' इस प्रकार आप पर महासतीजी म० के यहाँ आने-जाने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। ससुराल से पीहर जाते वक्त साथ में आपके देवर कुशलरामजी नियुक्त कर दिये तथा पीहर से ससुराल आते समय आपके भाई साथ में नियुक्त कर दिये गये और घर वाले सब लोगों को सख्त हिदायत कर दी कि कोई भी एक व्यक्ति हर समय इनके पास रहे और इन्हें साध्वीजी के पास न जाने दें। इस तरह आपकी कड़ी निगरानी रक्खी जाने लगी।

मनुष्य अपने विचारों का प्रतिबिम्ब है। वह अनन्तकाल से अपने विचारों के अनुसार दूसरों को चलाने का प्रयत्न करता आ रहा है, पर सफलता नहीं मिलती। वह नये-नये अस्त्रों का प्रयोग करता है, फिर भी दृढ़प्रतिज्ञ और साहसी आत्मा के विचारों को पलट नहीं सकता है। सब कुछ जान कर भी मानव अपने से प्रतिकूल बहते हुए घटना प्रवाह को अनुकूल बनाने की आकांक्षा में रहता है। यह है मानवजीवन की परिभाषा, आप इसे दुर्बलता कहें चाहें सबलता, पर है यह अवश्य।

हमारी चरितनायिका के हृदय में वैराग्य की उत्ताल तरंगें

हिलोरें ले रही थीं। उसका प्रवाह–क्षुद्र नालों का प्रवाह नहीं था, वह तो बाढ़ का उग्ररूप था। गङ्गा के विशाल प्रवाह को कोई रोके तो कैसे रोके? उनके मन में, वचन में, सर्वत्र प्रसन्नता थी। उनके आनन्दित मुखमण्डल पर वैराग्य-भावना की उज्ज्वल-प्रभा स्पष्ट झलक रही थी। यही कारण था कि सब की ओर से महासतीजी के पास आने जाने का प्रतिबन्ध लगा दिया फिर भी उनके वैराग्य में कोई न्यूनता नहीं आई। घर वाले समझते थे कि वातावरण के अनुसार इसकी प्रकृति बदल जायगी पर आप तो असाधारण संकल्पों की दुनिया में विचरण करने वाली अटल साधिका थीं। आप अपने ही निश्चय पर हिमालय की तरह अटल रहीं।

प्रतिबंधों का सामना

मनुष्य दूसरों को अपने अनुकूल बनाने के लिए कई बंधनों का निर्माण करता है। चोरों को अनुकूल बनाने के लिए और उनकी चोरी की वृत्ति छुड़ाने के लिये उसने बेड़ियाँ बनाई, जेल खाने बनाये। चपल घोड़ों, मद वाले हाथियों और बैलों को वश में रखने के लिए उसने उनके मुख या पैरों में रस्सी के बन्धन डाले। रेलगाड़ी, मोटर, या साइकिल आदि वाहनों को वश में करने के लिए उसने उन सब के 'ब्रेक' लगाये। इसी तरह स्त्रियों को अपने अधिकार में रखने के लिए पुरुषों ने भांति भांति के प्रतिबन्ध लगा दिये। पर इन सब बन्धनों के होते हुए भी वहाँ गड़बड़ियाँ हो जाती हैं। कभी कभी दुर्घटना हो जाती है। पर प्रेम रूपी रस्सी का बन्धन विचित्र ही है। इस बन्धन में गड़बड़ी होनी असम्भव-सी है। एक कवि ने इस विषय में बड़ी सुन्दर उक्ति कही है—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि, प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् ।
दारु-भेद-निपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे ॥

अर्थात्—संसार में बन्धन तो बहुत से हैं, पर प्रेमरूपी रस्सी का बन्धन सब से निराला है, सब से बढ़कर है। जिस बन्धन के प्रभाव से काष्ठ को भेदन करने में चतुर भौंरा भी कमल के कोश में बन्द होकर निष्क्रिय बन जाता है।

भ्रमर में कोमल कमल के कोश को भेद कर निकलने की शक्ति है, फिर भी वह उसी में अपने-आप बन्द हो जाता है। इसमें कारण क्या है ? कारण है, वही प्रेमरूप रज्जु का बन्धन। यह बन्धन जिसके हृदय में होता है वह चाहे दूर बैठा हुआ हो तो भी निकट ही है। 'दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः' जो जिसके मन में बसा हुआ है वह दूर होने पर भी दूर नहीं है। इसी प्रकार की उक्ति एक कवि ने कही है—

जल में बसे कुमोदिनी, चन्द्र बसे आकास।
जो जाहू के मन बसे सो ताहू के पास॥

हमारी चरितनायिका के लिये भी बन्धन डाला गया। घर वालों ने सोचा कि इस बन्धन से आपका दिमाग ठिकाने आ जायगा। पर साहसी व्यक्ति के सामने इन बाह्यबन्धनों की क्या गिनती है ? आप जब संसार की मोह-माया के बन्धन को तोड़ने के लिए तुल गयीं तो इन कृत्रिम बन्धनों से क्यों डर सकती थीं ? किसी के मन पर कौन ताला लगा सकता है ? वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार को कितने बन्धनों के पाश में जकड़ दिया गया था, पर वह ऐसा साहसी निकला कि एक ही रात्रि में सारे बन्धनों को चीर कर सूर्य के समान प्रगट हो गया और प्रभु-चरणों में जा बैठा। हमारी चरितनायिका में भी असाधारण शक्ति है बंधनों के तोड़ने की। उनके मन में वैराग्य की सतत ज्वाला जल रही है। महासतीजी म० की प्रेम-मूर्ति उनके हृदय में विराजमान है। उस हृदयस्थ मूर्ति को हटाने की किसमें ताकत है ?

कई दिन हो गए हैं, गुरुनीजी म० के दर्शन नहीं हुए। मन में बड़ी बेचैनी हो रही है। क्या ऐसे प्रतिबन्धों को मैं तोड़ नहीं सकती ? महासती राजीमती ने इतने इतने बन्धनों को तोड़ दिया तो मैं क्या इस जरासे बन्धन को नहीं तोड़ सकती ? उस सिंहनी को माया के पिंजरे में डालने का कितना प्रयत्न किया गया था, तो भी वह

तो स्वतंत्र रही। मैं इस छोटे से बन्धन में कैसे पड़ी रहूंगी ? बात मन में झूलती रही। आपको झटपट एक अच्छी बात सूझ गई। आपने सोचा—इस समय आधीरात होगी। किसे पता चलेगा ? सब नींद में खुर्राटे लेते होंगे। अभी झटपट जाकर सवेरा होने से पहले-पहले महासतीजी के दर्शन कर वापिस लौट आऊँगी। शौच जाने का बहाना ठीक रहेगा। पास ही नोहरा है। वहाँ बन्द करने के बाद कोई आता-जाता नहीं है। उधर से महासती जी महाराज के उपाश्रय जाने का सीधा रास्ता है। बस, काम बन जायगा। अवसर पाकर सब की आँख बचा कर आप शौच के लिए लोटा हाथ में लेकर नोहरे में चली गई। वहाँ से उपाश्रय का रास्ता सीधा था। अन्धेरी रात्रि थी। भयानक वातावरण था। सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी। ऐसे कठिन समय में आप निर्भय होकर चली गई। यह वीरता के बिना नहीं हो सकता था। वैराग्य का रसायन पिये बिना इतनी शक्ति नहीं आ सकती थी।

समय बड़ा विकट है। पर वे वीराङ्गना हैं, साहसिन हैं। वैराग्य के रस से उनका हृदय लबालब भरा हुआ है। जो कष्टों से घबरा कर वापिस लौट गया, उसका भाग्य लौट गया। प्रभु का मार्ग शूरवीरों के लिये है, कायरों के लिए नहीं—

प्रभु नो मारग छे शूरा नो।
नहिं कायर नो काम बाने॥

शूरवीर असम्भव को भी सम्भव कर दिखाता है। प्रकृति का उपद्रव अपनी पूरी शक्ति से प्रतिरोध कर रहा है। परन्तु प्रतिरोधों को प्रतिबन्धों को कुचल कर आगे बढ़ना ही वीरता की मौलिक परिभाषा है। वीर पुरुष अपने इष्ट के दर्शन के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। हमारी चरितनायिका के मन में गुरुनीजी के दर्शन की मंगलमय कामना है। वह सारे सकटों

से लड़ कर गुरुनीजी के दर्शन के लिए पैर आगे बढ़ा रही हैं। संत कबीर की वाणी उनका मार्ग प्रदर्शन कर रही है—

लम्बा मारग दूर घर विकट-पंथ बहुमार।
कहे कबीर कस पाइये दुर्लभ गुरु-दीदार॥

आप उपाश्रय पहुँची। द्वार खट खटाया। एक साध्वीजी की निद्रा भंग हुई। कहा—कौन? इस समय आधीरात में आने वाला कौन है?

आनन्दकुमारीजी—और कोई नहीं, मैं ही आपकी शिष्या 'आनद'।

'इस समय क्यों?'

"कई दिन हो गए, गुरुनीजी म० के दर्शन की अन्तराय लगी हुई थी, मन में विकलता छाई हुई थी। आपने मुझ पर प्रेम का जादू ऐसा डाल दिया है कि वह मेरे हृदय में अपना अडोल आसन जमाए हुए है। घर वालों ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। मेरी आत्मा इस प्रतिबन्ध को तोड़ने के लिए तैयार हो गई।"

साध्वीजी ने दरवाजा खोला। महासतीजी म० के दर्शन किए। मन आनन्दविभोर हो उठा। धन्यो गुरुर्देवता। मानो कई दिन से प्यासे को आज पानी मिला हो। सवेरा होने वाला है, अब जल्दी ही चले चलना चाहिए। देरी से पहुँचूँगी तो घर वालों के मन में सन्देह पैदा हो जायगा, फिर कभी आने न दिया जायगा। महासतीजी म० से मांगलिक सुनकर आप झटपट जिस नोहरे से होकर आई थी, वहीं लौट आई। लोटा नोहरे में रक्खा था। उठाकर घर में प्रवेश किया। घर के सभी लोग अपने २ काम में लगे थे। किसी को सन्देह जैसी बात नहीं पैदा हुई।

इस तरह कई दिन बीत गए। आपका यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। बस, आधी रात होती और लोटा उठा कर चल देती निद्रा भी मानों उस समय अपने पीहर चली गई थी। घर

वाले सोच रहे थे, इस बार इस पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया है। अब वैराग्य का पता लग जायगा। थोड़े ही दिनों में साध्वियों का दर्शन नहीं मिलने से वैराग्य रफूचक्कर हो जायगा। पर आनन्दकुमारीजी अपने आनन्द का विलक्षण ही अनुभव कर रही हैं। यह दबने वाली शक्ति नहीं है। उसने प्रतिबन्धरूप ताले की भी कुञ्जी खोज ली है।

आप जानना चाहते होंगे कि चरितनायिका ने यह चाल क्यों चली? पर इसका समाधान मैं अपनी ओर से दे देता हूँ। बात यह थी कि हमारी चरितनायिका पर दिन रात कड़ा पहरा रक्खा जाता था। पर किसी के मन पर कई पहरा थोड़े ही लगा सकता है? आपको कई दिनों से महासतीजी के दर्शन किये बिना निद्रा पूरी नहीं आ रही थी, भोजन भी रुचिकर प्रतीत न होता था। ऐसी दशा में इस प्रतिबन्ध को तोड़े बिना कोई चारा नहीं था। घर वालों ने जब यह देख लिया कि यह वैराग्य के उच्च मार्ग पर चलने वाली है और उस योग्य भी है, तब इनका मार्ग रोके रखना उचित नहीं था। इस अनौचित्य का परिहार करने के लिए ही आपने यह कदम उठाया था। उसके परिणामों को भोगने के लिए भी आप तैयार थीं। क्या किसी के वैराग्य की तेज धारा को रोका जा सकता है? गेंद को जितना भी जोर से नीचे गिराया जाता है वह उतनी ही ऊँची उठती है। इसी तरह हमारी चरितनायिका की वृत्ति थी। उन्हें ज्यों २ रोका जा रहा था, त्यों २ उनके वैराग्य में तीव्रता आ रही थी।

पर एक दिन रात्रि के समय सतियों के यहाँ जाने की घटना का पता आपके पीहर वालों को लग गया। अचानक ही किसी की नींद खुल गई। आपको इधर उधर देखने पर भी न पाया तो वह नौहरे में गया, पर वहाँ तो कोई नहीं था, केवल लोटा पड़ा था।

अब आपके ऊपर उपालम्भों की बौछारें होने लगीं। चारों ओर से आपके ऊपर डाँटफटकार होने लगी। कहने लगे—"यह काम ठीक नहीं है। इस तरह से रात्रि में अकेले कहीं निकल जाना इज्जत के लिए बड़ा खतरनाक है। यह तो ठीक हुआ कि हमें मालूम पड़ गयी, नहीं तो कभी कोई अनहोनी बात हो जाती तो हमारा मुँह काला हो जाता। आयन्दा कभी ऐसा मत करना। हम तुम्हें ज्यादा कहना ठीक नहीं समझते, इतने में ही समझ जाना।"

आप तो प्रारम्भ से ही गम्भीर प्रकृति की थीं। आपने अपने घर वालों की बात का उत्तर थोड़े में ही देना ठीक समझा। कहा—"आप अपना प्रतिबन्ध हटा लेवे तो मुझे यह मार्ग अपनाना ही क्यों पड़ता ? मैं अब भी आपसे हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक कहती हूँ कि आप मुझ पर ऐसे प्रतिबन्ध न लगाये रक्खें। किसी की सच्ची वैराग्यवृत्ति को दबाया नहीं जा सकता।"

घर वालों ने आपकी बात की कोई सुनाई नहीं की। उन्होंने देखा कि यहाँ से उपाश्रय निकट ही है, इसलिये यह रात को चली जाती है, इसे ससुराल भेज दिया जाय तो वहाँ से साध्वीजी का उपाश्रय बहुत दूर पड़ेगा। वहाँ साध्वीजी को कौन पूछता है ? इस तरह कई दिन बाद अपने आप इस झंझट से छुटकारा मिल जायगा। परन्तु भोले माता पिता को क्या पता था कि वे अपनी पुत्री को जिस पथ से हटाना चाहते हैं वहीं पहुँचा रहे हैं।

आप अब ससुराल आ गई थी। वहाँ भी आपके ऊपर महासतीजी के यहाँ आने जाने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। आपको इस प्रतिबन्ध को तोड़ने का यहाँ भी साहस करना पड़ा। इसका कारण वही था जो पहले बता दिया गया है। आपको कहीं भी स्वतंत्र रूप से आने-जाने नहीं दिया जाता था। आपको यहाँ

आये कई दिन हो गए थे। महासतीजी म० के दर्शन के लिए चित्त लालायित था, पर क्या किया जाय ? सहसा मन में एक वीरता की लहर उठती है। हृदय में एक प्रबल प्रेरणा जाग उठती है, वह यही कि सदा के लिये इस प्रतिबन्ध का अन्त कर दिया जाय। महासतीजी म० के पास चली जाऊँ। बस, वहीं जाकर अड्डा जमालू। अपना आवश्यक सामान साथ में ले लू ताकि फिर किसी का मुह ताकना न पड़े।

पर एक बात मन में खटक रही थी। आप इतनी साहसी और निर्भय थीं कि इस प्रकार की अनेक अड़चनें आने पर भी कभी कायर नहीं हो सकती थीं। मगर यह अड़चन तो उनकी अन्तरात्मा में ही उत्पन्न हुई थी और उसका सम्बन्ध उनके दूसरे कर्त्तव्य के साथ था।

महान् व्यक्ति किसी बाहरी अड़चन की परवाह नहीं करते, किन्तु जहाँ दो ओर से एक साथ आह्वान हो रहा हो, जहाँ कर्त्तव्य-बुद्धि स्वयं दो मार्गों पर चलने की प्रेरणा करती हो वहाँ निश्चय करना कठिन हो जाता है। उस समय अर्जुन जैसे बड़े बड़े साधक इतप्रभ हो जाते हैं, उनकी भी बुद्धि काम नहीं देती। अर्जुन जैसे महारथी भी ऐसे नाजुक समय में अपने गाण्डीव धनुष को छोड़ कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। सौभाग्य से वहाँ श्रीकृष्ण जैसे कुशल सलाहकार अर्जुन के समीप थे। पर यहाँ तो आप ही को स्वयं अपना कर्त्तव्य स्थिर करना था।

वह अड़चन यह थी कि मैं अगर यों ही किसी को बिना कहे सुने ससुराल से चली जाती हूँ तो फिर मुझे दीक्षा के लिये आज्ञा मिलनी बड़ी कठिन हो जायगी। ससुरालवाले सोचेंगे यह तो हमारे कहे अनुसार नहीं चली, अपने मन से चलती है। इस प्रकार मेरा जो विश्वास इन लोगों के हृदय में जमा हुआ है वह भी चला जायगा।

दूसरी तरफ यह बात थी कि मेरे अब दीक्षा लेने के विचार स्थायी और दृढ़ हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। अगर मैं ऐसे ही बैठी रही तो मुझे कौन आज्ञा देगा ? मैं कोई बुरा काम करने के लिये तो खड़ी नहीं हुई हूँ।

इस दुविधा में आपकी बुद्धि ने यह निर्णय किया कि चाहे कुछ भी हो, महासतीजी म० के पास ही चल देना चाहिए। आज्ञा नहीं देगें तो कोई बात नहीं, मैं अपनी जिन्दगी साध्वी की तरह रह कर बिता दूंगी। अच्छा काम करते हुए भी कोई भला-बुरा कहे तो कहे। यह तो मनुष्य का झूठा अहङ्कार है कि वह अपने को दूसरे के अधीन समझने लगता है। अपने भाग्य का अपने को विधाता मनुष्य स्वयं ही है। मैं ही अपने भाग्य को पलट सकती हूँ। बस, इन्हीं विचारों का पाथेय लाकर और साथ में दो स्वर्ण मोहर लेकर आप चल पड़ती हैं।

मध्यरात्रि है। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ है। हाथ को हाथ सूझना भी कठिन हो रहा है। आसपास मनुष्य की छाया तक नहीं। फिर भी देखिये, कितना साहस है। जिस कमरे में सोई हुई थी उस कमरे की पिछली खिड़की से एकदम, निकल पड़ती हैं। कोई डर नहीं, किसी का भय नहीं। अन्धकार में पैर ऊँचे-नीचे पड़ रहे हैं। कभी पैर में झटके पर झटके लगते हैं, पर आपकी गति में कोई फर्क नहीं। उपाश्रय की सीध में आ रही हैं। उपाश्रय तो चिर-परिचित था ही। दरवाजा आने पर जरा धक्का लगाया। महासतीजी जानती थीं कि आनन्द कुमारी के सिवाय इस समय कौन आने वाला है। फिर भी आवाज पहिचान कर द्वार खोला। महासतीजी म० के दर्शन किये, साधारण-सी बातचीत हुई। महासतीजी म० ने पूछा— अब तुम्हारा क्या विचार है ?

विचार क्या है ? अब तो आपकी कृपा से मैं दृढ़ निश्चय

करके आई हूँ कि आपके पास ही रहना है।

महासतीजी के पास वही पहिले का एक ही उत्तर था—
'आज्ञा ले आई हो ?'
'आज्ञा तो नहीं मिली।'
'फिर दीक्षा कैसी ?'

"आज्ञा मिले या न मिले। अब मेरा घर लौट कर जाने का विचार कम है। मन आकुल हो गया है, अब अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती।"

'यह नहीं हो सकता। शास्त्र का विधान है। हम उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। पहले आज्ञा प्राप्त करो।'

आप यह बातें कर ही रहीं थी कि इतनें में अचानक आपकी बड़ी बहन फूलकुंवर बाई की निद्रा भग हो जाती है। सयोग-वश फूलकुंवरबाई उस समय महासतीजी के यहाँ उपाश्रय में ही थीं। उन्होंने जब अपनी बहन की-सी आवाज सुनी तो एकदम चौंक कर उठती हैं, और कहती हैं—"आनन्द, तू इस समय कैसे आगई ? भलीमानस, जरा सोचना तो था कि आधी रात है, मेरे साथ में कोई नहीं है। आजकल शहरों में चोरों का भी काफी आतंक है। कहीं कुछ हो जाता तो महासतीजी का व तुम्हारे ससुराल वालों का नाम बदनाम हो जाता। साथ ही मेरा भी मुंह काला हो जाता। भले घर की औरतें इस तरह छिप कर अकेली कहीं बाहर नहीं जाती। तुझे तो वैराग्य का नशा छाया हुआ है, पर हमारी ओर भी कुछ खयाल करना था। तू तो अब खुद समझदार है, ज्यादा क्या कहूँ। आज तो तू रात्रि में अकेली भाग आई है, भविष्य में ऐसा मत करना।"

आपने अपनी बहन के सामने, निष्कपट भाव से सभी बात कह दी। अन्त में कहा—मैं क्या करती ? गुरुनीजी म० का अटूट प्रेम मुझे रोक न सका। इसी के मारे कई दिनों से पूरी

नींद भी नहीं आ रही थी। जब देखो, तब इनके ही दर्शन की लालसा मन में लगी रहती। मन दर्शनों के लिए छटपटा रहा था। उधर, मुझ पर महासतीजी म० के यहां आने का सब ने प्रतिबन्ध लगा दिया। आखिर विवश होकर मुझे यही मार्ग अपनाना पड़ा।

बहन ने जब यह बात सुनी तो मन में कुछ धक्का सा लगा। उसे किसी तरह रोक कर उन्होंने ऊपरी कठोरता दिखलाते हुए कहा—'ठीक है, जो हुआ सो हुआ। अब चल मेरे साथ। मैं तुझे अभी ससुराल पहुँचा देती हूँ। नहीं तो, वे मन में सोचेंगे हम तो इसे इतने लाड़प्यार क साथ रखते हैं, और यह इधर उधर भागती फिरती है।'

आप बहन की बात सुनकर मौन रहीं और बहन के साथ ससुराल चल दीं। दृढ़निश्चयी व्यक्ति को कोई न कोई सहायक मिल ही जाता है। वह ऐसा सुरक्षित रहता है कि तमाम आपत्तियाँ अपना-सा मुंह लेकर पलायन कर जाती हैं। फूलकु वरबाई जिस समय आपको पहुँचाने साथ गई, उस समय उनका शरीर आभूषणों से लदा हुआ था, और उस समय शहर में चोरों, उचक्कों का भी काफी भय था, फिर भी प्रकृति ने उनकी सहायता की। वे आपको ससुराल तक सकुशल आपको पहुँचा कर लौट आई। प्रकृति-विजयी पुरुषों के आगे सभी भय भाग खड़े होते हैं।

हमारी चरितनायिका अकसर कहा करती हैं—"मुझ पर अपनी बड़ी बहन फूलकु वरबाई का महान्-स्नेह था। वह सौम्य स्नेह-मूर्ति और सब प्रकार से चतुर थीं। मैं अपनी वैराग्य की साधना करती हुई, उन्हीं की छत्र-छाया में अधिक आनन्द का अनुभव करती थी। उनकी भव्य प्रकृति की मेरे हृदय पर अमिट छाप अङ्कित है।"

आप जिस खिड़की मे होकर ससुराल से निकली थी, वह ज्यों की त्यों खुली पड़ी थी। उसमें किसी ने प्रवेश नहीं किया था। आप गई और चुपचाप कमरे में प्रवेश कर खिड़की बन्द करके सो गईं। इस घटना का ससुराल वालों में से किसी को भी पता न चला।

कई दिन बीत गये। एक दिन फिर आपने सोचा—'महा सतीजी म० शहर में रहें और मैं दर्शन किये बिना रहूँ, यह कैसे हो सकता है।' दिनों दिन मन में दर्शन के लिए तड़फ बढ़ रही थी। आपका चेहरा उदास रहता। किसी काम में चित्त नहीं लगता। ससुराल वाले आपकी आकृति देख कर भाँप गए। सोचा—ऐसी उदासीनता और चिन्ता की हालत में इन्हें यहाँ रखना ठीक नहीं, इन्हें पीहर भेज दें। वे लोग अपने आप इन पर निगरानी रखेंगे।

आपको पीहर भेज दिया गया। पीहर में आपको पहले उपालम्भ मिल चुका था, अत आप सावधान थीं। पीहर वाले भी आपके लिए विशेष सावधानी रखने लगे। उन्होंने देखा—कहीं यह पहले की तरह रात को साध्वीजी म० के पास जाना शुरु न करदे। अत कड़ा नियन्त्रण रखा गया।

परन्तु 'जहां सच्ची चाह होती है वहां कोई न कोई राह मिल ही जाती है।' "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" जिसकी जैसी भावना होती है उसे तदनुसार सिद्धि भी मिल जाती है। हमारी चरितनायिका की माताजी को अपने पीहर से बुलावा आया। उन्होंने आपकी भौजाई को आपकी निगरानी रखने का काम सौंपा, और कहा—"इसे कहीं इधर-उधर जाने मत देना, तुम ही इनके पास सोना।" आपकी भौजाइ ने हाँ भर ली और कहा—ठीक है, आप कहती हैं वैसा ही करूँगी। माताजी अपने पीहर निहाल चली गइ। आपकी भौजाई पर सारे काम

काज का भार था। आपकी भौजाई सरल स्वभाव की थीं। उनकी प्रकृति में काफी उदारता थी। आपने उनसे कहा—भौजाईजी, माँ आपको मेरे लिये साध्वीजी के यहाँ जाने देने को मना कर गई हैं। पर आप तो जानती हैं कि मैं अब दीक्षा लेने का विचार कर चुकी हूँ। मैं महासतीजी की शिष्या बनना चाहती हूँ। और इस असार संसार को छोड़ कर आत्मिक सुखों में रमण करना चाहती हूँ। मेरा मन अब गृहस्थ के प्रपञ्चों से ऊब गया है। ऐसी दशा में आप मेरे इस काम में बाधक क्यों बनती हैं? आप मेरी वैराग्य-वृद्धि में और सहायता करेंगी तो, मैं आपका बड़ा अहसान मानूँगी। क्या किसी का जाना आना रोक देने से वैराग्य की वृत्ति कम हो जाती है? आप तो समझदार और सुशील हैं। मुझे महासतीजी के यहाँ जाने आने में अन्तराय न दें। रही बात माताजी की। वे जब आपसे पूछें तो मैं अपने आप उन्हें जवाब दे दूँगी। आप पर किसी प्रकार का उपालम्भ न आने दूंगी। न पूछें तो कोई बात ही नहीं है।

आपकी अनुनय विनय और कोमल-वचनावली सुन कर भाभीजी का दिल पिघल गया। उन्होंने आपको जाने के लिए किसी प्रकार से रोका नहीं। इतना जरुर कहा—कि आपकी माताजी के सामने कहीं मेरा नाम न ले लेना कि मैंने प्रेरणा करके आपको भेजा है। वैसे मेरी तरफ से तो मैं आपके मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहती। आप उत्तम मार्ग को अपना रही हैं, इस मार्ग पर मैं स्वयं चलने में अभी असमर्थ हूँ तो दूसरों के अन्तराय क्यों दूँ?

आपके लिये अब मार्ग साफ था, कोई अड़चन नहीं थी। अब तो हमेशा रात्रि में महासतीजी के यहाँ चली जातीं, और सूर्योदय होने से पहले आ जातीं। अब आपको रात्रि में अपना ज्ञान ध्यान सीखने का भी काफी समय मिलता। अतः रात में

शास्त्रीय बोल व थोकड़े आदि की आवृत्ति कर लिया करतीं। वे दिन बड़े आनन्द में व्यतीत हो रहे थे। वैराग्य का पौधा दिनों दिन वृद्धि पा रहा था।

पर सब दिन एक से नहीं होते। कभी सुख होता है तो कभी दुःख। महाकवि कालीदास ने ठीक ही कहा है—

'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण'

मनुष्य की दशा हमेशा बदलती रहती है। रथ के चक्र की तरह कभी नीचे जाती है, और कभी ऊपर आ जाती है।

महीना, सवा महीना होते ही आप की माताजी अचानक पीहर से आ जाती हैं। उनके आने पर अब जाना ठीक नहीं था। भौजाईजी को भी वचन दिया हुआ था कि मैं आप पर किसी तरह का उपालम्भ नहीं आने दूंगी। वही कर दिखाया। माताजी के आने पर अब आप घर में ही अपनी साधना करने लगीं।

थोड़े ही दिनों में महासतीजी म० का भी विहार हो जाता है। आपके मन में काफी खेद होता है कि मैं विहार से पहले उनका दर्शन न कर सकी। पर महात्मा लोग तो वायु की तरह अप्रतिबद्ध विहारी होते हैं वे किसी के कहने से रुक नहीं सकते। गुरुनीजी म० के वे वचन आपके हृदय में गूँज रहे थे—

'तुम अपना ज्ञान ध्यान बढाती रहना। आज्ञा के लिए प्रयत्न करती रहना। अभी तुम्हारी साधना की कसौटी होनी बाकी है। अपनी आत्मा को गहराई से टटोलना। अपनी दुर्बलताओं को मिटाने का प्रयत्न करना।''

गुरुनीजी का सोजत से तो विहार हो गया था पर आपके हृदय-मन्दिर से नहीं। आपके हृदय मन्दिर में उनकी सौम्यमूर्ति विराजमान थी। आपका विशुद्ध प्रेम जल मनोमन्दिर को प्रक्षालन कर रहा था। "धन्योगुरुर्देवता"

सच्ची कसौटी

संसार में जो भी उत्तम वस्तुएँ होती हैं, उन सब की कसौटी हुआ करती है। आपने सोने की परीक्षा देखी होगी? सोना सच्चा है या खोटा, यह परीक्षा होने पर ही जाना जा सकता है। बाहर के रूप-रूप में सुवर्ण की महत्ता नहीं है। बाहरी दृष्टि से तो सोना और पीतल दोनों एक से मालूम होते हैं, परन्तु जब सोना कसौटी पर कसा जाता है, काटा जाता है और अग्नि में तपाया जाता है तभी मालूम पड़ता है कि यह खरा है या खोटा? महाकवि कालिदास ने कहा है—

"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा"

अग्नि में डालने पर ही सोने की कालिमा और विशुद्धि का पता लगता है। पीतल परीक्षाओं को सहन कर नहीं सकता। वह काला पड़ जाता है। परन्तु सोने की यह विशेषता है कि उसे ज्यों ज्यों तपाया जाता है, त्यों त्यों अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता है। मुझे एक कवि की उक्ति याद आ रही है—

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निर्घषणच्छेदन-ताप-ताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा।

'जैसे घिसने, काटने, तपाने और कूटने से सोने की परीक्षा होती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कार्य से मनुष्य की परीक्षा होती है।'

महान् व्यक्ति की परीक्षा भी हमेशा से होती आरही है। जो विपत्तियों के विद्यालय में पास होता है, वही महापुरुष बनता है। जो जितना अधिक जीवन की विषय-परिस्थितियों में समभाव से रहता है, वह अपना व्यक्तित्व उतना ही ऊँचा बना लेता है।

हमारी चरितनायिका भी इसी वेदना के विद्यालय में पढ़ी हुई थीं। उन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो जाय, चाहे सूर्य पूर्व दिशा को छोड़ कर पश्चिम में उदय होने लगे, मैं अपना दीक्षा का विचार परिवर्तन नहीं कर सकती। हमारी चरितनायिका को भी प्रकृति एक महासती के रूप में जनता को दिखाना चाहती थी। फिर उनकी भी कसौटी क्यों न की जाय ?

महासतीजी म० का विहार होने के कुछ दिनों बाद ही आपको अपनी परीक्षा देनी पड़ी। आपके मन में जिस समय वैराग्य के अंकुर पैदा हुए थे, तब आपके काकाजी श्रीगणेश मलजी जोधपुर सरकारी नौकरी के किसी काम से गये हुए थे। उन्हें आपके वैराग्य की लीला का पता नहीं था। वे जोधपुर से आते ही चरितनायिका की माताजी के पास आए। देवर-भौजाई में काफी लम्बी बातचीत हुई। प्रसंगवश वे पूछ बैठे—"आज कल 'आनन्द' कहाँ है ? वह यहाँ दिखाई नहीं देती।" आपकी माताजी ने व्यङ्ग भरे शब्दों में कहा—"आजकल उसकी क्या पूछते हो ? वह तो वैराग्य के सागर में गोते लगा रही है। उसने आजकल गृहस्थ के काम-काजों से छुट्टी-सी ले रक्खी है। पहले यहाँ साध्वीजी थीं तो जब चाहती तब महासतीजी के उपाश्रय भाग जाती और सामायिक, ज्ञान ध्यान आदि करने लगती।

कई दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा। एक दिन अपनी ससुराल में आज्ञा के लिये अकड़ कर बैठ गई और भोजन तक नहीं किया। उन लोगों ने भी उसे बहुत कुछ समझाया। पर उसने तो वैराग्य की घुट्टी ले रखी थी। समझे तो कैसे समझे! हमने भी यहां तक समझाने का तनतोड़ परिश्रम किया, पर उसकी सनक न मिटी। फिर हमने उस पर महासतीजी के यहां जाने आने की रोक-टोक भी लगा दी, फिर भी कई बार रात्रि को शौच का बहाना करके मोहरे में से होकर चली जाती। यह भी हमने उपालम्भ देकर छुड़ा दिया। हमने समझा था कि शायद साध्वीजी म० के यहां न जाने से उसके वैराग्य का नशा उतर जायगा, पर यह तो उतरने के बजाय दुगुना चढ़ गया है। और आप दिन आज्ञा के लिये जिद कर बैठती है। हम तो उसका यह हाल देख-देख कर परेशान हो गए, हमारे नाक में दम आ गया है। अब आप चाहें तो यह काम हो सकता है। आप चतुर हैं। आप ही उसके वैराग्य का नशा उतार सकते हैं। हम तो कहते-कहते थक गए, हमारी तो एक न चली। हमें आशा है कि वह आपके कठोर-व्यवहार को देखकर अपने विचारों को छोड़ देगी। हम आपका एहसान न भूलेंगे।"

मनुष्य अपने को कई दफे गलत रूप में आंक लेता है। वह थोड़ी शक्ति होने पर भी, थोड़े से गुण होने पर भी अपने को अत्यन्त शक्ति-शाली समझ बैठता है, अपने को महागुणी मानने लगता है। यह क्यों? इसमें मुख्य कारण 'स्वप्रशंसा-श्रवण' है। अपनी थोड़ी-सी प्रशंसा सुनकर वह गर्व से फूल जाता है, और अपने को आस्मान पर चढ़ा हुआ मान बैठता है। बरसाती नदी जैसे थोड़ा सा पर-प्रसाद पाकर भरपूर हो जाती है और इतराती हुई जोर से बहती है और थोड़े से जल के अभाव में सूख जाती है, इसी तरह अपनी बड़ाई सुनकर संसार के कई लोग अपने

को बृहस्पति का अवतार मान लेते हैं। हमारे जैसा चतुर और बुद्धिमान् कौन है ? ऐसे घृणित भाव उनके हृदय में पैठ जाते हैं।

चरितनायिका के काकाजी भी इसी तरह की सी प्रकृति के थे। वे अपनी प्रशंसा सुनकर फूले न समाए। सोचा—"मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे मेरी एक गर्जना से वह डर जायगी और दीक्षा का फिर कभी नाम भी न लेगी। इस तरह अगर मैंने दीक्षा लेते उसे रख ली और विचार पलट दिये तो सभी मेरा बड़ा भारी उपकार मानेंगे। आजीवन एहसान न भूलेंगे।"

गणेशमलजी वहीं पर बैठे-बैठे ही शेखचिल्ली के से पुलाव पका रहे थे। सोच रहे थे—मैं क्रमश: साम, दाम, और भेद नीति से पहले काम लूँगा। इनमे अगर न मानी तो फिर अपने अंतिम शस्त्र-दण्डनीति का प्रयोग करूँगा। मार के आगे भूत भी भाग जाते हैं, तो यह तो कल की छोकरी है। उसे समझाना कौन बड़ी बात है ? इन लोगों ने अभी तक सामनीति का ही इस्तेमाल किया है। भला, सामनीति से वैराग्य के मस्त और चञ्चल हाथी को वश में किया जा सकता है ? उन्होंने अपनी भाभी से कहा—मैं अभी जाता हूँ और जैसे होगा वैसे समझा कर उसका दिमाग ठिकाने ला दूँगा। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें।

गणेशमलजी यह कर सीधे आपकी ससुराल आए। आपकी ससुराल में पर्दे का काफी रिवाज था। वहां किसी पराए आदमी के सामने दूसरी औरतें न रह सकती थीं। इस कारण गणेशमलजी के आगमन की सूचना पाते ही आपकी सासुजी व जेठानियाँ आदि अन्दर के किसी कक्ष में चली गईं। सन्ध्या हो रही थी। चरितनायिका सामायिक लिये हुए बैठी थीं। और अपना आत्म चिन्तन कर रही थीं। काकाजी एकदम आपके पास आए। आपने कुशल समाचार वगैरह पूछे। और आगमन का कारण

पूछने लगीं। काकाजी ने पहले कुछ नरमाई से बातें की और जोधपुर से आने का हाल संक्षेप में सुनाया। और आप से पूछने लगे—मैंने सुना है तुम दीक्षा ले रही हो, जैन साध्वी बनना चाहती हो, क्या यह बात सच है ?

आनन्दकुमारीजी—"हाँ, कई दिन हो गये हैं, करीब दो या सवा दो साल से, मैं इस वैराग्य के झूले में झूल रही हूँ। मैंने संसार के समस्त प्रपञ्चों की छान बीन कर ली है, उसमें मुझे कोई सार नजर नहीं आया। मैं यह मानव जीवन भोगों की अंधेरी गलियों में भटक कर व्यर्थ ही गँवाना नहीं चाहती। आप जानते हैं कि मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। यह पानी के बुलबुले की तरह थोड़ी सी देर में नष्ट हो जाता है। मनुष्य बड़ी-बड़ी बातें सोच लेता है, पर ये सारी की सारी पूरी नहीं हो पातीं। वह अन्त में हाथ मलते-मलते पछताता हुआ इस लोक से बिदा होता है। मैं इसी तत्त्व को अपनी आंखों के सामने चित्रपट की भांति देख चुकी हूँ। इसी बीच महासतीजी की मुझ पर अपूर्व कृपा हुई है। उन्होंने मुझे जैनधर्म की विशिष्ट बातों का बोध कराया है। मैं चाहती हूँ कि उनकी गोद में बैठ कर परम शान्ति का लाभ करूँ और गृहस्थी के जाल से मुक्त होऊँ।

काकाजी ने अपना चेहरा गम्भीर बना कर कहा—क्यों दीक्षा किसलिये ले रही हो ? क्या घर में कोई खाने-पीने की कमी है ? क्या तेरे ससुराल में कोई तुझे दु:ख दे रहा है ?

आनन्दकुमारीजी—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे सभी प्रसन्नता पूर्वक बुलाते हैं, मेरी सुख-सुविधा का सब ख्याल रखते हैं। खाने-पीने की भी इस घर में कोई कमी नहीं है। कोई व्यक्ति खाने-पीने के दु:ख से घर नहीं छोड़ देता। जैन-दीक्षा ऐसी नहीं है। यहां तो वैराग्य के मार्ग पर चलने वाले की पहले खूब पड़ताल की जाती है, बाद में दीक्षा दी जाती है। वह भी

अभिभावकों की आज्ञा होने पर। मैंने अपनी दीक्षा का उद्देश्य आपको समझा दिया। मनुष्य-जन्म अनन्त पुण्योदय से मिलता है। इस सच्चे अनमोल रत्न को पाकर यों ही काच के समान दुनिया की रंगीनियों में फँस कर गँवाना नहीं चाहती।"

अब काकाजी जरा उग्र होकर बोले—"तू ऐसा सोचती होगी, पर मैं तो समझता हूँ इस तरह घरबार छोड़ देने से ही किसी को मोक्ष नहीं मिल जाता है। मोक्ष मिलता है संयम का शुद्ध पालन करने से। संयम के मार्ग पर चलना वीरों का काम है, कायरों का नहीं। तू तो अभी बहुत सुकुमार है, संयम के भयानक कष्टों का सामना कैसे करेगी ? यहां तो तेरे लिये सभी साधन उपलब्ध हैं पर दीक्षित हो जाने के बाद तो इतने साधन घर भी न सकेगी और न इधर कहीं मिलेंगे ही। इसलिये मेरा कहना मानकर तू गृहस्थावस्था में ही अपनी साधना कर। उन साध्वियों के फन्दे में फँस कर अपना जीवन क्यों फिजूल बिगाड़ती है ? संयम का मार्ग तलवार से भी तीक्ष्ण धार वाला है, इस पर तेरे जैसी का चलना दुष्कर है।"

आप शान्त मुद्रा से कहने लगी—हाँ, आपका कहना ठीक है कि संयम का मार्ग बड़ा कठिन है। पर मैंने उसे इतने दिनों में परख लिया है, मेरा शरीर वैसे तो कोमल है, पर संयम की साधना के लिये वज्र से भी कठोर है। मैं कायर बन कर अपने सापुरुष की चादर पर एक भी काला धब्बा न लगने दूंगी। काकाजी ! मैं यह साधना आज से नहीं शुरु कर रही हूं। मुझे अपने मन से निरन्तर बातें करते हुए करीब सवा दो वर्ष हो चुके हैं। बहुत सोच-विचार के पश्चात् मैं इसी निश्चय पर पहुँची हूँ कि मुझे विकारों को जीतना है। उनकी दासी बन कर नहीं रहना है। मुझे आगे बढ़ना है, निरन्तर आगे।"

गणेशमलजी ने अब भेदनीति का आश्रय लिया—यह

तो तू सिर्फ मुंह से कह रही है। मुंह से बड़ी २ बातें बना लेना आसान है। कथनी के समान करणी करते आटे-दाल का भाव मालूम पड़ता है। दीक्षा कोई नानी की कहानी नहीं है कि केवल सतीजी के मुंह से पाटी सुनली और काम पूरा हो गया। मैं तुझे यही सलाह देता हूँ कि तू और ज्यादा सोच विचार ले। अभी तेरा कुछ नहीं बिगड़ा है। अभी तो बात बनी बनाई रह जायगी कि अमुक बाई दीक्षा लेती थी, पर आज्ञा नहीं दी तो वह क्या करे? अभी तू बच्ची है, जीवन का विशाल-मार्ग तेरे सामने है। क्या-क्या उलटफेर आयेंगे तुझे क्या पता है? क्यों दीक्षा लेकर हमारी बदनामी कराती है?

आनन्दकुमारीजी—'अब आप चाहे सो कहें, मुझे दीक्षा लेने के सिवाय कोई मार्ग ही पसन्द नहीं है। मैं केवल मुंह से ही बातें नहीं कर रही हूँ वरन् समय आने पर पालन करके भी दिखा दूंगी। मेरे लिये एकमात्र दीक्षा लेना ही श्रेयस्कर है, ऐसी पत्थर की लकीर की तरह अपनी मनोवृत्ति बनाली है उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

सच है, जिसके हृदय रूप सिंहासन पर राम (परमात्मा) बैठ गया है वहां रावण रूप काम नहीं बैठ सकता है। पण्डित राज जगन्नाथ ने ठीक ही कहा है—

'विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः,
याताश्चेन्न पराञ्चति द्विरदानां रदा इव।'

'विद्वानों के मुख से प्रथम तो कोई वचन झटपट निकलते नहीं, और निकल गये तो फिर हाथियों के दांतों की तरह वापिस लौटते नहीं अर्थात् खाली नहीं जाते।'

हमारी चरित्रनायिका भी अपने प्रण पर डटी हुई हैं, उनके प्रण को परिवर्तन करने का साहस किसमें है?

— आपके काकाजी ने देखा कि इस पर तो मेरी भेदनीति

का कोई असर नहीं हुआ है, उलटे, यह तो अपने मार्ग पर दृढ़ हो रही है तो उन्होंने अपना रुख बदला। अपनी भृकुटि चढ़ाली और क्रोध में आकर बोले—हां, हां, मैंने तुझे देख लिया। तू ऐसी सीधी-सादी बातों से थोड़े ही मानने वाली है? तू क्षुद्र पूजा प्रसाद चाहती है। इतनी सिरपच्ची की तो भी तू सही रास्ते नहीं आई। लातों के देव बातों से थोड़े ही मानते हैं। ठहर जा, अभी तेरी गधिलास (धम्मोई) निकालता हूँ। अभी भट्टी पर कड़ाई चढ़ाकर नीचे अग्नि लगाता हूँ और तेरा सिर नीचे लटका कर उस्तरे से छील कर खून निकालता हूँ। तब तू मानेगी। तू सीधी तरह से ही मानजा न? क्यों अपने बुड्ढे काका को कुपित कर रही है?

चरितनायिका—आप चाहे मुझे मारें, पीटें, कुछ भी करें। मैं मौत से डरने वाली नहीं। मौत कोई भयङ्कर चीज नहीं है। मैं तो बस, एक बात कह चुकी कि मुझे संयम ग्रहण करना है। आप बड़े हैं। समझदार होकर भी ऐसा काम करते हों तो करें। मैं अपने विचार शिखर से एक इंच भी हटना नहीं चाहती।

समझाने और प्रेम से कहने का कोई परिणाम न निकला तो चरितनायिका के साथ कठोर बर्त्ताव किया गया। असफल मनुष्य क्रुद्ध होता है, क्रुद्ध व्यक्ति मारने पीटने पर उतारु हो जाता है। गणेशमलजी भी इस बात से अछूते नहीं थे। अब उनके पास एक ही मार्ग बचा था, एक ही नीति बची हुई थी। वह थी-दण्ड नीति-आप पर उक्त तीनों नीतियों का कोई प्रभाव न पड़ा। ईख को ज्यों-ज्यों पीला जाता है त्यों-त्यों वह मीठा-रस प्रदान करता है, वैसे ही आपको भी ज्यों-ज्यों कठोर शब्द या कठोर व्यवहार के द्वारा तंग किया जा रहा था, उतना ही आप शान्तिभाव को धारण कर रही थीं। मन में समझ रही थीं कि यह मेरी संयम-कक्षा की परीक्षा है। पास हो जाने पर

मेरे लिये ही फायदा है। काकाजी का पारा तो अब आसमान पर चढ़ गया। उन्होंने रौद्र रूप बनाया, और आप सामायिक में बैठी थीं तो भी बाहें पकड़ कर जोर से दूर घसीट कर ले गये। आपकी सामायिक की बात वहां कौन सुनता था? आव देखा न ताव, एकदम दो चार लातें जमादीं। इतने से ही उनका कोप देवता शान्त नहीं हुआ। पास में एक पानी का छोटा घड़ा भरा हुआ था उसे उठाकर आपके मस्तक पर दे मारा और मुंह पर ऐसा कस कर एक चांटा मारा कि आपके मुंह पर अंगुलियों के निशान पड़ गये। इतने जोर की मार से शरीर पर खून जम गया था, बड़ी तीव्र वेदना हो रही थी, तो भी आपने उफ तक न किया। समझा कि मार देंगे तो मार देंगे, मारकर मेरा क्या छीन लेंगे, मेरे वैराग्य के गुणों को तो लूटने की इनमें ताकत नहीं है? आत्मा तो अजर अमर है, यह काटने से कटती नहीं जलाने से जलती नहीं, फिर मैं क्यों डरूं? उस समय उत्तराध्ययन सूत्र की यह वाणी आपका मार्ग प्रदर्शन कर रही थी—

"समणं संजयं दंतं हणिज्जा कोइ कत्थई,
नत्थि जीवस्स नासुत्ति एवं पेहेज्ज संजए।"

"जो श्रमण है, संयत और दान्त है उसे कोई कहीं पर मारे-पीटे तो, वह ऐसा विचार करे कि इस आत्मा का नाश होता नहीं, शरीर को पीट कर यह क्या करेगा?"

आपको ज्यों-ज्यों पीटा गया त्यों-त्यों आपने समभाव धारण किया और काकाजी पर किसी प्रकार का द्वेष न किया। आपके मन में प्रबल वैराग्य उमड़ रहा था। उस वैराग्य जल प्रवाह को छूने के कारण काकाजी का क्रोध आपके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं डाल रहा था। यह है सच्ची सामायिक! सच्ची समता का अभ्यास!

पाठक जानना चाहते होंगे कि जब आपके काकाजी ने,

आपको पीटा तब क्या कोई छुड़ाने वाला नहीं मिला ? उन्हें यह निर्दयता पूर्ण कार्य कैसे देखा गया ?

इनका उत्तर यह है कि मारवाड़ प्रान्त लकीर का फकीर रहा है। वहाँ की औरतें ऐसे पर्दे में घिरी रहती हैं कि उस समय कोई पराया पुरुष उनके एक अङ्ग को भी देख न ले। वे ऐसे निर्दयतापूर्ण कृत्यों से बढ़कर अपने पर्दे को महत्त्व देती हैं, मानों पर्दा-प्रथा का पालन करना तो धर्म हो, और अपने सामने किसी को पिटते देख कर भी उसकी रक्षा करना पाप हो। अज्ञानता के कारण ही उन पर पर्दा लाद दिया गया है और उन्हें अबला (निर्बला) की पदवी दे दी गई है। अज्ञानता ही के कारण वे अपने कर्त्तव्यों का निर्णय नहीं कर सकतीं।

यही कारण है कि कई जगह बहनें घर में बीमार पड़ा कराह रहा है, उसकी सेवा की कोइ परवाह न करके स्थानक में सामायिक करके बैठ जाती हैं। वहाँ वे अपने दिल को कठोर बना कर मानो समभाविनी बन जाती हैं।

परन्तु संसार के सभी लोग एक से नहीं होते हैं। कोई न कोई भला व्यक्ति भी निकल आता है। उस समय मारने-पीटने का शोर सुन कर पड़ोस में रहने वाली एक बहन छुड़ाने के लिए भी आई। यह बहन सिंघियों की लड़की थी, इस कारण गणेश मलजी को काकाजी समझती थी। उसने कहा—"काका साहब, क्यों इसे मार रहे हो ? इसने आपका क्या बिगाड़ा है ? इसने कोई गलती तो की नहीं फिर क्यों पीट रहे हो ?" उस समय उस अकेली बहन का क्षीण-स्वर कौन सुनता था ! काका साहब ने कोई ध्यान दिया नहीं। कोई गलती होती तो बताते ? वे तो 'मान न मान, मैं तेरा महमान' की नीति पर तुले हुए थे।

काकाजी की क्रूर प्रकृति इतनी कसौटी करके भी संतुष्ट न हुई। वे भले ही कसौटी पर कसौटी करें, हमारी चरितनायिका

के हाथ में तो धैर्य की अमूल्य जड़ी है, जिसके जरिये वे अपनी बुद्धि का संतुलन नहीं खोतीं। यहां मुझे योगिराज भर्तृहरि की एक उक्ति याद आरही है—

'कदर्थितस्यापि च धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणं प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥'

धैर्यवृत्ति वाले व्यक्ति को कोई कितना ही तंग करे, पर उसके धैर्य के गुण को पोंछने (मिटाने) की ताकत उसमें नहीं है। अग्नि की लौ का मुंह कोई चाहे जितना ही नीचा कर दे पर वह तो अपना मुख ऊपर की ओर ही रखती है।

हमारी चरितनायिका भी अपनी धैर्य धुरा पर बैठी थीं, फिर भी काकाजी से न रहा गया और उन्होंने उन्हें पास ही की एक कोठरी में बन्द कर दिया। कहा—"बस, अब तू समझ जाना, नहीं तो मेरे जैसा कोई बुरा नहीं है। मैं तुझे संथारा (अनशन) करा देता हूँ। दीक्षा का तो मेरे जीते-जी नाम मत लेना।"

महात्मा गांधी ने तो देश के नेताओं और प्रजाओं को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाया था, पर आपने न मालूम किस पाठशाला में यह पाठ पढ़ा था? आपको सहज ही सत्याग्रह करने की प्रेरणा मिल गई। सत्याग्रह अहिंसक वीरों के लिये है, जान का भय रखने वालों के लिये नहीं। महात्मा गांधी ने तो निष्पृह प्रजा सेवकों के लिये सत्याग्रह को एक अहिंसक शस्त्र बताया था। उन्होंने कहा था—"सत्याग्रह की लड़ाई में हारने या पस्त होने की कोई बात नहीं है। इस लड़ाई में आदमी का बल हमेशा बढ़ता ही जाता है। इसमें थकावट पैदा नहीं होती। ....
सत्याग्रह का अर्थ है सत्य पर डटना। अतः उसका अर्थ हुआ—सत्यबल। मैं उस प्रेमबल या आत्मबल के नाम से पुकारता हूँ। सत्याग्रह के चलने में मैंने आरम्भ में ही देखा कि सत्य के पालन

रण में विरोधी के प्रति हिंसा की गुंजाइश नहीं है। ...... "
इसलिये सत्याग्रह के सिद्धान्त का अर्थ हुआ—सत्य का प्रतिपादन, विरोधी को कष्ट देकर नहीं, स्वयं कष्ट सह कर।

सत्याग्रह के विषय में युगद्रष्टा आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज की धारणा मनन करने योग्य है। आपके यह शब्द कितने प्रभावशाली हैं—

'सत्याग्रह के बल की तुलना कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्य शक्ति तो क्या, देव शक्ति भी हार जाती है। कामदेव श्रावक पर देवता ने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिये किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर सत्योपार्जित आत्मबल से उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया।

भगवान् महावीर ने सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ऊपर किया था। इससे वे चण्डकौशिक ऐसे विषधर सर्प के स्थान पर लोगों के मना करने पर भी निर्भयता-पूर्वक चले गये। प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी सत्याग्रह का महत्त्व-पूर्ण दृष्टान्त है। उसने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी। इस कारण उस पर कितने ही अत्याचार किये गये। लेकिन अन्त में सत्याग्रह के सामने अत्याचारी पिता को झुकना ही पड़ा।

साधारण बुद्धि वाला कह सकता है कि इन बातों से सत्याग्रह का क्या सम्बन्ध है? मगर सत्याग्रह द्वारा अहिंसा का प्रयोग सफल बनता है।

चरितनायिका को सत्याग्रही की जेल के रूप में यह कोठरी मिली थी, जिसमें काकाजी ने इन्हें बन्द कर दिया था। अब तो आपको आत्म चिन्तन के लिये अच्छा स्थान मिल गया था। आप वहीं पर प्रभु का भजन करने लगीं। आप इस कोठरी के बन्धन के लिये किसी दूसरे से याचना नहीं कर रही थीं, वरन्

आप परमात्मा से उस सत्य के बल को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना कर रही थी कि हे प्रभो मुझ में उस परम-सत्य को, परम ज्योति को पाने के लिये कष्ट सहने की शक्ति हो। मैं अपने आप ही इस बन्धन को तोड़ कर मुक्त बनूँगी! कवि की इस उक्ति को सम्भव है आपने जीवन में रमा लिया हो—

सखे! मेरे बन्धन मत खोल।

स्वयं बंधा हूँ, स्वयं खुलूंगा। तू न बीच में बोल॥ सखे०॥

यह था आपके सच्चे सत्याग्रह का रहस्य! वह कोठरी मानो आपके लिये साधना-मन्दिर बनी हुई थी! परन्तु साधना के लिये वैसे साधन भी तो होने चाहिए थे? वह भी आपको दैवयोग से वहीं मिल गये। पास ही सफेद वस्त्र सिये हुए पड़े थे। आपको और क्या चाहिए था? आपने सोचा—प्रभु ने सहज ही यह योग मिला दिया है। आपने अपने शरीर पर से सारे रंग बिरंगे वस्त्रों को उतार फैंका और श्वेतवस्त्र धारण कर लिये। थोड़े बहुत आभूषण आपके शरीर पर थे उन्हें भी उतार कर एक निकटवर्ती अन्धेरी कोठरी में फैंक दिये। और संयोगवश एक कैंची भी वहां पड़ी हुई मिल गई। उसे लेकर सिर के सब बालों को काट डाला। अब तो आपने साध्वी का सा वेष बना लिया। आप श्वेताम्बरधरा बन गई। उस समय आप ऐसी लगती थीं मानो दूसरी चन्दनबाला महासती ही हों। आप उस समय प्रसन्नमुद्रा से अन्धेरे में एक मस्त योगिनी की तरह अपनी माला फिरा रही थीं। उस समय का दृश्य बड़ा दर्शनीय था। चरितनायिका की वैराग्यच्छटा एक अपूर्व ही रूप ले रही थी। उनके हृदय में विचारों का प्रवाह उमड़ रहा था—

"भोलाभाला मानव समझता है सुन्दर सुनहरी गहनों में सुख है, बहुमूल्य वस्त्रों में सुख है, नाना प्रकार के सुस्वादु भोजनों में सुख है, बड़े-बड़े गगनचुम्बी भव्य महलों की ऊँची

अट्टालिकाओं पर चढ़ कर अपने आपको चक्रवर्ती राजा बनने में सुख है। परन्तु इन्हीं वस्तुओं में यदि सुख होता तो भगवान् महावीर और महासती चन्दनबाला जैसी महान् आत्माएँ कठोर त्याग का दुर्गम-पथ क्यों अपनाती! उन्हें संसार की दृष्टि से सब कुछ प्राप्त था। फिर भी वे सब कुछ छोड़ कर भाग निकले। मुझे तो इन सांसारिक वस्तुओं में कोई गुण नजर नहीं आता।"

आपने श्वेतवस्त्रों को उक्त कोठरी—साधना मन्दिर तक ही रक्खा। सादगी के सुख का स्वयं पता लगा लिया, मन में सोचा—बस, अब तो जब ये श्वेत वस्त्र पहन कर साध्वी बनूँगी! तभी सच्चा आनन्द आयेगा। धन्य है ऐसी पवित्र भावना को!

धीरे धीरे अंधेरा बढ़ रहा था। इधर काकाजी ने यह काम कर तो लिया, पर मन में कुछ झेंप से रहे थे। उन्होंने सोचा—अभी इसके ससुराल के लोगों में से कोई आधमका तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिला देगा। एक घण्टा हुआ होगा कि इतने में तो चरितनायिका के ज्येष्ठ फतहचन्दजी बाहर से घर पर आए। आते ही उन्होंने सारा घटना-चक्र सुना तो दंग रह गए और कुछ आंखें लाल करके गणेशमलजी से कहने लगे—आज तो आपने बड़ा अच्छा काम किया! आप तो ऐसे भले आदमी निकले कि अगर आज हम घर में न आते तो, आप न मालूम क्या कर डालते! आपकी जो लड़की है, उसके साथ इस तरह का बर्बरता का व्यवहार किया, यह देखकर क्रूरता भी लज्जित हो जाती है! उसने आपका क्या बिगाड़ा था, जो आपने यहाँ आकर इतना कष्ट दिया? हमारे घर में तो यह पूजनीया है, शील की देवी है और शान्तमूर्ति है। ऐसे रमणी-रत्न को कष्ट की शाण पर चढ़ाया, इसमें क्या विशेषता की? यह तो पहले ही अपने जीवन में कष्टमयी साधना कर रही थीं। अपने शरीर की सुकुमारता को तो उसने पहले से ही त्याग रक्खा था। आप

जैसे कुलीन व्यक्तियों के लिये यह कार्य शोभनीय नहीं है। आपके शरीर पर कोई इतनी चोट करे तो आपको कितना दर्द होता है! एक छोटी-सी सूई चुभोने पर तो आप मछला उठेंगे! परन्तु इसे पीटते समय आपको यह ध्यान नहीं आया! खैर, जो हुआ सो हुआ, अब इन्हें किसी तरह से आश्वासन दीजिए।

फतहचन्दजी के कहने का गणेशमलजी पर काफी असर पड़ा। वे मन में समझ गए। कुछ बोल न सके। और चरित नायिका से आकर पूछने लगे—बेटी मैंने भूल में यह काम कर लिया। मैंने तो यह काम तुम्हें किसी तरह से घर में रखने के लिये ही किया है। तुम्हारी माता बहुत अधीर हो रही थी, मुझे उन्होंने कहा कि तुम उसे समझा बुझा कर किसी तरह दीक्षा को रोक दो इसी कारण यह सख्ती मुझे करनी पड़ी। तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी, काकाजी ने समझा—शायद इसके अवयव में कहीं सख्त चोट लगी हो तो दीक्षा के योग्य न रहेगी। ऐसा सोचकर बार-बार कहने लगे—तेरी आंख बता तो बेटी!

आप भद्र प्रकृति की थीं, आपने समझा शायद यह कहीं आंख पर भी चोट न कर बैठें, नहीं तो सारे जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। आपने काकाजी को मुसकरा कर जवाब दिया— "काकाजी, आप जानते हैं यहां मेरा ससुराल है, मैं अपना मुंह यहां खोल नहीं सकती।" काकाजी समझ गये। वे कुछ नहीं बोले और अपना-सा मुंह लेकर अपने घर की ओर चल दिये।

इधर फतहचन्दजी ने देखा अनुजवधू कोठरी में बन्द पड़ी है। इस समय न सम्भालना कृतघ्नता होगी, उसके साथ में एक धोखा होगा। हम पर उसकी रक्षा की जिम्मेवारी है, उसे पूरा करना चाहिये। ऐसा सोचकर वे सीधे कोठरी के पास आए और कहा—"बेटी, घबराओ मत। तुम्हारी जैसी इच्छा होगी वैसा ही करेंगे। तुम अपने हृदय में संतोष रखना। मैं तुम्हारे कार्य

के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ, मुझ से तुम्हारा इतना कठोर कष्ट देखा नहीं जाता। आशा है जल्दी ही तुम्हारे कार्य में तुम्हें सफलता मिलेगी। अब तुम्हारी काफी कसौटी होचुकी है। अब तुम्हें रोकना व्यर्थ है। अब तुम्हारी ज्योति वह ज्योति नहीं जिसे कोई बुझा सके। अच्छा, जिस पथ पर तुम आगए हो उस पर अब आगे बढ़ो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम एक महान् सती बनो और जैनधर्म के गगन में सूर्य के समान चमको।"

आप चुपचाप सुन रही थीं और अपनी साधना में व्यस्त थीं। ज्येष्ठजी क पवित्र हृदय के उद्‌गारों को सुन कर आपके मन में धैर्य की गांठ काफी दृढ़ हो गई। आप उस परम दिन की प्रतीक्षा करने लगीं।

इधर फतहचन्दजी ने रात्रि के समय में ही काकाजी की करतूत के समाचार आपके पीहर भेजे। पीहर के सब लोग सुन कर भौंचक्के हो गये। काकाजी को मन ही मन गालियां देने लगे। गणेशमलजी के पड़ौस के कितने ही लोगों ने उन्हें उपालम्भ भी दिया—आपने उसे क्यों पीटा, वह महासती है, शील मूर्ति है, आप को शाप दे देगी तब? गणेशमलजी ने अपनी ऐब छिपाने के लिये उनसे कहा—मैंने पीटा है तो किसी और कारण से नहीं, मैंने तो उसके दीक्षा के विचार पलटाने के लिये ऐसी सख्त कार्रवाही की थी। मेरी तो वह बेटी है, वह मुझे क्यों शाप देगी?" फूल कुवर बाई ने जब यह सुना तो वह भी मन में पछताने लगी कि मैं अपने को उसे सहायिका कहती थी, पर यह काकाजी का निर्दय-कृत्य तो मैंने अपने रहते होने दिया, रोका नहीं। अब मैं उसके सामने क्या कहूँगी? इस तरह कितनी देर तक पशोपेश में पड़ी रही। आखिरकार आपकी माता, फूल कुवरबाई आदि सब लोगों ने रात को ही चलने का विचार किया। ऐसा सोच कर कि—उसका शरीर सुकोमल है कहीं

ज्यादा चोट तो लग गई हो, और हमने न पूछा और उपचार न किया तो न मालूम चोट बढ़ जाय, कहीं कुछ और बात न हो जाय। सब के सब रात को ही यहाँ आये। इस तरह सारी रात भर आने जानेवालों का तांता लग गया। बाहर लालटेनों का प्रकाश हो रहा था, ऐसा मालूम पड़ता था मानो कोई उत्सव हो रहा हो।

उस समय आपने पौने चार वर्ष तक दया व्रत (छः काया की रक्षा) का पालन किया। उस दया में आप स्वयं किसी प्रकार का आरम्भ नहीं कर सकती थीं ? न करा सकती थीं अतः सख्त चोट लगने पर भी आपने अपने मुँह से गर्म ईंट से सेक करने या किसी लेप वगैरह बनाने को किसी से नहीं कहा। आपके ससुराल वाले सेकने के लिये ईंट तपाने लगे, पर आपने मना कर दिया कि इस तरह तपा कर लाई हुई ईंट मेरे काम न आवेगी, क्योंकि मैं दयाव्रत में हूँ। फिर आपके पीहर वाले आपकी भौजाई के हाथ में चोट लगी थी उस पर सेक करने के लिये गर्म मट्ठा लकड़ी का लेप लाये थे। उस सहज ही गर्म किये लेप का लगाना आपने मन्जूर किया। फिर भी आपका चित्त बड़ा प्रसन्न था।

हमारी चरितनायिका से जो कोई भी चोट के विषय में पूछता आप यही उत्तर देतीं—कोई ज्यादा चोट नहीं आई। सब आनन्द है, गुरुजी म० की कृपा से सब ठीक हो जायगा। आप लोगों ने मेरे लिये रात में आने का इतना कष्ट क्यों उठाया ? मैं तो अपने आप ठीक हो जाऊँगी। मेरे पास परमात्म भजन-रूप रामबाण दवा है, उससे तो ठीक होकर ही रहूंगा।

सब लोगों के हृदय-पट पर आपकी छाप पड़ चुकी थी। वे लोग समझ गये कि बस, अब तो इसकी काफी परीक्षा हो चुकी है। सब ने आपकी दिन चर्या देखी तो हैरान हो गए। बिल्कुल साध्वी का सा जीवन। तप और संयम का वायु मण्डल।

माताजी और बहन आदि को आप पर पूर्ण भरोसा हो गया कि यह सिंहनी की तरह वीरतापूर्वक दीक्षा का पालन करेगी। यह कष्ट क्या कम थे? साधु जीवन में तो इससे अधिक और क्या कष्ट आएँगे?

सब लोग आपको अपनी ओर से आश्वासन देकर वापिस लौट गये।

सूर्योदय हुआ। आज का सूर्योदय कुछ विलक्षण ही था। आज का सूर्योदय विजय का सूर्योदय था। जैसे रात्रि के सारे अन्धकार पर विजय प्राप्त करने के बाद दिवाकर अपना विजयी मुख-मण्डल लेकर बाहर निकलते हैं, वैसे ही आपने भी सम्बन्धी लोगों के मानस के अन्धकार पर विजय प्राप्त की। अथवा अन्धेरी कोठरी में भी ज्ञान के प्रबल-प्रकाश से तिमिर पर विजय प्राप्त की, और विजय प्रभा से प्रकाशित अपना मुखमण्डल लेकर कोठरी से बाहर निकलीं। अब भोजन के लिये सब लोगों ने आपकी मनुहार की। सबने कहा—"रात भर की थकावट है। कमर में दर्द है। थोड़ा भोजन करलो।" आपने कहा—"मैं भोजन कैसे कर सकती हूँ? मुझे तो काका साहब ने संथारा-(अनशन) कराया हुआ है। उनकी दिलाई हुई प्रतिज्ञा को भंग कैसे किया जाय?"

काकाजी (गणेशमलजी) को बुलाकर पूछा गया—'क्या आपने अपनी भतीजी को कल संथारा (अनशन) करा दिया था? यह कह रही है कि मुझे काकाजी ने संथारा करा दिया है। क्या इस तरह से संथारा हो जाता है?'

गणेशमलजी—"मैंने तो उसे डर बताया था कि शायद संथारे के नाम से यह दीक्षा लेने का हठ छोड़ दे। यह तो केवल भय में डालने के लिए मैंने कहा था। वस्तुतः मैंने कोई संथारा नहीं कराया है। और इस तरह जैनधर्म में संथारा होता भी नहीं है।"

चरितनायिका की सरल और निष्कपटवृत्ति देख कर सब लोगों ने कहा—आपको आपके काकाजी ने किसी प्रकार का संथारा नहीं कराया था, यह तो खाली खौफ दिखाना था। तब आपने कहा—हाँ, तब तो मुझे भोजन करने में कोई हर्ज नहीं है। मैंने तो समझा था कि काकाजी ने मुझे संथारा करा दिया है तो ठीक है, वह दिन आवे और इस नश्वर शरीर पर से ममता हटाऊँ।

यह है सरल-जीवन! साधक का हृदय ऐसा स्वच्छ और निर्मल होना चाहिए। आप तो भोजन करने के लिये तैयार थीं। पर उधर आपके काकाजी लगे थे, व अपने यहाँ भोजन कराने के लिए भेजने को फतहचन्दजी से कहने लगे। फतहचन्दजी ने कहा—'आपके यहाँ भोजन करने के लिये भेजना तो दूर रहा, हम आपके यहाँ की कोई भी चीज स्वीकार नहीं कर सकते हैं। आपने हमारे घर की एक सरलात्मा के साथ ऐसा अत्याचार-पूर्ण व्यवहार किया! क्या पता अब भी आप और कुछ कर बैठें? आपकी वृत्ति से हमें पूरा संतोष नहीं है।'

काकाजी अपने आपे से बाहर हो गए और कहने लगे—"आप हमारी बेटी को नहीं भेजते हैं तो न सही। आप ही रखिये, और साध्वीजी के यहाँ चढ़ा दीजिये। आपने इतने दिन क्यों लगाये? पहले ही इसे आज्ञा देकर दीक्षा दे देनी थी। खैर, मैं तो जारहा हूँ मुझे इससे अब कोई सरोकार नहीं है। आप जानें आपका काम जानें।"

आप यह बातें सुन रही थीं। आपने उसी समय जेठजी को कहलाया कि—'यह ठीक है कि मेरे साथ इन्होंने बर्बरता पूर्ण बर्ताव किया है, फिर भी मैं उस बर्ताव को अपने लिये उन्नति कर और हितकर समझती हूँ। ऐसा करके इन्होंने मेरी कद्र बढ़ाई ही है, घटाई नहीं। व अगर इतनी कसौटी न करते तो क्या मालूम आपके भाव आज्ञा देने के होते या न होते?'

"मैं यह नम्रता-पूर्ण शब्दों में कहती हूँ कि बाद में आप चाहे जैसा करें, पर इस समय तो मुझे काका सा० के यहां जरूर भेज दीजिये। उनके ऊपर मुझे किसी प्रकार का रोष नहीं है। न मैं उनके द्वारा दिये गये कष्ट को कष्टरूप में समझती हूँ। वे मेरे पिता के तुल्य हैं, बड़े हैं। वे बालक को सुधारने के लिये जो कुछ सख्त बर्ताव करते हैं, वह उचित ही है। उन्होंने मेरी कोई हानि नहीं की है। कृपया, इस बात पर विचार करके मुझे काकाजी के यहाँ भेजने में किसी प्रकार की आनाकानी न करें।"

आपकी अनुनय विनय सुन कर सब लोग द्रवित हो गये। वे लोग आश्चर्य चकित होकर कहने लगे-"हमें तो हमारी प्रकृति के विरुद्ध कोई जरा-सी बात कह देता है या थोड़ी-सी गाली सुनाता है, तो एकदम आग बबुला हो उठते हैं, और अपना महान अप मान समझते हैं, उससे लड़ाई करने को तैयार हो जाते हैं, पर इन्हें देखो, यह तो बड़ी शांति से कष्ट सहती रहीं। इन्हें इतना जुल्म किया तो भी उन पर कोई रोष नहीं, उनके साथ प्रेम का बर्ताव ही किया, और उनके यहाँ जाने को भी तैयार हो गई। धन्य है ऐसी सती को! यह तो कोई न कोई देवी है! हमने इन्हें इतने दिनों तक व्यर्थ ही रोक कर रखा! अब इन्हें अपने निश्चित पथ पर कदम बढाने देना चाहिए।" आपको काकाजी के यहाँ भेज दिया गया।

पाठको, मैं आप से थोड़ी बातें कर लेता हूँ। देखिये सच्ची सहिष्णुता यह होती है! हमारी चरित्रनायिका को मारा-पीटा, कोठरी में बन्द कर दिया, एक के बाद एक नयी से नयी यात नाओं का सिलसिला शुरू हुआ। यह सब कुछ किया और मर्यादा से बढ़ कर किया, परन्तु चरित्रनायिका तिलमात्र भी अपने पथ से विचलित नहीं हुई। भय और आतङ्क से अपना मार्ग बदलने वाले और ही कोई होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र का

"संति सेवेज्ज पंडिए" (पण्डित क्षमा धारण करे) का पाठ आपके जीवन में ओत-प्रोत हो गया था, फिर मार्ग से विचलित होती ही क्यों ? सच्चा वीर सिपाही मृत्यु की दाढ़ में पड़ कर भी अपनी राह नहीं बदलता। वह तो अपकार करने वालों का भी उपकार करता है। यह काँटा चुभोने वाले को फूल देता है। यही भगवान् महावीर का सच्चा उपदेश था, जिसे आपने अपनी जीवन की प्रयोगशाला में प्रयोग कर दिखाया।

जिस समय दीक्षा लेने के विचार को त्याग देने के उद्देश से आपके ऊपर यह विपत्तियाँ ढाई जा रही थीं उस समय सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रत्नकुमारीजी थीं। ये महाभाग्यवती और कोमल चित्त की थीं। ये उस समय बगड़ी (मारवाड़) में विराजित थीं। यह वैरागी चौथमलजी सांसारिक पक्ष की मासी थीं। उनके दर्शन करने के लिए वैरागी चौथमलजी, (वर्तमान जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज) जो दीक्षा लेने के लिये कई दिनों से तैयारी कर रहे थे, पर अभिभावकों की आज्ञा नहीं मिल रही थी, इस कारण रुक रहे थे, इधर-उधर घूमते-घामते सोजत आए। ये धर्मज्ञ थे, शायद प्रवर्तिनीजी सोजत में विराज रही होंगी अतः यहाँ दर्शन हो जायँगे, पर सोजत में प्रवर्तिनीजी के दर्शन नहीं हुए। और वे बगड़ी जाने की तैयारी में थे। उस समय सोजत विराजित बड़ी आनन्दकुमारीजी महासतीजी के दर्शन किये और मांगलिक सुना। महासती के मुख से यह भी सुना कि "यहाँ एक वैरागिन है, उसे बहुत कष्ट दिया जारहा है। आज्ञा अभी तक नहीं मिली है। महासतीजी महाराज से अर्ज कर देना।"

वैरागी चौथमलजी बड़ चतुर थे, और वे खुद वैराग्यावस्था में थे, अतः उन्होंने वैरागिन बाई को देखने की इच्छा प्रकट की। वैरागिन आनन्द कुमारीजी के पास वे आए। बातचीत हुई।

आनन्द कुमारीजी ने उन्हें एक पत्र लिख कर दिया और कहा— यह पत्र आप महासती प्रवर्तिनी श्री रत्नकुमारीजी महाराज को दे देना। पत्र में आपने अथ से इति तक वैराग्यवस्था में परिवार वालों के प्रतिबन्ध, काकाजी द्वारा दिये गए कष्ट आदि की सारी घटना अपने हाथ से रोचक ढंग से लिख दी।

उन्होंने आपसे पूछा—क्या मैं यह पत्र पढ़ सकता हूँ? आपने पढ़ने की स्वीकृति दे दी। वैरागी चौथमलजी के पत्र पढ़ते ही अन्तर में रोमाञ्च हो गया और बड़ी भावुकता से कहा— "आपने अपार कष्ट सहे हैं इतने कष्ट दिये जाने पर भी आपके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ रही है। मुझे भी अपने जीवन मार्ग की दिशा का निश्चय करना है। मैं समझता हूँ इतने कष्ट सहने के बाद तो मुझे भी दीक्षा के लिये मेरे संरक्षकों की आज्ञा मिल जायगी। अस्तु, आपका मार्ग कल्याण कर हो, आप आगे प्रगति करें, यही मंगल कामना है।" इतना कह कर वैरागीजी विदा हुए, वे सीधे मगढ़ी आए, और महासतीजी प्रवर्तिनी रत्नकुमारीजी को वन्दन करके बैठे। सारी आप बीती सुनाई। और बाद में आपका वह पत्र महासती को पढ़ने को दिया। पत्र पढ़ते-पढ़ते ही महासतीजी की आँखों से आँसू छलछला आए। हृदय गद्गद् हो गया। कण्ठ भी थोड़ी देर के लिए रूँध गया। आखिर उन्होंने कहा—"वाह रे संयम! तेरे लिए कितनी कसौटियाँ की जाती हैं। मुझे लोग कितना ठोक-पीट कर स्वीकार करते हैं। वास्तव में वैरागिन की सच्ची कसौटी हुई है। भोले भाले घरवाले लोग जानते हैं कि इस तरह ठोक पीट कर बालू की दीवारा से संयम की बाढ़ को रोक लेंगे। पर वे यह नहीं जानते हैं कि यह वह बाढ़ है, यह तूफान है, जिसे रोकने की ताकत किसी की नहीं। दृढ़ प्रतिज्ञ वीर पुरुष को कोई शक्ति रोक नहीं सकती। इस संयम के यात्री का जीवनसंबल अन्तर-हृदय की आदर्श प्रेरणा है। उसका

अगर इस काम में तुम सफल हो गए, तो मैं तुम्हें उचित पुरस्कार दूंगा ।"

पैसा क्या नहीं करता ? धन का लालच देकर बड़े-बड़े सत्यवादियों और न्याय प्रिय व्यक्तियों को अपने मार्ग से डिगाया जा सकता है। यह तो साधारण व्यक्ति था इसे अपने पथ से विचलित करने में कौन बड़ी बात थी ? वह गंगारामजी के कथन में आगया एक रोज वह साधु के वेष में चरितनायिका के काकाजी के घर आया, काकाजी ने उसे आपके पास इशारा करके भेज दिया। काकाजी एक कोने में छिप कर सब बातें सुनने लगे।

नकली साधु ने आपके पास आकर पूछा—क्या दीक्षा लेने वाली बाई तू ही है ?

आनन्दकुमारीजी—हाँ, मेरा ही दीक्षा ले लेने का विचार है।

नकली साधु—दीक्षा तो ले रही हो, पर पहिले से सोच समझ कर लेना। कहीं बाद में पछताना न पड़े। तुमने सुना है, साधु अवस्था में कितने कष्ट हैं ? पैदल चलना, रोटी मांग कर खाना, केशलोंच करना इत्यादि कष्टों का वर्णन तो तुमने सुना ही होगा। यह कष्ट कम नहीं हैं। गृहस्थावस्था में तुम सब साधनों से सम्पन्न हो। तुम्हें घर बैठे रोटी मिल जाया करती है, किसी के सामने दीनता नहीं करनी पड़ती। यहाँ तो तुम बीमार भी पड़ जाओ तो तुम्हारे लिए डाक्टर पर डाक्टर बुलाकर घर वाले चिकित्सा करा सकते हैं, पर साधुपन में तो ये सब बातें हो नहीं सकतीं। वहाँ तो रोग में पड़े सड़ते रहो, कोई पूछने वाला नहीं है। साधुपन में तो कोई किसी का सम्बन्धी हो तो भले ही सेवा कर देता है, नहीं तो सेवा का काम बड़ा कठिन है। मैं तो खुद इन बातों के कारण तंग आगया हूँ। फिर तुम इस जाल में क्यों फँस रही हो ?

आजकल की साध्वियों में परस्पर कलह बहुत है। एक

दूसरी से लड़ती हैं। और ईर्ष्या का तो पूछना ही क्या ? संसम तो थ नाक तक डूबी हुई हैं। यहाँ तो तुम चाहो जितने व चाहे जैसे कपड़े रख सकती हो, पहन सकती हो, पर साधुपन में तुम्हारी मनमानी नहीं चल सकेगी। वहाँ तो परिमित और सादे वस्त्र रखने पड़ेंगे। मैं देखता हूँ—तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर और सुकोमल है, वह इस भयंकर यातना को सह नहीं सकेगा। फिर वेष छोड़ने को तुम्हें मजबूर होना पड़ेगा। मैं तुम्हारा हितैषी होकर तुम्हें कह रहा हूँ। साधु-साध्वी पहले अपने वैरागी और वैरागिनों को ये सब हाल बताते नहीं हैं। वे सोचते हैं कि पहले बता देंगे तो यह दीक्षा लेगा नहीं, इसके वैराग्य का जोश ठण्डा पड़ जायेगा। अभी तो तुम्हारे हाथ में लगाम है। तुम्हारी आज्ञा नहीं हुई, इसलिये पांस जहाँ की तहाँ दब जायगी, पर बाद में तो तुम्हें दीक्षा पालनी ही पड़ेगी।"

आनन्दकुमारीजी ने कहा—"आप मुझे दीक्षा लेने से मना कर रहे हैं और कठिनाइयों को समझा रहे हैं। इन कठिनाइयों से घबरा कर मैं अपने निश्चय से कभी हट नहीं सकती। इनसे भयंकर यातनाएँ तो मैंने देखली हैं। आप कहते हैं, वहाँ कोई किसी की सेवा नहीं करता, पर मुझे सेवा करानी ही कहाँ है ? मैं कर्म रोगों को मिटाने के लिए ही अब दीक्षा ले रही हूँ तो इन बाह्य-रोगों से क्यों घबराऊँगी ? जंगल में विचरण करने वाले हिरण की कौन सेवा करता है ? रही ईर्ष्या की बात, वह भी मेरे साथ में कोई साध्वी करेंगी तो करें, मैं अपनी प्रकृति को शान्त रखूंगी तो दूसरा मेरा क्या बिगाड़ सकेगा ?"

नकली मुनि ने देखा कि यहाँ दाल गलने वाली नहीं है। यह तो सब कुछ समझी बैठी है, तो वह लज्जित होकर अपना-सा मुंह लेकर चला गया। वास्तव में वह आपकी युक्तियों और प्रभावशाली तर्कों को सुनकर मन ही मन घबरा गया था कि

कहीं यह मुझे डाँट फटकार कर निकाल न दे। पर आपने तो ही मीठे शब्दों में कह कर स्नेह के साथ उसे विदा किया।

चरित्रनायिका के काका साहब, जो रहस्य का अनुसंधान करने में लगे थे, और छिप कर आपकी बातें सुन रहे थे, वे प्रभावित हो गये। थोड़ी देर पहले उनका पारा आसमान पर चढ़ा हुआ था, अब एकदम उतर गया। वह आपकी बातों को सुनकर गद्गद् हो उठे, उनका हृदय एकदम पलट गया। वे आपके पास आए और बच्चों की तरह आँखों से आँसू बहाते हुए कहने लगे—बेटी, तू तो महान् सती है। मैं इतने दिन भूल में था। मैंने तेरे स्वरूप को नहीं पहचाना और तुझे असह्य यातनाएँ दीं, पीड़ित किया। मैं क्या जानता था कि तू अपने विचारों पर अडोल रहेगी ? पर तूने तो जैसा उस दिन कहा था वैसा ही कर दिखाया। मैं महान अपराधी हूँ। मेरे सब अपराध माफ करना।" ऐसा कहते हुए अपनी पगड़ी उतार कर आपके पैरों में रखने लगे। आपने बीच ही में हाथ से रोक कर कहा—"काका साहब, यह क्या कर रहे हैं ? आपका क्या अपराध था ? दीक्षा लेनेवाले की कसौटी करना यह तो आपका फर्ज था। और आपने मेरी जो कसौटी की है, उसके लिए मैं तो आपको और अच्छा समझती हूँ। मैं तो आपकी बच्ची हूँ। मेरे सामने आप इस तरह पश्चात्ताप क्यों कर रहे हैं ? मेरी तरफ से आपको सदैव माफी है। आपको ही मेरे कारण भली बुरी सुननी पड़ी और इतना कष्ट उठाना पड़ा उसके लिए मुझे माफी माँगनी चाहिए थी। खैर, आप मन में किसी प्रकार का दुःख न करें।"

इस तरह काकाजी और भतीजी के बीच प्रेम का आदान प्रदान हो रहा था। सारा वातावरण बदल चुका था। सारे अणिष्ट-परमाणु उड़ गये थे। आपको काकाजी ने आश्वासन दिया कि—"आनन्द ! तूने अपना नाम सार्थक कर लिया है।

तू सचमुच ही आनन्द की मूर्ति है। तू अब पहले जैसी नहीं है। तेरा मार्ग तूने स्वयं प्रशस्त बना डाला है, अब तेरे मार्ग को रोकने की किसी में शक्ति नहीं। तू सच्चे दिल से अपने धर्म और नियमों का पालन करेगी, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। अब मैं तुम्हें किसी तरह का कष्ट नहीं दूंगा। आज्ञा दिलाने के लिये मैं प्रयत्न करूँगा और शीघ्रातिशीघ्र तुम्हें संयम-रथ में बिठाऊँगा।"

सच है, दैवी शक्ति के सामने आसुरी शक्तियाँ परास्त हो जाती हैं झुक जाती हैं। जगत् में हमेशा से यह सिद्धान्त चलता आया है। भगवान् महावीर के सामने चण्डकौशिक, प्रह्लाद के सामने उसके पिता, कृष्ण के सामने कंस, राम के सामने रावण, इत्यादि इसके उदाहरण हैं। आसुरी प्रकृति के धनी अंग्रेज भारत के दैवी-प्रकृतिक गाँधीजी के सामने टिके नहीं। इसी प्रकार हमारी चरितनायिका की शान्त-प्रकृति के सामने काकाजी की क्रूर-प्रकृति खड़ी नहीं रह सकी। क्रूर प्रकृति को भी शान्त प्रकृति के रूप में परिणत होना पड़ा। यह है सच्ची अहिंसा का प्रयोग !! अहिंसक व्यक्ति के सामने हिंस पशु भी अपना वैरभाव भूल जाते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में कहा है—

"*अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।*"

जहाँ अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, वहाँ निकट में आने वाले भी अपना वैर छोड़ देते हैं।

१७

साध्वी दीक्षा
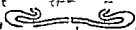
पृथ्वी सर्वसहा (सब कुछ सहन करने वाली) कहलाती है। वृष्टि होने से पहले पृथ्वी की क्या दशा होती है? सूर्य उसे तवे के समान तपा देता है। बादल भी गर्ज-गर्ज कर उसे डाट फटकार कर बताते हैं, और चञ्चल बिजली उसे आँखें दिखाती हुई कड़-कड़ाती है, कभी उस पर गिर भी जाती है। और आँधियाँ अपना सारा बल लगा कर पृथ्वी के कणों को उड़ा कर नाश कर देना चाहती हैं। वे वृष्टि को अपने शरीर से रोकना चाहती हैं। पर पृथ्वी इन सब के उपद्रवों को शान्त भाव से सहती है। बदले में कुछ भी प्रतीकार नहीं करती। इसी कारण उसे पानी की शीतधाराएँ मिलती हैं, और वह थोड़े ही दिनों में हरियाली की हरी साड़ी ओढ़ लेती है। उसे कष्ट देने वाले सूर्य, बिजली, बादल, आँधी आदि सब अपने आप शान्त हो जाते हैं। वे वृष्टि बरसाने में सब सहायक बन जाते हैं।

यही बात हमारी चरितनायिका के सम्बन्ध में है। वह तपाने वालों, गर्जने वालों, लाल आँखें दिखाकर क्रोध करने वालों, और मारने पीटने वालों का सभी उपद्रव शान्त भाव से सहती रहीं। किसी प्रकार का प्रतीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि सभी लोग आप पर प्रेमवृष्टि बरसाने में सहायक होगए। आप को वैराग्य-जल की शीतधाराएँ मिलीं, और थोड़े ही दिनों में आप दीक्षा की चादर ओढ़ेगीं।

आपके पीहर वाले और ससुराल वाले सब आपकी वैराग्यवृत्ति देखकर प्रसन्न हो रहे थे। आपके मन में भी सब के हृदय से संतोष के शब्द सुनकर ऐसी प्रसन्नता हो रही थी जैसे एक परीक्षार्थी को परीक्षा में पास होने के बाद परीक्षा-फल (रिजल्ट) सुनकर होती है। पर परीक्षार्थी को पास होने पर प्रमाण पत्र (सार्टीफिकेट) मिलता है तभी वह आगे की कक्षा में प्रवेश कर सकता है। आपको तब साधु-जीवन की कक्षा में प्रवेश करना था, उसके लिये कुटुम्बी-जनों का मौखिक आज्ञा-पत्र प्राप्त करना था। आज्ञापत्र के लिये, आपके काकाजी, पिताजी वगैरह सब लोगों ने आपके ज्येष्ठजी के पास कोशिश की कहा—"हम सब को अब अपनी लड़की पर संतोष है। वह महाव्रतों के भार को उठाने में समर्थ है। और हमें तो ऐसा लगता है, वह साध्वी जगत् में एक अपूर्व रत्न निकलेगी। उसकी वर्तमान समय की प्रसन्नमुद्रा साधुता का गुण पाजाने पर सोने में सुगन्ध का काम देगी। अब आप उसे आज्ञा देने में ज्यादा विलम्ब न करें।

ज्येष्ठजी फतहचन्दजी बड़े विचारशील व्यक्ति थे, उन्होंने सोचा—ठीक है, अब मैं जल्दी ही इसके लिये निर्णय कर दूंगा। एक दिन वह शुभ अवसर आया और फतहचन्दजी ने अपने घर वाले सभी कुटुम्बियों के सामने बड़े स्नेह भरे शब्दों में आज्ञा दी और कहा—बेटी, अब तुम अपनी संयम-यात्रा के लिये तैयारी करो। हमारी तरफ से हमने तुम्हें बहुत दिनों तक रोके रक्खा। अब हम तुम्हें रोक नहीं सकते। अब हम दीक्षा की आज्ञा देते हैं। देखना, अपने धर्म में दृढ़ रहना। अपने पवित्र कुल पर किसी प्रकार का भी कलङ्क न लगाना। भगवान् राम, तुम्हें वह शक्ति दें, जिससे तुम अपने कर्तव्य-मार्ग में आदर्श-सफलता प्राप्त कर सको। 'शिवास्ते सन्तु पन्थान' (तुम्हारे मार्ग कल्याण कर हों)।"

अब क्या था, आज्ञा-प्राप्त होने पर आपकी प्रसन्नता का पार न रहा। आपने अपनी संयम यात्रा का कार्य पहले से ही प्रारम्भ कर दिया था।

आपके दीक्षा लेने के विचारों का पता सोजत-संघ को पहले ही लग चुका था। सोजत संघ उस समय काफी बड़ा था। आपको आज्ञा दिलाने के लिये भी उनका विचार शंकरलालजी व फतहचन्दजी से प्रेरणा करने का हुआ था। परन्तु बाद में सोचा—ये बड़े आदमी हैं। रामसनेही-सम्प्रदाय के भक्त हैं। ऐसी दशा में हमारे कहने से शायद ये रुष्ट होकर आज्ञा न दें, इसलिये आज्ञा तक हम प्रतीक्षा करलें, बाद में संघ की तरफ से दीक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न करेंगे।

महासतीजी बड़ी श्रीआनन्दकुमारीजी म० उस समय 'बगड़ी' में विराजित थीं। वहाँ के लोग आपकी अमृतवाणी का पान कर रहे थे। चरितनायिका के ससुराल वालों ने महासतीजी को सोजत पधारने के लिये विनति कराई, और कहलाया—"यद्यपि आप सोजत चातुर्मास कर चुकी हैं, आपकी मर्यादा के अनुसार आप वहाँ नहीं ठहर सकतीं। फिर भी विशेष उपकार के लिये आप पधार भी सकती हैं। हमारी विनति मान कर सोजत पधारने की कृपा करें। हमें आपको शिष्या की भिक्षा देनी है। वह दीक्षा लेने के योग्य है। अतः उसे स्वीकार करने में कालक्षेप न करें।"

महासतीजी ने उन लोगों की विनति मानली और यथा समाधि सोजत की ओर विहार करने का आश्वासन दिया।

बगड़ी संघ के अग्रगण्य लोगों को इस बात का पता चला कि वैरागिन बाई की आज्ञा हो चुकी है और दीक्षा देने के लिये सोजत से लोग विनति करने आये हैं, तो उन लोगों में भी काफी चेतनता आई, और वे वैरागिन आनन्दकुमारीजी के ससुराल

भाओं के पास आए। कहा—'बैरागिन बाई की जो दीक्षा होने वाली है, हम चाहते हैं, इसमें हमारी भी सेवा ली जाय। दीक्षा का सारा खर्च हम लोग उठाना चाहते हैं। आप जानते हैं यह तो धार्मिक कार्य है, उत्तम अनुष्ठान है। इसमें हम भी हाथ बँटाने दें।'

फतहचन्दजी ने कहा—"यह तो आप लोगों की मनमन चाहत है जो आप खर्च उठाना चाहते हैं। परन्तु इस समय तो आप क्षमा करें। हम इस पवित्र कार्य को अपने ही हाथ से सम्पन्न करना चाहते हैं। आप लोग इसके लिये ज्यादा आग्रह न करें। जगह के लोगों ने यह सुनकर ज्यादा आग्रह नहीं किया और मन ही मन समझ गये कि 'यह स्वयं इस कार्य को सम्पन्न करना चाहते हैं। इनका उत्साह काफी है तो हम लोग क्यों अन्तराय दें।'

इधर खेरापा के रामसनेही साधुओं ने जब यह सुना कि रामरामवाले राजराजजी मुथा की पुत्रवधू जैन-दीक्षा ले रही है, तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए और यह शुभ सन्देश कहलाया कि—'यह बड़ा पवित्र कार्य है। इस कार्य में देरी मत होने दो। बाई की इच्छानुसार इसे अपना पवित्र धर्मानुष्ठान करने दो।'

सोजत के जैनसंघ में भी हर्ष की लहर दौड़ गई थी, वहाँ के श्रावक श्री फतहचन्दजी मुथा से दीक्षा की व्यवस्था के लिये कहने लगे। परन्तु फतहचन्दजी ने किसी की न सुनी। उन्हें यह अभीष्ट न था। वे खुद सम्पन्न व्यक्ति थे अतः सबको लाचार होकर वापिस लौटना पड़ा।

महासती बड़ी आनन्दकुमारीजी म० केशरकुमारीजी म० व लक्ष्मीकुमारीजी म० ठाणा ३ से बगड़ी से विहार करती हुई सोजत पधार गई। सब लोगों में उल्लास छा रहा था। धर्मध्यान का ठाठ लग गया था। उस समय महासतीजी श्री केशरकुमारीजी

के सांसारिक पक्ष के भतीजे श्री आनन्दीलालजी मयपुर से दर्शनार्थ आए हुए थे। उनके द्वारा वैरागिन श्री आनन्दकुमारीजी की दीक्षा का मुहूर्त दिखाया गया। इन्होंने पंचांग देखकर पौष शुक्ला १३ का दिवस ठीक बताया। हमारी चरित्रनायिका को इतना लम्बा समय पहाड़ लग रहा था, उनके मन में दीक्षा लेने की प्रबल उत्कण्ठा थी। आपका तो विचार था कि अभी ही शीघ्र से शीघ्र दीक्षा ग्रहण कर लूं; पर लौकिक बातों के कारण आप लाचार थीं। मारवाड़ में तारा (संक्रान्ति काल) लगने के समय कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता। तदनुसार 'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नादरणीयं' की नीति आप को भी अपनानी पड़ी। परन्तु तारा उतरने के बाद तो कोई ऐसी अड़चन नहीं थी, अतः आपने पौष वदी १२ की भगवती दीक्षा दिलाने का आग्रह किया। 'शुभस्य शीघ्रम्' वाली उक्ति के अनुसार आपने कहा—शुभ-कार्य के लिये ज्यादा मुहूर्त वगैरह देखने की क्या आवश्यकता है ?

हमारी चरित्रनायिका अब भी कभी कभी कहा करती है—शुभ कार्य के लिये मुहूर्त का क्या देखना ? धर्मकार्य के लिये सभी दिन अच्छे होते हैं। शुभ शुभ कार्य में दिशाशूल, चन्द्र आदि क्या देखते हो ? क्या चातुर्मास उतरने के बाद विहार करने का मुहूर्त देखा जाता है ? संवत्सरी के दिन व्रत करने का मुहूर्त देखते हो ? यह तो भगवान् की आज्ञा है। शुभकार्य के लिए कौन सा दिन या रात्रि बुरी है ? उत्तराध्ययन की एक गाथा इस विषय में सुन्दर संकेत कर रही है—

> "जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तइ,
> धम्मं च कुणमाणस्स सफला जंति राइओ।
> जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तई,
> अहम्मं कुणमाणस्स अफला जंति राइओ ॥"

अर्थात्—जो जो दिन-रात्रि व्यतीत हो जाते हैं वह फिर लौट कर नहीं आते। तब ऐसे छोटे समय वाले जीवन में सद्धर्म का आचरण करने वाले के वे रात्रि दिन सफल जाते हैं और अधर्म करने वाले का वह समय निष्फल चला जाता है।

तात्पर्य यह है कि अमूल्य घड़ियाँ बारबार नहीं मिलतीं। समय चला जाता है, किन्तु कुछ भी धर्म कार्य न करने वालों को पश्चात्ताप ही रह जाता है कि हाय! समय चला गया और हम कुछ भी न कर पाये। समय का सदुपयोग करने वालों ही अपना जीवन ऊँचा बनाता है।

हाँ, तो चरितनायिका अपनी कहती रहीं और ससुराल वाले अपनी। हुआ वही जो चरितनायिका को अभीष्ट था। बात यह हुई कि फतहचन्दजी ने आपकी दीक्षा का मुहूर्त सोजत के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी से भी दिखलाया। ज्योतिषी विद्वान् थे। उन्होंने गणित करके कहा—आपने जो पौष शुक्ला १३ का मुहूर्त कहा था, उससे तो पौष कृष्णा १३ का मुहूर्त श्रेयस्कर है। फतहचन्दजी ने कहा—हमारी वैरागिन ने तो पहले ही अपनी दीक्षा के लिये यह दिन ठीक बताया था। अब आपकी मोहर छाप और लग गई। अब हमें पूरा विश्वास हो गया कि पौष कृष्णा (वदी) १३ का मुहूर्त श्रेष्ठ है। फतहचन्दजी आए और आपको अपना ही निश्चित किया हुआ मुहूर्त सुनाया। अपने ही हाथ से बनाए हुए किसी सुन्दर चित्र को देख कर चित्रकार के मन में जैसे प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता आपको स्वनिर्णीत मुहूर्त सुनकर हुई। महासतीजी म० को भी दीक्षा का मुहूर्त बता दिया गया। संघ ने भी इस मुहूर्त को सुन कर बड़ी खुशियाँ मनाईं।

धूमधाम से दीक्षा महोत्सव की योजनाएँ बनने लगीं। जगह जगह आमन्त्रण-पत्रिकाएँ भेजी गईं। सैकड़ों नरनारी बाहर से एकत्रित हुए। चरितनायिका के पीहरवाले लोगों के

मन में भी काफी उत्साह था। उन्होंने दीक्षा लेने के दो चार दिन पहले आपको बुलाया और बरनौली दी, काफी स्वागत किया। आपके पिताजी, जो बड़ी ही कोमल प्रकृति के थे, स्नेह भरे शब्दों में आपकी माता के सामने कहा—आनन्द दीक्षा लेना चाहती है। आज तो यह हमारे पास है, दो चार दिनों में साध्वीजी म० के पास चली जायगी। मेरी अन्तिम भावना यही है कि वह एक वक्त मुझे अपने हाथों से भोजन बनाकर जिमा दे और मैं कुछ नहीं चाहता। यह कहते पिताजी का गला रुंध गया, वे और ज्यादा न बोल सके।

आपकी माताजी ने आप से इस विषय में कहा। पर आप तो पहले से ही दयाव्रत का पालन कर रही थीं अतः आपने बड़े मधुर शब्दों में माताजी से कहा—'मां, आप जानती हैं, मैं इस समय दया का पालन कर रही हूं। दया में अपने हाथ से आरम्भ का कोई कार्य नहीं किया जा सकता। इसलिये पिताजी की इस बात का पालन करने में मैं असमर्थ हूं। और कोई मेरे योग्य कार्य हो तो कहें। मैं उनकी रुचि का पूर्णतः ध्यान रक्खूंगी।'

माताजी ने देखा यह ठीक कह रही है। उन्होंने थाली में भोजन परोस कर आपसे कहा—लो अब तो तुम पिताजी को जिमा सकोगी! इसमें तो तुम्हारे कार्य में कोई बाधा नहीं है। यह तो प्रासुक अन्न है।

आपने पुनः विवेक बुद्धि से विचार कर जवाब दिया—मां एक बात है। पिताजी अगर भोजन करते समय कच्चा पानी पीवें तो मुझे अपने हाथ से जिमाने में एतराज है क्योंकि मैं किसी को कच्चे पानी पीने की प्रेरणा इस समय नहीं कर सकती।

पिताजी इस बात पर राजी हो गए और कहा—मैं अभी कच्चा पानी नहीं पीऊँगा। मुझे तो एक बार तुम्हारे हाथ का

अमृत-भोजन लेना है।

आप अब जिमाने को तैयार थीं। आपने बड़े प्रेम से और श्रद्धा पूर्वक अपने हाथ से जिमाया और उनकी रुचि को पूर्ण किया। वह भी भोजन कर बड़े खुश हुए।

आप सहसा हर एक कार्य में हाथ नहीं डालती थीं। आपकी सूक्ष्म रीति से सोचने और समझने की कितनी बुद्धि थी! इस बात का पता हमें इसी घटना से लग जाता है। वास्तव में धर्म का मार्ग विवेक के द्वारा ही बूढ़ा जा सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

'पन्ना समिक्खए धम्मं।'

'अपनी प्रज्ञा (सदसद् विवेक शालिनी-बुद्धि) से धर्म का परीक्षण करे।'

कल दीक्षा का दिन है। सोजत के सारे बाजारों में काफी चहल पहल थी। लोग दीक्षा देखने के लिये आतुर हो रहे थे। दीक्षा राजपोल दरवाजे के बाहर माहेश्वरियों के रामद्वारे के विशाल मैदान में होने वाली है, यह समाचार सर्वत्र बिजली की तरह फैल गया था। आपके श्वेठजी ने उस मैदान में चारों ओर कनातें बन्धवा दी थी, यह इसलिये कि मारवाड़ में यह प्रथा है कि ओसवाल घराने की कोई लड़की दीक्षा लेती है तो दीक्षा का वेष पहनने से पहले तक उसका पर्दा कायम रहता है। वह किसी के सामने अपना घूंघट उतार नहीं सकती। पर्दा-प्रथा की बदौलत ही यह सारा प्रपंच करना पड़ा, फिर भी अभी तक मारवाड़ इस प्रथा को पालने पोसने में लगा हुआ है। यह परतन्त्रता की बेड़ी जिस दिन दूर होगी वह दिन धन्य होगा।

सुबह हुआ। आपके पीहर वाले पहले से ही कुछ तैयारी करके बैठे थे। सब रीति-रिवाज पूरे किये गये। आप पीहर से विदा होने लगी उस समय सभी पीहर वाले लोग उपस्थित थे।

आपने सबके चरणों में पड़ कर अपने अब तक के अपराधों के लिये हाथ जोड़ते हुए क्षमा याचना की। सब लोग आपकी कोमल प्रकृति और उदारता को देख कर गद्गद् हो गये। विशेषत' फूलकुँवर बाई तो आपके इस क्षमा के याचना के दृश्य को देखकर एकदम अनमनी सी हो गई और कुछ कहना चाहती थीं पर कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वाणी ने साथ नहीं दिया। हाथ से ही आपको संकेतपूर्वक समझा दिया। और आशीर्वाद के साथ सब ने विदा किया।

आप वहाँ से अपनी ससुराल आईं। वहाँ फतहचन्दजी ने पहले से बड़ी बुद्धिमानी का काम कर रखा था। उन्होंने अपने घर की तमाम औरतों को अलग अलग कमरे में भेज दिया ताकि दीक्षा के लिये घर से प्रस्थान करते समय कोई अश्रुधारा बहा कर अमंगल न कर दे। उन्हें समझा भी रखा था कि कोई भी बाल वैरागिन बाई के सामने आँखों से आँसू न आने दे। आप के यथा समय पहुँचते ही सारी रस्में पूर्ण की गईं। आपने अपनी सासू जेठानी, ननन्द आदि सब के चरणों में पड़कर माफी माँगी और उनसे आशीर्वाद माँगी। सबने प्रसन्नता के साथ आपको आशीर्वाद दिया और सासू आदि ने बड़े ही नम्र शब्दों में कहा—'बेटी, स्वर्ग की सीढ़ियाँ धीरे धीरे चढ़ना। उत्तम कार्य करना। अपने कुल की प्रतिष्ठा का ध्यान रखना।' आपने सब को आश्वासन देते हुए प्रस्थान किया।

सारा सरंजाम पहले ही हो चुका था। सभी तरह का प्रबन्ध सरकार की ओर से था। दीक्षा-समारोह में सोजत जैन संघ के प्राय समस्त लोग उपस्थित थे। अजैन जनता भी काफी भाग ले रही थी। साथ में नगाड़ा निशान एवं तमाम लवाजमा भी था।

महासतियाँजी पहले से ही रामद्वार में ठहरी हुई थीं।

परिवनायिका के मन में भी अब गुरुनीजी के चरणों में पहुँचने की उमंग थी, मैदान जनता से खचाखच भरा हुआ था। जनसंख्या लगभग ७-८ हजार होगी। फिर मानव-मेदिनी उमड़ रही थी। विक्रम संवत् १६५० था, पौष कृष्णा त्रयोदशी का सूर्य ऊँचा चढ़ रहा था, ६ बजे थे। प्रकृति शान्त और सुन्दर थी।

आप ठीक समय गुरुनीजी के चरणों में पहुँची। सब को विधिवत् वन्दन किया। सारे आभूषण व रङ्ग बिरङ्गे कपड़े उतारे। मस्तक का मुण्डन कराया। और फिर चन्द्रमा की शुक्ल किरणों के समान श्वेत-वस्त्र पहन कर गुरुनीजी के सामने खड़ी हुई। महासती ने समस्त जन समुदाय को संबोधित करते हुए कहा

श्रोतागण, आज यह बहन मेरे पास दीक्षा ले रही है। जैन-दीक्षा एक दो दिन या वर्ष दो वर्ष का सौदा नहीं है। यह आजीवन का सौदा है। जैन-दीक्षा कोई सरल साधना भी नहीं। महान् कठोर साधना है। भारतवर्ष के दूसरे धर्मों की दीक्षा और जैन-दीक्षा में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसमें साधक को ५ महाव्रतों का पूर्णत: पालन करना पड़ता है। केशों का लुञ्चन कराना पड़ता है, नगे पैरों चलना पड़ता है। कड़ी से कड़ी शर्दी और गर्मी का भी परिमित वस्त्रों से सामना करना पड़ता है। वह भी सीधे सादे, जो इस समय पहने हुए हैं। भिक्षाचारी की विधि भी बड़ी कठिन है। यह वैरागिन करीब ३ साल से अपनी साधना करती आ रही है। अभी इसकी उम्र १६ साल की है। मेरे पास ज्ञानाभ्यास भी इसने काफी किया है और अब यह दीक्षा लेना चाहती है। इसकी आज्ञा इसके श्वेष्ठश्री भी फतह चन्दजी ने दे दी है। अच्छी तरह सोच समझ कर होशहवास के साथ ले रही है। क्या मैं इसे यह दीक्षा दूं? सारे संघ ने कहा— हाँ, महाराज! दीक्षा दीजिये! आपने भी पूछने पर अपनी स्वीकृति दे दी।

महासती श्री आनन्दकुमारीजी ने उसी समय 'करेमि भंते' का उच्चारण करके आपको दीक्षा दी। उस समय आपको महासती श्री लक्ष्मीकुमारीजी म० की शिष्या बनाई। महासतीजी श्री आनन्दकुमारीजी बड़ी भाग्यशालिनी थीं, वे इतनी निस्पृह थीं कि अपनी निश्राय में शिष्या करने का उन्होंने त्याग कर दिया था। अतः आपको उक्त महासतीजी की निश्राय में किया। दीक्षा विधि सानन्द सम्पन्न हुई। आप साध्वियों के बीच में आ बैठीं। सब लोग धन्य धन्य कहते हुए घर लौटे।

इस प्रकार हमारी चरित्रनायिका की चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण हुई। साधुपन लेकर आपने अपने को कृतकृत्य समझा आपके लिये मानव जीवन की सफलता का द्वार खुल गया। चरित्रनायिका खुद ही आनंद थी और अब आनन्दकुमारीजी महासती रूप आनन्द में मिल गई। आपको संयम क्या मिला, रंक को नवनिधियाँ मिल गई। सिर पर लम्बे अर्से से जो बोझ लदा था वह हल्का हो गया आपका हृदय संतुष्ट हुआ। अब आप महासती श्री आनन्दकुमारीजी के रूप में थीं। यहाँ से चरित्र नायिका के नये जीवन का प्रभात शुरू होता है।

प्रथम-परीक्षा

मुनि-जीवन परीक्षाओं का जीवन है। एक प्रकार से यों कहना चाहिए कि साधु का समूचा जीवन ही परीक्षामय है। परीषहों की सेना मुनियों पर बारबार आक्रमण करती रहती हैं, और जाँच करती है कि कौन साधु या साध्वी कैसा है? जो परीषहों आपत्तियों के बादल मण्डराने पर घबराता नहीं, अपनी वृत्ति को समता का बरसाती कोट पहन कर खराब नहीं होने देता, वही साधु धर्म का पालन अच्छी तरह कर सकता है।

हमारी चरितनायिका के दीक्षा लेने के बाद ही परीषह सेना ने आकर घेरा डाल दिया। वह परीक्षा लेना चाहती थी कि आप में कितना धैर्य है? दीक्षा के थोड़े दिन पहले ही काका जी ने जो प्रहार किया था, उस चोट का दर्द अभी तक था। आपका सारा शरीर जकड़ा हुआ था। दीक्षा लेने की उमंग में आप इस दर्द को भूल-सी गई थीं। पर अब वह अपना प्रभाव डाल रहा था। उस समय किसी के सामने आपने अपने दर्द की कहानी नहीं सुनाई। इस अभिप्राय से कि "शायद यह बात सुन कर अभी दीक्षा को रुकवा दें। पहले ही मुझ पर बहुत बोझ है, फिर दीक्षा आगे बढ़ा देने से तो मन में और खिन्नता बढ़ जायगी या उस समय आपके मस्तिष्क में साधु जीवन की गुरुता के विचार से भारीपन आ गया हो—यह भी संभव है।

दीक्षा लेने के बाद आप शहर के बाहर रामद्वारे में ही

ठहरीं। पौष का महीना था। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। मकान अन्दर से काफी खुला-सा और शहर के बाहर था, इसलिए दूसरे मकानों की ओट न होने के कारण ठंडी हवा के झोंके आ रहे थे। वे सारे शरीर में कँपकँपी पैदा कर रहे थे। दीक्षा लिए अभी एक दिन भी नहीं हुआ था। आत्मा बलवान् थी सही, पर शरीर में सुकुमारता थी। फिर भी अपने लक्ष्य पर अटल रहने वाली महासती श्री आनन्दकुमारीजी इस शीत-परीषह से घबराई नहीं। सोचने लगी—"यह तो संयमी जीवन है। न मालूम कितने उलटफेर आयेंगे? न जाने कितने परिषह मेरी परीक्षा लेने आयेंगे? ऐसे ही अवसरों पर साधु जीवन की परीक्षा होती है। मुझे यह सब सहर्ष सहन करना चाहिये।"

नव-दीक्षिता जानकर दूसरी साध्वियों ने आपको अपने वस्त्र ओढ़ा दिए। मगर आपने अपने कष्ट की शिकायत किसी से न की। इस प्रकार आप पहली परीक्षा में पास हुईं।

दूसरे ही दिन महासती श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी म० को यह मालूम हुआ कि आपके शरीर में चोट से काफी दर्द हो रहा है। हाथों में सूजन-सी है, तो उन्होंने साध्वियों से तैल मंगवा कर मालिश करवाई। दर्द धीरे धीरे मिट गया। नव दीक्षिता की सेवा करने में आप स बड़ी और भाग्यवती महासतीजी लगी हुई थी। आपने पहले तो उन्हें रोका पर बाद में उन्होंने समझाया कि "कष्ट के समय छोटे और बड़े का कोई भेद नहीं रहता। उस समय सेवा करना सभी का कर्तव्य हो जाता है। तुम नव-दीक्षिता हो, तुम्हें साथ साथ रह कर संयम की क्रियाएँ बताना, संयम की कठिनाइयों में सहन-शीलता आदि सिखाना हमारा कर्त्तव्य है। अतः इस समय सेवा लेने में तुम्हें तनिक भी संकोच न रखना चाहिए। छह महीने तक तो नवदीक्षित को काफी रियायतें शास्त्रों की ओर से भी मिलती हैं।"

इस प्रकार समझाने पर आपने अपना यथायोग्य उपचार करवाया। सात दिन तक रामद्वारे में ही विराजी थीं, और तब तक आपका शरीर काफी स्वस्थ हो चुका था।

एक नव दीक्षिता की इतनी विलक्षण सहन शीलता देख कर बड़ी दीर्घ-संयमिनी साध्वियाँ भी चकित रह गईं। आपकी गम्भीरता और दृढ़ता को देखकर आपकी गुरुनीजी श्री लक्ष्मी कुमारीजी म० बड़ा सन्तोष अनुभव कर रही थी। सर्राफ के हाथ में सच्चा सोना आजाने पर मन में आकर्षण पैदा कर ही देता है। आप जैसी खरी शिष्या को पाकर लक्ष्मीकुमारीजी म० भी काफी प्रभावित हुईं।

आप पर सभी सतियों का पूर्ण स्नेह था। महासती श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी तो आपको बड़ी शिक्षा पात्र समझतीं। गुदड़ी में छिपे इस लाल को पाकर कौन प्रसन्न नहीं होता? उन्होंने आपको पांच समिति, तीन गुप्ति व साधु जीवन की सात्त्विक चर्याओं की सुन्दर ढंग से शिक्षा दी। आप भी नम्र और विनय शील थीं अतः उनकी दी हुई शिक्षा को अमृत की तरह पी जातीं और मन ही मन उनका बड़ा उपकार मानती थी। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। शास्त्रीय विषयों की धारणा करने में आपकी मगज-शक्ति काफी काम करती थी। साथ में एकनिष्ठा और विनय-शीलता का भी मिश्रण था, अतः आपका ज्ञान दिन-दूना बढ़ने लगा। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि आपने पहले-पहल इधर तो लोच कराया और उधर दो थोकड़े कण्ठस्थ कर लिये।

मोमत से विहार करके रास्ते के गाँवों को पावन करती हुई साध्वी-मण्डली बगड़ी पहुँची। वहाँ सुप्रसिद्ध विदुषी आर्या प्रवर्तिनी श्री रत्नकुमारीजी महाराज उन दिनों विराजी रही थीं नव-दीक्षिता आनन्दकुमारीजी ने उनकी सेवा भक्ति बड़ी लगन से की। प्रवर्तिनीजी म० आपके ऊपर वैराग्यावस्था में आये हुए

कष्ट की कथा से अङ्कित पत्र अच्छी तरह पढ़ चुकी थी। आप नव-दीक्षिता आनन्दकुमारीजी का प्रसन्न चेहरा, शरीर की आकृति व योग्यता देख बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। कहा—धन्य हो तुम्हें काकाजी के द्वारा दिये हुए इतने कष्टों को सहन किया। तुम भविष्य में एक महासती बनोगी और सम्प्रदाय का नाम उज्ज्वल करोगी।" आपने अपनी आँखें नीची करली और हाथ जोड़ कर नम्रता के साथ खड़ी रहीं। बगड़ी में कुछ दिन रह कर आपने बिलाड़ा की ओर विहार किया। आपने अपने साध्वी-जीवन में प्रथम चातुर्मास अपनी सांसारिक-पक्ष के मांताजी के पीहर के ग्राम (मावी) बीलाड़ा में किया। आप अधिकतर अपने अध्ययन में ही लगी रहतीं। साथ ही संयमी जीवन के सारे काम भी करतीं। फिजूल बातें करना आपको प्रारम्भ से ही पसन्द न था। आप अक्सर मौन ही रहतीं। उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन का *'बहुयं मा य आलवे'* मानो आपके जीवन में पूर्णरूपेण उतर गया था। आपकी सांसारिक पक्ष की माताजी वगैरह बिलाड़ा में सेवा करने भी आईं, पर आपका हृदय अब संयम की ओर विशेष झुक गया था। आप उनसे भी विशेष बातें नहीं करती थीं और अपने कार्य में व्यस्त रहतीं।

बिलाड़ा-चातुर्मास में एक ब्राह्मण पण्डित आपको भक्ति भाव से पढ़ाने आते थे। उन्होंने आपको 'भक्तामर-स्तोत्र' के श्लोक कण्ठस्थ कराने प्रारम्भ किये। थोड़े ही दिनों बाद पण्डित जी ने देखा—'इनके यहाँ तो बड़े-बड़े धनिक भक्त आते हैं, व इनके चरणों में झुकते हैं और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, अतः मैं भी क्यों न इनके सामने अपने मेहनताने की माँग करूँ? इनके यहाँ एक ब्राह्मण पण्डित का क्या बोझ है? पण्डितजी ने लालच में पड़ कर यहाँ के धनाढ्य लोगों के सामने अपनी मांग रखी।

स्वार्थ भावना आने पर मनुष्य अपनी भक्ति को भी कोस

दूर रख देता है। वह कर्त्तव्य परायणता को बिल्कुल भूल जाता है और पण (पैसा) परायणता की वृत्ति अपना लेता है। उन पण्डितजी को वहाँ के धनिक और दूसरे लोगों से काफी वृत्ति मिलती थी, अपने बच्चों के जन्म से लेकर विवाह, मरण आदि तक उन्हीं से काम पड़ता था। फिर भी उन्हें एक सतीजी म० को मुफ्त में पढ़ाना खटका। माध्वियों को पण्डितजी की यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने आपका पढ़ाना बन्द करा दिया। भक्तामर स्तोत्र के १० श्लोक कण्ठस्थ किए थे वे ही रह गये। फिर तो महासतीजी श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की कृपा हुई। उन्होंने चातुर्मास में आपको करीब १५ थोकड़े सिखलाये। दशवैकालिक-सूत्र नन्दीसूत्र और सुख विपाक इन तीन शास्त्रों का अध्ययन कराया। आपकी कुशाग्र-मति ने झटपट इन शास्त्रों को ग्रहण कर लिया।

इस तरह साधुता की प्रारम्भिक दशा में ही आपका जीवन उज्ज्वल प्रतीत होने लगा था। भारत के देहात की एक कहावत है 'होनहार विरवान के होत चीकने पात।' नव-दीक्षिता साध्वी ने इस उक्ति को पिछला चातुर्मास में ही पूर्णरूपेण चरितार्थ कर दिखाया। साध्वियों और यहाँ के श्रावक-श्राविकाओं सभी को आपकी आत्म चेतना ने प्रभावित कर दिखाया।

१९

विनय-मूर्ति
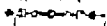
जीवन-निर्माण में यात्रा का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। देशाटन शिक्षा का प्रधान अङ्ग माना गया है। केवल लम्बी और साहसपूर्ण यात्राओं के कारण बहुत से मनुष्यों का नाम इतिहास में अमर है। उनकी यात्राओं का वर्णन साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है।

जैन-संस्कृति में यात्रा को आध्यात्मिकता का रूप दिया गया है। जैन भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए धर्म प्रचार का और जन-जीवन को ऊँचा बनाने का प्रधान-साधन यात्रा है। इसे जैन-परिभाषा में विहार करते हैं। उग्र विहारी होना जैन-श्रमण और श्रमणियों का प्रधान कर्त्तव्य है। चातुर्मास के अतिरिक्त मास से अधिक साधुओं के लिए और दो मास से अधिक साध्वियों के लिए एक जगह बिना किसी कारण के ठहरना शास्त्रों में निषिद्ध है। विहार करने से ही संयम और स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है। विशेषावश्यक-भाष्य में लिखा है कि साधु को एक ही एक देश में विचरने वाला नहीं होना चाहिए। उसे किसी एक ही देश या नगर, ग्राम में आसक्ति रख कर बैठना नहीं चाहिए।

यात्रा का सब से बड़ा लाभ आध्यात्मिक-विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान पैदल भ्रमण करने से अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ सामने आती हैं। कहीं पहाड़ आते हैं, कहीं कल कल करती हुई नदियाँ प्रवाहित होती हैं। कहीं हरे भरे खेत और

कहीं बीहड़ जंगल। कहीं सघन वृक्षावली और कहीं सूखा रेगिस्तान। कहीं भद्रामक्ति के भार से झुके हुए भद्र ग्रामीण स्वागत के लिए उद्यत मिलते हैं, कहीं क्रूरकर्मा डाकू लूटने के लिये तैयार रहते हैं। कहीं सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों का सामना करना पड़ता है तो कहीं क्रीड़ा करते हुए भोलेभाले मृग दृष्टिगोचर होते हैं॥ यह सब देखकर प्रकृति का विशाल अध्ययन किया जा सकता है, और समभाव की वृत्ति रखने का अभ्यास बढ़ता है।

बिलाड़ा चातुर्मास से साध्वीमंडली विहार करती हुई, रास्ते में गाँवों में धर्म की भावनाएँ जगाती हुई जावरा पहुँची। चरितनायिका विहार करती हुई प्रकृति का बड़ी बारीकी से अवलोकन करती थीं। उससे मिलने वाली शिक्षा का विचार किया करतीं। कहीं फलों से लदे हुए सुन्दर वृक्ष मिलते तो आपके मन में विचार होता—अहो! यह वृक्ष फलों के भार से झुक गया है, मनुष्य को भी ऐसी वृत्ति अपनानी चाहिए। जब उसके पास ज्ञान, व चारित्र की सामग्री काफी हो जाय तो उसे नम्र बनना चाहिये, विनयी बनना चाहिए। वृक्षों को फल सम्पत्ति प्राप्त हुई है लेकिन वे इनका उपभोग स्वयं नहीं करते, किन्तु दूसरों की भूख और प्यास मिटा कर तृप्ति करते हैं।

कहीं कहीं देहातों में जाते तो आपको ग्रामीण-जनता का विनय और भव्य भावनाओं से परिपूर्ण हृदय देखने को मिलता। आप विचार करतीं—इनके मन में कितनी श्रद्धा है? कैसी सुन्दर भावना है। सचमुच ये लोग भाग्यशाली हैं। मेरा हृदय भी विनय और श्रद्धा से भर जाय तो कितना अच्छा हो?

जावरा पधारीं। जावरा मालवा के क्षेत्रों में एक विशिष्ट क्षेत्र है। यहाँ नवाबी राज्य था। फिर भी जैनियों के यहाँ काफी

पर हैं। आपरा संघ में साध्वीमंडली का आगमन सुनकर हर्ष का सागर उमड़ने लगा। नव-दीक्षिता सती को देखकर लोगों की उत्सुकता का पार न रहा। आपरा के संघ ने आपका काफी स्वागत किया। यहाँ चरित्रनायिका की दादी गुरुजी वयोवृद्धा श्री चम्पाजी महासतीजी म० वृद्धावस्था के कारण कई महीनों से विराम रही थीं। चरित्रनायिका साध्वीमंडली में सब से छोटी थीं। चरित्रनायिका की भद्रता, विनयभाव एवं सेवा-वृत्ति देख कर सभी साध्वियों ने प्रसन्नता प्रगट की। वयोवृद्ध महासतीजी चम्पाजी म० तो आपकी विलक्षण ज्ञान पिपासा, और भद्रा शीलता देख कर बहुत ही आकर्षित हुई।

आपकी प्रकृति में विनय की मात्रा बहुत अधिक थी। एक दिन किन्हीं महासतीजी की दवा के लिये साँभर का सींग घिसना था। आपको कहा गया। आप किसी कार्य के लिए 'ना' कहना तो सीखी ही नहीं थीं। शरीर चाहे स्वस्थ्य हो या अस्वस्थ, हर एक काम में जुट पड़ती थीं। आहार लाना हो, पानी मंगाना हो, पगचंपी करना हो, यहाँ तक कि बड़ी-नीति परठाने आदि का काम भी होता तो, हमारी चरित्रनायिका एक धाय माता की तरह अपने आपको सेवा में हर समय तैयार रखती थी। चरित्रनायिका की वाणी में अपूर्व माधुर्य था। आप नपी-तुली भाषा में बोलतीं, और कभी मर्यादा से बाहर नहीं होती थीं। यही कारण था कि आपने विनय का मंत्र पाकर अपने को ऊँचा उठाया। आपने अपने विनयशील स्वभाव के अनुसार वह साँभर का सींग घिसना शुरू किया। आपने पहले कभी घिसा था नहीं और न तरकीब जानती थीं। फिर भी घिसती गई। हाथों में छाले पड़ गये, गाँठे-सी हो गई। फिर भी आपका घिसना न छूटा। धीरे धीरे घिस रही थीं। इतने में किसी साध्वीजी ने आकर आप से पूछा कि क्या बात है? मालूम होता है घिसते

घिसते हाथों में छाले पड़ गये हैं तुमने कहा क्यों नहीं, हम घिस लेतीं । अब छोड़ दो ।

यह सुन कर आप मौन हो गई । कुछ भी जबाब न दिया और उन सतीजी महाराज के ज्यादा कहने पर घिसना छोड़ा ।

आपका यह विनय भाव, आज की नव-दीक्षित साध्वियों के लिये अनुकरणीय है । विनय के अभाव में कोई भी साधक ज्ञान का रसास्वादन नहीं कर सकता । पानी का स्वच्छ सरोवर हो, और यदि प्यासा यात्री पानी पीने के लिये झुके नहीं वह तना हुआ ही खड़ा रहे तो कभी प्यास बुझ सकती है ? नहीं, तीन काल में भी नहीं । इसी प्रकार ज्ञानी गुरुदेव ज्ञान के सरोवर हैं । उनके श्रीचरणों में ज्ञान की प्यास बुझानी हो, ज्ञान—जल प्राप्त करना हो तो पूर्णत विनयभाव से झुक कर रहना चाहिए । अहंकारी शिष्य कभी सच्चा-ज्ञान नहीं पासकता । आज के साधक को यदि योग्य बनना हो तो 'मूलं धम्मस्स विणओ' का मूल मंत्र अपनाना चाहिये ।

मनुष्य की महत्ता इसी में है कि वह जहाँ कहीं, जिस किसी के पास रहे, अपने दिल को घुला मिला दे । उसके ऊपर अपनी विनय शीलता का प्रभाव डाले । अपना व्यक्तित्व चढ़ावे । हमारी चरितनायिका भी इन्हीं संस्कारों में पली थीं । उन्होंने अपने अहंकार और आलस्य को इतनी दूर फैंक दिया था कि वह कभी पास में न फटकता । बड़ी बुढ़ी व नई उम्र की सभी साध्वियाँ आपकी प्रकृति से प्रसन्न रहतीं । धन्य है आपकी विनय की परिणति को !!

आचार्य श्री का आशीर्वाद

जिन दिनों चरितनायिका ने दीक्षा ली, उस समय पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय का नेतृत्व जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ उदयसागरजी महाराज के सुयोग्य कर कमलों में था। फिर श्रद्धेय पूज्य श्रीचौथमलजी महाराज आपके स्वर्गारोहण होने के बाद आचार्य-पद पर विराजमान हुए थे।

मारवाड़ के स्थानकवासी जैन सम्प्रदायों में पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज का सम्प्रदाय सब से ज्यादा विख्यात है। पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज बड़े ही तपोधन और क्रियाकांडी आचार्य हो गए हैं। सम्प्रदाय का गौरव, और विभूति, एक प्रकार से उन्हीं की तप साधना का फल है। क्षीण और निस्तेज होते हुए कोटा के स्थानकवासी सम्प्रदाय में आपके द्वारा ही नवजीवन का संचार हुआ था।

श्रद्धेय पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के दिवंगत होने के बाद सं० १६१७ में पूज्य श्री शिवलालजी महाराज ने आचार्य पद का भार सम्भाला। आप भी बड़े विद्वान्, तपोमूर्ति और समर्थ उपदेशक थे। तत्पश्चात् वि० सं० १६३३ में समर्थ आचार्य पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज इस सम्प्रदाय के अधिनायक बने। आप बड़ उच्चचारित्री थे, सूत्रों की गहन से गहन बात को समझने में आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी।

हमारी चरितनायिका को आपके सर्व प्रथम दर्शन रत

ग्राम में हुए। खाचरा से श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी महाराज आदि सतियों के साथ चरितनायिका भी रतलाम आई। रतलाम उस समय तीर्थ-स्थान बना हुआ था। पवित्र-पुरुष जिस स्थान को अपने चरण कमलों द्वारा स्पर्श करते हैं, वही स्थान तीर्थभूमि कहलाता है। तीर्थ क्षेत्र में पवित्र होने के लिये और अपने अन्तःकरण के मैल को धोने के लिये हमारी चरित नायिका भी पधारीं।

चरितनायिका आचार्यश्री के दर्शन पाकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उनकी गम्भीर मुख मुद्रा उनका गम्भीर शास्त्रीयज्ञान और प्रभावोत्पादक वाणी चरितनायिका के लिए अनुपम आकर्षण पैदा करने लगी। उनका दर्शन पाकर आप अपने को भाग्य शालिनी समझने लगीं। आप ने उन महात्मापुरुषों के निकट सम्पर्क में आकर उनका महान् अनुग्रह प्राप्त कर लिया था। उनकी दीपदृष्टि ने एक लघुसाध्वी में विलक्षण प्रकाश जग मगाता हुआ पाया। चरितनायिका की विनय भावना, शान्त स्वभाव, तीव्रबुद्धि, और विवेकशीलता को देख आचार्य श्री ने बड़ा हर्ष प्रगट किया और बड़ी आनन्दकुमारीजी म० से आपका परिचय पूछा। उन्होंने कहा—गुरुवर्य! यह सोजत के प्रसिद्ध सद्गृहस्थ श्रीप्रभुदानजी सिंघी की पौत्री है, इसकी दीक्षा बड़े कष्ट सहने के बाद हुई है।

पूज्य श्री ने कहा—"तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हें एक योग्य शिष्या मिली है। देखना, इसे अच्छी तरह से सिखाना पढ़ाना और योग्य बनाना। यह होनहार विदुषी है और भविष्य में सम्प्रदाय की कीर्ति में चार चाँद लगा देगी।"

आचार्यश्री की यह आशा आपके लिए आशीर्वाद बन गई। पूज्यश्री ने हमारी चरितनायिका के सम्बन्ध में जो सुन हरी आशा बाँधी थी वह आशीर्वाद ही नहीं एक बड़ी जिम्मेदारी

बन गईं। पूज्यश्री का यह आशीर्वाद आपने थोड़े ही वर्षों में सफल भी कर दिखाया। आपकी निरन्तर प्रगति होती रही और थोड़े ही वर्षों में आप चमक उठीं।

आचार्यश्री का यह आशीर्वाद पाकर आप अहंकार से उन्मत्त नहीं हुईं, प्रत्युत कर्त्तव्य की गुरुता जानकर और अधिक विनम्र हो गईं।

बड़ों का सहजभाव से दिया हुआ आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता। यही कारण है कि आज पूज्यश्री के दिये हुए आशीर्वाद का फल हम देख रहे हैं।

आपको आचार्यश्री के दिये हुए आशीर्वाद की अब भी कभी याद आ जाती है तो कह उठती हैं—"उनकी तो मुझ पर महान कृपा थी। उन्होंने मुझ जैसी छोटी साध्वी पर भी महती प्रेमवृष्टि की है और मुझे योग्य बनाने में जो प्रयत्न किया है। उसे भूल नहीं सकती।"

कुछ दिन रतलाम ठहर कर आप जावरौद आदि क्षेत्रों को पवित्र करती हुईं, जावरा वापिस चम्पाजी म० की सेवा में पधारीं। आपका चातुर्मास जावरा ही तय हो चुका था। आपकी गुरुणीजी श्रीलक्ष्मीकुमारीजी म० को दूसरी जगह चातुर्मास के लिये भेज दिया गया। आपका सं० १६६१ का चातुर्मास जावरा हो गया। चातुर्मास में लोगों का उत्साह काफी रहा। बहनों में भी धर्मध्यान का ठाठ लग गया था। आपके सामने दो कार्य मुख्य थे—सेवा और अध्ययन। वयोवृद्धा श्री चम्पाजी म० की सेवा करती सो करती ही थीं, इसके अलावा दूसरी सतियों की सेवा की ओर भी आपका लक्ष्य काफी था। सेवा से बचा हुआ समय अधिकांश अध्ययन में बितातीं। महासतीजी श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी आपको शास्त्रों का अध्ययन करातीं। पर दैवयोग से अचानक ही आपके अध्ययन में विघ्न आ पहुँचा।

महासतीजी बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की तबियत खराब हो गई। उन्हें मियादीबुखार आने लगा। पानीझरा ने अपना उग्ररूप धारण कर लिया था। इस समय आपने दत्तचित्त होकर उनकी सेवा की। उनके छोटे से छोटे काम से लगाकर बड़ा से बड़ा काम आप करतीं। आपकी सेवा-वृत्ति देखकर आचार्य का संघ आपकी काफी प्रशंसा करता था। उन्हें आप की ओर से आशा बन्ध गई थी कि यह एक उज्ज्वल-मूर्ति सती होगी।

आपकी सेवा वृत्ति की प्रशंसा बालाजी नामकी एक सती जी को असह्य मालूम पड़ी। यद्यपि बालाजी साध्वी अत्यन्त बुद्धिमती थी फिर भी उनकी प्रकृति में कुछ उग्रता थी। उन्होंने आपके ऊपर कई आरोप लगाने के प्रयत्न भी किये पर सब निष्फल हुआ। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' यह भारतीय ऋषियों की उद्घोषणा है। विजय हमेशा सत्य की हुआ करती है। असत्य के पैर कच्चे होते हैं, वह ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। बाला जी के मन में पहले आप के प्रति कुछ डाह सी पैदा हो गई परन्तु आपकी शान्ति और सच्चाई के सामने वह ठहरी नहीं। जब आपके सद्व्यवहार से बालाजी सती का हृदय बदल गया, तब उन्होंने एक दिन समस्त साध्वियों के सामने कहा—देखिये ! मैंने आप समस्त साध्वियों के जीवन को टटोला है। आप में कितनी ही तो अत्यन्त वृद्धा हैं, कितनीक युवती हैं, परन्तु यह जो छोटी आनन्दकुमारीजी है यह दोनों में मिलने वाली है। यह दोनों में अपनी प्रकृति को मिलाने वाली है। मैं कहती हूँ, यही तुम्हारी सम्प्रदाय की नाक बन कर रहेगी। यही तुम्हारे सम्प्रदाय में सूर्य की तरह चमकेगी। यही तुम्हारे सम्प्रदाय का नाम उज्ज्वल करेगी।'

सती बालाजी ने तो आवेश में आकर यह कहा था, परन्तु चरितनायिका के लिये उनका आवेश वरदान रूप सिद्ध

हुआ। उनकी कोपयुक्त-वाणी भी सच्ची सिद्ध हुई और परित-नायिका आज सम्प्रदाय का मुख उज्ज्वल ही कर रही हैं।

परितनायिका ने भी मन, वाणा की सती के यह वचन सुने किन्तु सुनकर अपने भाग्य को कोसा नहीं वरम् कहा—तथास्तु, आपकी वाणी सफल हो। आपके आशीर्वाद से मेरे अन्दर वह शक्ति आये।'

संसार में कई लोग तो अपने लिए अच्छी बात किसी के मुंह से सुनकर कहने लगते हैं— 'हमारे भाग्य में यह बात कहाँ लिखी है? हम तो भाग्यहीन हैं, हमारे अन्दर यह गुण कैसे हो सकता है?" परन्तु जो मनस्वीपुरुष उच्च-प्रकृति के होते हैं वे अपने लिए साधारण मनुष्य द्वारा कही हुई अच्छी बात को स्वीकार कर लेते हैं और कहते हैं—"आपकी जबान सही हो, ऐसा ही बनूं।" परितनायिका किसी की अच्छी बात को ठुकराती नहीं थी आपकी प्रकृति तो ऐसी थी कि कोई बुरी बात कह देता तो भी सुधार लेतीं और उसे उपकारी मानतीं। किसी के बिगड़े हुए काम को सुधारने का गुण आपके जीवन में उतर गया था। एक नीतिकार ने कहा है—

"उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधु स साधुः सद्भिरुच्यते॥"

अर्थात्—उपकारियों पर जो सज्जनता दिखलाता है, उसकी साधुता (सज्जनता) में क्या विशेषता है। सत्पुरुष अपकारियों पर भी सज्जनता रखने वाले को सज्जन कहते हैं।

आपकी वृत्ति प्रारम्भ से ऐसी ही थी। आप अपकार करने वाले पर भी सज्जनता प्रदर्शित करती थीं।

बावरा-चातुर्मास में ही आपने ८ दिन की तपस्या (अठाइ) की। लम्बी तपस्या में मन को काफी मारना पड़ता है, जैनधर्म में तपस्या को बड़ा महत्त्व दिया गया है। प्राचीन समय

में भी बड़े २ तपस्वी हो गये हैं। काली, महाकाली, कृष्णा जैसी बड़ी २ राजरानियों ने जैनधर्म में दीक्षित होकर लम्बी-लम्बी तपस्याएँ की थीं। आज भी तीन-तीन महीने तक की तपस्या करने वाले मौजूद हैं। तपस्या से शरीर के सारे अवयव साफ हो जाते हैं, आत्मबल भी बढ़ता है। अतः शारीरिक मानसिक और धार्मिक तीनों ही दृष्टियों से तपस्या हितकर है।

आपकी अठाई बड़ी शान्ति से हुई। पारणे के दिन आपको बड़ी साध्वियें बहुत दूर शौच के लिए ले गईं। चली तो गईं। पर आखिर शरीर तो शरीर ही है, वह तो अपनी मर्यादा तक ही काम करता है। उससे ज्यादा काम लेने पर कभी तो सारा ही काम अटका देता है, और टस से मस नहीं होता।

जंगल से वापिस लौटते समय पैरों ने चलने से इन्कार कर दिया। पैरों में गाँठें-सी होगई। तो भी आप साहस करके किसी तरह से धीरे-धीरे चलने लगीं। मुँह से आपने यह नहीं कहा कि—आप लोग ठहरिये, मैं आरही हूँ, इसलिए कि कहीं आपके दूसरे कार्यों में हर्ज न हो जाय या मन को किसी तरह का कष्ट न हो। दूसरी आर्याजी म० बहुत आगे चली गईं। श्रीचंपाजी म० ने पीछे मुड़ कर देखा कि आप धीरे धीरे आ रही हैं। उन्होंने पहले तो अनुमान किया कि किसी कारण से देर हो गई होगी। बाद में पारणे की याद आई तो उन्होंने कहा—"अब वहीं ठहर जाओ, मुझे माफ करना, तुम्हारे पारणे की बिल्कुल याद नहीं रही। पहले तुम मना कर देती तो मैं तुम्हें इतनी दूर क्यों लाती?", चरितनायिका किसी तरह आवेश में नहीं आई। आपने शान्त मुद्रा से नम्रता-पूर्वक कहा—वहन! मैंने ही आप को कष्ट दिया उसके लिए मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं साथ में नहीं आती तो आपको इतना कष्ट क्यों होता? फिर वहाँ कुछ देर विश्रान्ति करने के बाद धीरे धीरे आप साध्वियों के साथ

उपाश्रय आई।

नम्रता से किसी बात का उत्तर देना यह गुण आपके जीवन में हम अधिक पाते हैं। आपकी नम्रता से सभी साध्वियाँ आप पर प्रसन्न रहती थीं। चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ।

जावरा का चातुर्मास व्यतीत करके चरितनायिका आस-पास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करती हुई जावद पहुँची। जावद पुराना शहर है और मालवा और मेवाड़ का सीमावर्ती क्षेत्र है। यहाँ की बोली मालवा और मेवाड़ से कुछ भिन्नता रखती है। जावद को ग्राम तो नहीं कह सकते, यह शहर है। बोहरा मुसलमानों के काफी घर हैं। जैनियों की इस शहर में काफी अच्छी धाक है। बड़े-बड़े आचार्यों के चातुर्मास यहाँ हुए हैं। वर्तमान पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज की युवाचार्य पदवी का महोत्सव करने का सौभाग्य जावद को ही मिला था। जावद में सिंहेली लोग भी जैन मुनियों से खासा अच्छा सम्पर्क रखते हैं, भाव भक्ति रखते हैं और उपदेश भी सुनते हैं। जावद में उस समय पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के भावी पट्टधर आचार्य श्री चौथमलजी महाराज विराजित थे। उनका गौरवर्ण विशाल भाल, सौम्य आकृति बड़ी ही प्रभावोत्पादक थी। चरितनायिका ने आपके दर्शन कर नेत्र सफल किये। अपना अहोभाग्य समझा, आचार्य श्री चरितनायिका की विचक्षणता, सेवावृत्ति, विनय-भाव आदि गुणों से बड़े प्रभावित हुए। कहा है—

'गुणा प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः।'

मनुष्य अपने गुणों से प्रिय बनता है। परिचय से नहीं। गुणों का हमी हर कहीं आदर पाता है। चरितनायिका गुणों के क्षेत्र में अलौकिक थीं ही।

जावद में प्रतापगढ़ के कई भाई उपस्थित थे। उन्होंने आपके विषय में पूज्यश्री के मुख से आशाजनक बातें सुनकर

निश्चय किया कि इनका चातुर्मास इस साल अपने यहाँ ही कराना चाहिये। प्रतापगढ़-संघ की बार-बार विनती होती रही। आखिरकार बड़ी साध्वीजी श्रीआनन्दकुमारीजी म० के साथ आपने प्रतापगढ़ में चातुर्मास किया। जनता में धर्म-ध्यान की श्रद्धा तीव्र-गति पर थी। संघ के लोगों की एकता सराहनीय थी, आपस में बड़ा प्रेम था। आजकल के समान अपनी अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग नहीं पकाई जाती थी। एक दूसरे का सदा सम्मान करते थे। दुर्भाग्य से आज वह युग कहाँ है ! आज जहाँ देखो वहाँ संघर्ष है, कलह है। छोटे बड़े की कोई मान-मर्यादा नहीं, हर आदमी नेता बनने की धुन में है। सब लोग सेनापति बनना चाहते हों तब भला सिपाही कौन बने ?

हाँ, तो प्रतापगढ़ का चातुर्मास है। यहाँ के लोगों के कर्ण कुहरों में चरितनायिका के गुणों ने स्थान पा लिया था। आप के गुणों की पहुँच संघ के लोगों के हृदयतक हो गई थी। लोगों ने आपके गुणों से आकृष्ट होकर आपकी वाणी सुनने की इच्छा प्रगट की। आप को व्याख्यान देने का अत्याग्रह किया। आप कहने लगीं—मैं तो एक नव-दीक्षिता छोटी आर्या हूँ। आप लोग महाभाग्य शालिनी बड़ी आर्याजी म० का व्याख्यान सुनें। पर वे लोग किसी तरह मानने को तैयार न हुए। अन्ततोगत्वा आपने व्याख्यान देना स्वीकार किया।

आपके प्रभावशाली और ओजस्वी व्याख्यानों को सुन कर विशाल मानव मेदिनी एकत्रित होने लगी। श्रोताओं पर अपनी वाणी का असर डालने की शक्ति आप में उस समय भी काफी थी। चरितनायिका क भजनों और धर्म-कथाओं क संक्षिप्त प्रवचनों में ही भविष्य की एक विशिष्ट प्रवक्त्री के चिह्न स्पष्टत दीखने लगे थे। आपके मु ह से चरित-भाग सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती। उन्हें आपकी वाणी में काफी रस आता।

उपाश्रय आई ।

नम्रता से किसी बात का उत्तर देना यह गुण आपके जीवन में हम अधिक पाते हैं । आपकी नम्रता से सभी साध्वियां आप पर प्रसन्न रहती थीं । चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ ।

जावरा का चातुर्मास व्यतीत करके चरितनायिका आस-पास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करती हुई जावद पहुँची । जावद पुराना शहर है और मालवा और मेवाड़ का सीमावर्ती क्षेत्र है। यहाँ की बोली मालवा और मेवाड़ से कुछ मिलता रखती है। जावद का नाम तो नहीं कह सकते, यह शहर है । बोहरों मुसलमानों के काफी घर हैं । जैनियों की इस शहर में काफी अच्छी धाक है । बड़े-बड़े आचार्यों के चातुर्मास यहाँ हुए हैं । वर्तमान पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज की युवाचार्य पदवी का महोत्सव करने का सौभाग्य जावद को ही मिला था । जावद में हिंदू तेली लोग भी जैन-मुनियों से खासा अच्छा सम्पर्क रखते हैं, भाव भक्ति रखते हैं और उपदेश भी सुनते हैं । जावद में उस समय पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के भावी पट्टधर आचार्य श्री चौथमलजी महाराज विराजित थे। उनका गौरवर्ण विशाल भाल, सौम्य आकृति बड़ी ही प्रभावोत्पादक थी । चरितनायिका ने आपके दर्शन कर नेत्र सफल किये । अपना अहोभाग्य समझा, आचार्य श्री चरितनायिका की विचक्षणता, सेवावृत्ति, विनय भाव आदि गुणों से बड़े प्रभावित हुए । कहा है—

'गुणा प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तव ।'

मनुष्य अपने गुणों से प्रिय बनता है । परिचय से नहीं । गुणों का धनी हर कहीं आदर पाता है । चरितनायिका गुणों के क्षेत्र में अलौकिक थीं ही ॥

जावद में प्रतापगढ़ के कई भाई उपस्थित थे । उन्होंने आपके विषय में पूज्यश्री के मुख से आशाजनक बातें सुनकर

निश्चय किया कि इनका चातुर्मास इस साल अपने यहाँ ही कराना चाहिये। प्रतापगढ़-संघ की बार-बार विनती होती रही। आखिरकार बड़ी साध्वीजी श्रीआनन्दकुमारीजी म० के साथ आपने प्रतापगढ़ में चातुर्मास किया। जनता में धर्म-ध्यान की बड़ा तीव्र-गति पर थी। संघ के लोगों की एकता सराहनीय थी, आपस में बड़ा प्रेम था। आजकल के समान अपनी-अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग नहीं पकाई जाती थी। एक दूसरे का सदा सम्मान करते थे। दुर्भाग्य से आज वह युग कहाँ है। आज जहाँ देखो वहाँ संघर्ष है, कलह है। छोटे बड़े की कोई मान-मर्यादा नहीं, हर आदमी नेता बनने की धुन में है। सब लोग सेनापति बनना चाहते हों तब भला सिपाही कौन बने ?

हाँ, तो प्रतापगढ़ का चातुर्मास है। यहाँ के लोगों के कर्ण कुहरों में चरितनायिका के गुणों ने स्थान पा लिया था। आप के गुणों की पहुँच संघ के लोगों के हृदयतल हो गई थी। लोगों ने आपके गुणों से आकृष्ट होकर आपकी वाणी सुनने की इच्छा प्रगट की। आप को व्याख्यान देने का अत्याग्रह किया। आप कहने लगीं—मैं तो एक नव-दीक्षिता छोटी आर्या हूँ। आप लोग महाभाग्य शालिनी बड़ी आर्याजी म० का व्याख्यान सुनें। पर वे लोग किसी तरह मानने को तैयार न हुए। अन्ततोगत्वा आपने व्याख्यान देना स्वीकार किया।

आपके प्रभावशाली और ओजस्वी व्याख्यानों को सुन कर विशाल मानव-मेदिनी एकत्रित होने लगी। श्रोताओं पर अपनी वाणी का असर डालने की शक्ति आप में उस समय भी काफी थी। चरितनायिका के भजनों और धर्म-कथाओं के संक्षिप्त प्रवचनों में ही भविष्य की एक विशिष्ट प्रवक्त्री के चिह्न स्पष्टत दीखने लगे थे। आपके मुँह से चरित्र-भाग सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती। उन्हें आपकी वाणी में काफी रस आता।

उपाश्रय आईं।

नम्रता से किसी बात का उत्तर देना यह गुण आप जीवन में इस अधिक पाते हैं। आपकी नम्रता से सभी साध्वियाँ आप पर प्रसन्न रहती थीं। चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ।

ब्यावरा का चातुर्मास व्यतीत करके चरितनायिका आस-पास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करती हुई जावद पहुँची। जावद पुराना शहर है और मालवा और मेवाड़ का सीमावर्ती क्षेत्र है। यहाँ की बोली मालवा और मेवाड़ से कुछ भिन्नता रखती है। जावद को मालवा नहीं कह सकते, यह शहर है। बोहरों मुसलमानों के काफी घर हैं। जैनियों की इस शहर में काफी अच्छी धाक है। बड़े-बड़े आचार्यों के चातुर्मास यहाँ हुए हैं। वर्तमान पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज की युवाचार्य पदवी का महोत्सव करने का सौभाग्य जावद को ही मिला था। जावद में हिंदू तेली लोग भी जैन-मुनियों से खासा अच्छा सम्पर्क रखते हैं, भाव भक्ति रखते हैं और उपदेश भी सुनते हैं। जावद में उस समय पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के भावी पट्टधर आचार्य श्री चौथमलजी महाराज विराजित थे। उनका गौरवर्ण विशाल भाल, सौम्य आकृति बड़ी ही प्रभावोत्पादक थी। चरितनायिका ने आपके दर्शन कर नेत्र सफल किये। अपना अहोभाग्य समझा, आचार्य श्री चरितनायिका की विचक्षणता, सदाशुचि, विनय-भाव आदि गुणों से बड़े प्रभावित हुए। कहा है—

'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः।'

मनुष्य अपने गुणों से प्रिय बनता है। परिचय से नहीं। गुणों का धनी हर कहीं आदर पाता है। चरितनायिका गुणों के क्षेत्र में अलौकिक थीं ही।

जावद में प्रतापगढ़ के कई भाई उपस्थित थे। उन्होंने आपके विषय में पूज्यश्री के मुख से आशाजनक बातें सुनकर

जन्म-भूमि की ओर

चरितनायिका का संवत् १९५५ का चातुर्मास प्रतापगढ़ में ही श्रीमती यशोवृद्धा आर्याजी चौथाजी म० की सेवा में हुआ। प्रतापगढ़-संघ आपके सदुपदेशों से काफी परिचित था। अत आप जैसी उदीयमान महासती को उन्होंने बड़ी उत्सुकता से देखा। इस बार भी आपका उपदेश सुनने के लिए काफी भीड़ इकट्ठी हो जाती। पूर्व जन्म के संस्कार कहिये या ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम कहिए, हमारी चरितनायिका का विकास दिन दूना रात चौगुना होता गया। चातुर्मास उठाकर सीधे जावरा पधारीं। जावरा-संघ में आपकी सेवा-वृत्ति की छाप अङ्कित थी ही। महासतीजी चम्पाजी आदि सब आपको पाकर निहाल हो गई थीं।

एक दिन की बात है कि महासतीजी श्रीचम्पाजी म० ने आप को किसी काम के लिये उपालम्भ दिया। आपने उसे मीठे शरबत की तरह पी लिया। हृदय को कठोर तो लगा पर कड़वी दवा की तरह मन को समझा कर आप हजम कर गई। बाद में चम्पाजी म० को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने इसे इतने कठोर शब्द कहे तो भी यह चुपचाप सहन कर गई, पर मुझे तो सोचना चाहिये था। कठोर शब्द बाण की तरह चुभने वाले होते हैं। साधारण आदमी होता तो शायद ही सहन करता। यह सोचकर आप चरितनायिका से कहने लगीं—देख, अमुक दिन मैंने तुम्हें बड़ा

कहने वाले कहते हैं—चातुर्मास में इतना आनन्द कभी नहीं आया। सारा चातुर्मास धर्मभावना का केन्द्र बना रहा।

चातुर्मास समाप्त होने के बाद आपको विहार कराते समय जनता की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। विहार में जनसंख्या काफी थी। वहाँ के लोगों को सान्त्वना देकर बड़े हर्ष के साथ आपने विदाई ली। और चम्पाजी म० की सेवा में वापिस साध्वीमण्डली आवरा पधारीं। वहाँ से क्रमशः भ्रमण करती हुई आप भिनोता पहुँची। यहाँ के लोगों की चातुर्मास के लिए अत्यधिक विनती व उपकार देखकर आपने सं० १९९४ का चातुर्मास भिनोता में ही बिताया। चातुर्मास में गाँव के भाई बहनों ने काफी धर्म ध्यान किया। चौमासा सानन्द समाप्त हुआ।

चरितनायिका—'अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा। मैं प्रयत्न करूँगी।' दूसरे ही दिन चरितनायिका ने भी चम्पाजी म० के आगे इस बात का जिक्र किया और कहा—अगर आपकी सेवा में किसी तरह का हर्ज न पड़ता हो और आपकी आज्ञा हो तो पूजनीय आनन्दकुमारीजी म० मुझे अपनी जन्मभूमि—सोजत की ओर ले जाना चाहती है।'

चम्पाजी म०—'क्या तुम्हारी भी इच्छा है ?'

चरितनायिका—हाँ, है तो सही। पर इतने दिन आप से कहते मुझे संकोच हो रहा था। अब आपने पूछ ही लिया तो मैंने अपने हृदय की बात खोल कर आपके सामने रख दी है।

चरितनायिका की विनय शीलता और सरलता ने वयो वृद्धा श्रीचम्पाजी म० का हृदय जीत लिया। उन्होंने उसी समय कहा—मेरी तरफ से तुम्हें आज्ञा है। मैं जानती हूँ कि तुम जहाँ जाओगी वहाँ अपने व्यक्तित्व की छाप डाले बिना न रहोगी। मुझे आशा है तुम अपनी मातृभूमि में जाकर जैनधर्म का सुन्दर प्रचार कर सकोगी। अच्छा, कल ही यहाँ से विहार कर देना।

बस, अब क्या था। आप अपनी जन्मभूमि की ओर जाने के लिये प्रस्तुत हुई। जावरा संघ दूर तक विहार में पहुँचाने गया। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी धर्म के रंग में रंगे हुए थे। सब ने आपको गद्गदित होते हुए विदाई थी। अब आप श्रद्धेय बड़ी आनन्दकुमारीजी म० के साथ जावरा से विहार करके क्रमशः घूमते घामते देवगढ़ पहुँची। देवगढ़ के पास पिपली की भयंकर दुर्गमघाटी है। वहाँ से होकर मारवाड़ जाना पड़ता है। आपने बड़ी बूढ़ी सतियों के पात्र वगैरह घाटी उतरते समय ले लिये और बड़े धैर्य के साथ उन्हें साहस दिलाते हुए घाटी पार उतरवाई। अब तो मारवाड़ नीचे बड़ी गहराई में दीख रहा था। वहाँ से 'मारवाड़ ऐसा लगता है, मानो गहरे गड्ढे में पड़ा

कठोर शब्द कहा था, क्या तुम्हें कठोर नहीं लगा ? मैंने बड़ी भूल की है। उसके लिए मैं तुमसे माफी चाहती हूँ। तुम तो भाग्य वाली हो, जो सहन कर गई। चरितनायिका बोलीं—"हाँ, आप का कहना ठीक है। मुझे आपकी बात कड़वी सी लगी थी, पर यह मैंने अपने लिये हितकर समझ कर ग्रहण करली है। आपने मेरे हित को लक्ष्य में रखकर ही ऐसी बात कही थी। इसमें आप का कोई अपराध नहीं है, आप किसी प्रकार का दिल में पछतावा न करें।" यह बात सुनते ही चम्पाजी म० ने आपको छाती से लगाया और बड़ी प्रसन्न हुई।

चरितनायिका के मधुरस्वभाव ने हरएक व्यक्ति के हृदय को मोह लिया है। वे गुणग्राहिणी हैं और कठोर बात में से भी गुण को छाँट लेती हैं। उनका मानो यह सिद्धान्त था—

"अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः"

अर्थात्—अप्रिय किन्तु कल्याणकर बात का कहने वाला और सुनने वाला दोनों दुर्लभ हैं।

महासती श्री चम्पाजी म० की प्रकृति में वृद्धावस्था के कारण कुछ उग्रता आगई थी। अतः श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी भी उनसे कुछ बात कहते संकुचाती थीं। चरितनायिका को अपनी जन्मभूमि के क्षेत्र में ले जाना आवश्यक था। दीक्षा लेने के बाद अभी तक गई नहीं थी। बड़ी आनन्दकुमारीजी म० का चरितनायिका पर बड़ा स्नेह था। आपने एक दिन चरितनायिका से पूछा—"क्या तुम सोजत चलना चाहती हो ?" आपने उत्तर दिया—"हाँ, आपकी कृपा हो जाय तो इच्छा तो है—जन्मभूमि को स्पर्श करने की।" परन्तु बड़ी महाराज (चम्पाजी) आज्ञा देंगी तब न ?

बड़ी-आनन्दकुमारीजी—"आज्ञा लेना तो तुम्हारे हाथ में है। तुम्हारे कहते ही वे मान जायेंगी।"

कृतघ्न नहीं, और तू इस भूमि पर पैर रखने का अधिकारी नहीं।

ठीक है-जिस भूमि से हमारा अपरिमित कल्याण हो रहा हो उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुणगान करना एक प्रकार का व्यामोह ही है।

यद्यपि आपकी मातृभूमि सारा भारतवर्ष है, फिर भी भारतवर्ष में सोजत विशेष रूप से आपका जन्म-स्थान था। उसका आप पर विशेष ऋण भी माना जा सकता है। एक कवि ने ठीक ही कहा है—

"मेरी प्यारी जन्मभूमि है, इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है, उसका पृथ्वी पर जीवन॥"

यद्यपि आप सांसारिक बन्धनों को काट कर साध्वी हो चुकी थीं, तथापि मातृभूमि का ऋण अब भी आप अपने ऊपर चढ़ा *समझती हैं। साधु-साध्वियों पर भी मातृभूमि का ऋण* है। धर्माचरण करने वाले उच्च पुरुषों के लिये पृथ्वीकाय का महान् उपकार है, यह बात शास्त्रों में है। मगर इस ऋण को चुकाने का गृहस्थों का तरीका और है, और साधुओं का तरीका और है। साधु-साध्वी वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देकर फैले हुए अन्याय, अधर्म और दुर्व्यसनों को मिटा कर, वहाँ का अज्ञान दूर करके उस ऋण से बरी हो जाते हैं।

सोजत शहर पधारने पर आपके उपदेशों से जनता में बहुत धर्म जागृति हुई। जनता के जीवन में धर्म के संस्कार गहरे पड़ गये। आप सोजत से आसपास के क्षेत्रों में विहार कर गई थीं, लेकिन सोजत की जनता पर आपने अपनी वाणी का जादू सा असर छोड़ रखा था। चातुर्मास नजदीक आ रहा था। सोजत की धर्मपिपासु जनता ने और खासकर आपके सांसारिक माता पिता वगैरह ने सोजत में चातुर्मास करने का आग्रह किया। आपकी सोजत में चातुर्मास करने की इच्छा भी ही।

हो। काफी साहस के साथ मारवी-मखती सिरियारी, सारस आदि क्षेत्रों को अपने चरण कमलों से पवित्र करती हुई सोजत पहुँची।

सोजत चरितनायिका की जन्मभूमि थी। आप सोजत की धूल में खेली थीं। यहाँ के अन्न जल से बड़ी हुई थीं। आपको वहाँ के लोगों ने बालिका के रूप में, वधू के रूप में, और वैराग्नि के रूप में देखा था। आज वही बालिका नवीन रूप में सोजत में उपस्थित होती है। सोजत की जनता ने आपका भव्य-स्वागत किया। उन्होंने आपके गौरव को अपना गौरव समझा। आपकी वाणी सुनकर सोजत की जनता को रोमाञ्च हो आया। सोजत निवासी अपने, आपको धन्य मानने लगे। अपनी ही भूमि में छिपे हुए रत्न को वापिस पाकर कौन नहीं प्रसन्न हो जाता? अपने हाथ से सींचे हुए वृक्ष के फूल की सुगन्ध पाकर किसे हर्ष नहीं होता?

वास्तव में मातृभूमि का उपकार अवर्णनीय है। जिस भूमि-माता की गोद में बालक्रीड़ा की है, जहाँ की जीवनदात्री प्राणवायु मिली है, जहाँ की सुवाणी जीभ में भरी है, क्या वह भूमि कभी चित्त से दूर हो सकती है? एक प्राचीन आचार्य ने कहा है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

अर्थात्—माता और मातृभूमि स्वर्ग से बढ़ कर है।

"अमेरीका में डाक्टर थॉर नामक एक आध्यात्मिक विद्वान् हो गये हैं। सुना है, एक दिन वह अपने शिष्य के साथ हवा खाने गये। प्रसंगवश शिष्य ने डॉक्टर से पूछा—कौन सी भूमि अच्छी है, यहाँ की या स्वर्ग की?

डॉक्टर थॉर—जिस भूमि पर तू अपने दोनों पैर टेक कर खड़ा है अगर इसे स्वर्ग से बढ़ कर न मान तो इसके समान कोई

कृतघ्न नहीं, और तू इस भूमि पर पैर रखने का अधिकारी नहीं।

ठीक है-जिस भूमि से हमारा अपरिमित कल्याण हो रहा हो उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुणगान करना एक प्रकार का व्यामोह ही है।

यद्यपि आपकी मातृभूमि सारा भारतवर्ष है, फिर भी भारतवर्ष में सोजत विशेष रूप से आपका जन्म-स्थान था। उसका आप पर विशेष ऋण भी माना जा सकता है। एक कवि ने ठीक ही कहा है—

"मेरी प्यारी जन्मभूमि है, इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है, उसका पृथ्वी पर जीवन॥"

यद्यपि आप सांसारिक बन्धनों को काट कर साध्वी हो चुकी थीं, तथापि मातृभूमि का ऋण अब भी आप अपने ऊपर चढ़ा समझती हैं। साधु-साध्वियों पर भी मातृभूमि का ऋण है। धर्माचरण करने वाले उत्तम पुरुषों के लिये पृथ्वीकाय का महान् उपकार है, यह बात शास्त्रों में है। मगर इस ऋण को चुकाने का गृहस्थों का तरीका और है, और साधुओं का तरीका और है। साधु-साध्वी वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देकर फैले हुए अन्याय, अधर्म और दुर्व्यसनों को मिटा कर, वहाँ का अज्ञान दूर करके उस ऋण से बरी हो जाते हैं।

सोजत शहर पधारने पर आपके उपदेशों से जनता में बहुत धर्म जागृति हुई। जनता के जीवन में धर्म के संस्कार गहरे पड़ गये। आप सोजत से आसपास के क्षेत्रों में विहार कर गईं थीं, लेकिन सोजत की जनता पर आपने अपनी वाणी का जादू सा असर छोड़ रखा था। चातुर्मास नजदीक आ रहा था। सोजत की धर्मपिपासु जनता ने और खासकर आपके सांसारिक माता पिता वगैरह ने सोजत में चातुर्मास करने का आग्रह किया। आपकी सोजत में चातुर्मास करने की इच्छा थी ही।

श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी म० ने मौका देख कर सं० १६५६ के चातुर्मास की विनती स्वीकार कर ली।

सोजत चातुर्मास में अब आप एक साध्वी के रूप में थीं। आपके पूर्व परिचित सम्बन्धी और आसपास के गाँव के लोग आते और आपकी शान्त मुखमुद्रा व विवेकशीलता देख कर श्रद्धा से झुक जाते। आपकी ससुराल वाले रामसनेही होने पर भी अब जैन-साधु साध्वियों पर काफी भक्ति-भाव रखते थे। उन्होंने भी अपने घर की अमूल्य निधि चरित्रनायिका का काफी सत्संग किया और आपके वैराग्यमय उपदेशों को सुन कर वे समझते, हम तो इन्हें पाकर कृतार्थ होगए हैं। आपकी भावुकता ने सोजत के निवासियों को उपदेश द्वारा जागृत करने में काफी साथ दिया। आपके माता पिता व बहनें आदि सेवा करने आतीं, उन्हें जब आपकी मीठी वाणी के श्रवण का लाभ मिलता तो अपना अहोभाग्य समझने लगी। अपने ही घर में लगी हुई बेल को फली-फूली देखकर किसका मन प्रसन्न हुए बिना रह सकता है ? चरित्रनायिका की माताजी ने इस चातुर्मास में अपना जीवन ही प्राय निवृत्तिमय बना लिया था। घर का काम-काज करने वाली पुत्र वधुएं थी ही। अमृतकु वरबाई मौका देख कर घर के झगड़ों से काफी दूर हो गई। उन्होंने सोचा—"मेरी पुत्री ने पूर्ण त्याग का मार्ग अपनाया है, वह बड़ा ही सुन्दर है। मेरी इतनी शक्ति नहीं कि मैं पूर्णतः त्याग मार्ग ग्रहण करूं। अत जहाँ तक हो सके आस्रव के कार्यों से दूर कर अपना जीवन संवर में बिताऊँ।" इस भावना के अनुरूप अमृतकु वरबाई प्राय चरित्रनायिका की सेवा और सत्संग में ही अधिकांश दिवस बितातीं। उन्होंने चातुर्मासभर में ७० दया व पौषध आदि किये। मीठी बेल की जड़ भी मीठी होती है। आपकी पुत्री में धर्म का मिठास क्या यह माताजी से ही तो मिला था ? आपके

कुटुम्ब वालों ने भी ज्ञान-ध्यान का काफी लाभ उठाया। सोजत तो उस समय धर्म ध्यान और तपश्चरण का गढ़ बन गया था। सभी लोग आपके गुणों की-प्रशंसा करते थे।

एक बार रामसनेही साधु भी आपके यहाँ दर्शन करने आए। उन्होंने चरितनायिका की शान्तमूर्ति, और आपके हृदय में ज्ञान की नदी बहती देख कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और आपको पहचान कर कहा—आप तो सोजत की ही हैं, इस भूमि का भी ध्यान रखना। हम आज आप जैसी महासती के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गए हैं। धन्य है आपके माता पिता को! ऐसी पवित्रात्मा को पुत्री रूप में पाकर उन्होंने अपना जन्म सफल कर लिया। आपकी सद्बुद्धि को धन्य है! जो आपने अपने आत्म कल्याण का सुन्दर मार्ग अपनाया।

तात्पर्य यह है कि जैन और अजैन जनता पर आपका प्रभाव पड़ चुका था। आपके निर्मल गुणों की सुगन्ध सोजत में सर्वत्र फैल चुकी थी।

एक बार कई रामसनेही साधु, जो आपके परिचित थे, आपके दर्शनार्थ उपाश्रय में आए। उन्होंने देखा कि एक साध्वी एक ओर बैठी हैं और आप बैठी हैं दूसरी ओर, जाने का रास्ता बीच में से था। अब वे पेशोपश में पड़ गए। आखिरकार कहने लगे—"हमें आज आपके दर्शन का महान् लाभ हुआ है। पर आप दोनों के बीच में से होकर निकलने की हमारी, तो क्या देवों की भी ताकत नहीं है। आप महाभाग्यवती शीलवती सतियाँ हैं। हम आपके मार्ग को काट कर नहीं जा सकते। कृपया आप हमें मार्ग देकर कृतार्थ कीजिये।" आपने रास्ता छोड़ दिया और सतीजी के पास आ बैठीं। उनकी खुशी का पार न रहा। उन्होंने आपकी सुख-शान्ति वगैरह की पूछताछ की और कुछ बातचीत करके विदा हुए।

इस तरह रामसनेही साधुओं पर आपकी इतनी छाप पड़ गई कि उन्हें आप जोधपुर शाहपुरा, ब्यावर आदि में जब कभी मिलतीं तो वे चट आपको पहचान जाते और वन्दन करके प्रसन्नतापूर्वक चले जाते।

सोजत का चातुर्मास बड़े ही आनन्द से पूर्ण हुआ। चातुर्मास की पूर्णाहुति में उपदेश सुनने वाले लोगों की संख्या काफी बढ़ गई थी। सोजत के लोगों ने बड़ी धूमधाम के साथ चातुर्मास उठने के दूसरे दिन विहार कराया दूर-दूर तक लोग पहुँचाने गये। सभी लोगों के मुँह पर आपके गुणों की प्रशंसा सुनाई दे रही थी।

सोजत से विहार करके मारवाड़ के छोटे-छोटे गाँवों में धर्म की दुन्दुभि बजाती हुई आप साध्वी-मण्डली सहित जेठाणा पहुँची। जेठाणा के लोगों की धर्म भावना बड़ी तीव्र थी। उन्होंने महासतीजी को चातुर्मास करने के लिए आग्रह भरी प्रार्थना की। महासती श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी ने वहाँ के लोगों में धर्म की लगन देखकर और उपकार समझकर चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी। इस तरह सम्वत् १९९७ का चातुर्मास जेठाणा में व्यतीत किया। छोटा मध होने पर भी जेठाणा ग्राम की धर्मश्रद्धा और साधु-साध्वियों पर भक्तिभाव आज भी सराहनीय है। जिसमें आनन्दकुमारीजी जैसी महासती की वाणी का रस पाकर वह संघवृक्ष और मजबूत हो गया।

क्षमा-शील-प्रकृति

जेठाणा चातुर्मास समाप्त होने पर हमारी चरितनायिका ने अजमेर, किशनगढ़ आदि धर्म प्रिय क्षेत्रों को पावन करते हुए जयपुर की ओर विहार कर दिया। जयपुर विद्या का केन्द्र है। यहाँ अनेकानेक राजक्रान्तियाँ और धर्मक्रान्तियाँ हुई हैं। क्षत्रिय राजाओं की यहाँ प्रबल धाक जमी हुई थी। मुगलों का शासन काल में भी जयपुर ने काफी उन्नति करली थी। इस क्षेत्र को राजपूताना की काशी कहते हैं। जैनियों के यहाँ काफी घर हैं। श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के कुल मिला कर करीब ५००० घर हैं। प्राचीन समय में यहाँ के कई जैन, राजमन्त्री रह चुके हैं। इस तरह जयपुर में कई उलट फेर आए हैं। इसने अपने जन्म काल से लगा कर अब तक कई धूप-छाँह के खेल खेले हैं।

जयपुर का मार्ग वैसे तो सीधी सड़क का है, पर रास्ते में कई गाँव तो सड़क से दूर पड़ जाते हैं। कई गाँव ऐसे हैं जहाँ जैनियों का एक भी घर नहीं है। फिर भी कई ग्रामीण लोग बड़ी भावुकता से जैन-साधु-साध्वियों को आहारादि देते हैं। कई यों ही रूखा-सा जवाब देते हैं। सूर्योदय होते ही साध्वी मण्डली चल पड़ती है। चलते-चलते दोपहर हो जाता है, तब कहीं गाँव आता है। कोई व्यवस्था नहीं है। कहीं उपहास और तिरस्कार तो कहीं सत्कार और मीठे वचन। साधु जीवन का मार्ग ऐसा ही है। 'कभी घी घना तो कभी मुट्ठी चना'। महासती

भी बड़ी आनन्दकुमारीजी म० थक जातीं हैं पर साथ में पतिनायिका ऐसी विवेकशीला थीं कि पहले ही पहुँच कर मकान वगैरह का ठीक ठिकाना कर लेतीं और झोली में पात्र डाल कर पहले से तैयार रहतीं। आपकी आदर्श-सेवावृत्ति का सहारा पाकर सब साध्वियाँ सकुशल जयपुर पहुँच जातीं हैं।

जयपुर की धर्मशील जनता ने आपका बड़ा स्वागत किया। संघ के लोगों में काफी उत्साह था। उन्होंने जयपुर चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया। जयपुर जैसे सम्पन्न संघ ने आपका चातुर्मास करा ही लिया।

जयपुर में भूमि रेतीली है। और पास ही ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं, इसलिए गर्मी खूब पड़ती है। वर्षा भी थोड़ी ही होती है। इस साल भी उष्णता काफी रही। गर्मी से सारी सड़कें तप जाती थीं। चातुर्मास-काल में भी दिन में १० बजे बाद सड़कों पर चलना बड़ा कठिन हो जाता। रात को भी गर्मी का काफी परिषह रहता था। पर साध्वियों की तो ऐसे मौके पर ही परीक्षा होती है। बहुत दिन तक सूर्य ने अपनी प्रचण्ड किरणें फैलाकर तपाया, आखिर वृष्टि हुई।

इधर तो यह जल-वृष्टि हो रही थी, उधर महासतीजी के धर्म-प्रवचनों की वृष्टि हो रही थी। धर्म पिपासु जनता सुनकर गद्‌गद्‌ हो जाती।

धर्मोपदेश की ओर आपका जितना ध्यान था, उतना ही शास्त्राध्ययन की ओर भी था। शास्त्रों का अध्ययन करते समय आप एकाग्र हो जातीं। उस समय की मुख-मुद्रा बड़ी ही दर्शनीय होती थी।

एक समय पतिनायिका शास्त्र का स्वाध्याय कर रही थीं, इतने में ही एक साध्वीजी न जिनका मस्तिष्क कुछ विकृत सा हो रहा था, एकदम क्रोध में आकर पास में पड़ा हुआ पत्थर

अपना सिर फोड़ने के लिए उठाया। आपने यह घटना देखी और झटपट जैसे बैठी थीं वैसे ही उठीं और उनका हाथ पकड़ लिया। आपने तो इस अभिप्राय से हाथ पकड़ा था कि कहीं यह क्रोध में आकर अपना सिर न फोड़ ले। पर उन साध्वीजी ने ज़ोर से हल्ला मचाया और कहने लगी—देखो, देखो, यह मुझे पीट रही है।

कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। मनुष्य चाहे कहीं भी क्यों न चला जाय चाहे वह पाताल में घुस जाय, चाहे स्वर्ग में भी चला जाय, चाहे ऊँचा से ऊँचा साधक भी बन जाय, चाहे गँवारों की टोली में फिरता रहे, फिर भी कर्म किसी को छोड़ता नहीं है। उसकी पहुँच बड़ी दूर तक है। साधक का जीवन बहुत उच्च जीवन है। फिर भी कर्म-फल तो वहाँ भी पीछे लगा रहता है। उक्त साध्वीजी ने कितना उच्च-जीवन बिताने का बाना ले रखा था, फिर भी कर्मों के उदय से उनका चित्त विक्षिप्त-सा हो गया था। यह अपने हाथ की बात नहीं है कि कोई किसी के कर्मों को दूर कर दे। अपनी ताकत तो क्या, इन्द्र की भी शक्ति नहीं कि किसी के बुरे कर्मों को अच्छे रूप में पलट दे और अच्छे कर्मों को बुरे रूप में परिवर्तन करदे। कर्मों की दुनिया में रह कर मनुष्य अपने पूर्ण स्वातन्त्र्य को खो बैठता है, उनसे पिण्ड छुड़ा कर ही वह स्वाधीन मुक्तात्मा बन सकता है। पर समर्थ आत्माओं में इतना बल तो जरूर है कि वे अपने कर्म बन्ध के कारणों को ढूँढ कर उनसे बचते हैं और उन्हें तोड़ने का उपाय करते हैं।

हाँ, तो चरितनायिका की क्षमाशील प्रकृति से यह दृश्य न देखा गया और एक मिनट भी अगर वे देरी करतीं तो न जाने क्या का क्या अनर्थ हो कर रहता। बदले में महासती श्रीमती आनन्दकुमारीजी ने आपसे कहा भी कि इनके हाथ से तुमने

पत्थर क्यों छीना ? तुम इनको जानती नहीं थी ? अब लोग क्या कहेंगे कि फलानी साध्वी अमुक साध्वी का सिर फोड़ रही थी ! यह उपकार करने के बदले अपहार मिलेगा !" पर चरितनायिका ने बड़े विनोद पूर्ण ढंग से कहा—'यह तो अपना मस्तक फोड़ रही थी, पर मैं तो समझदार सामने बैठी थी ! अगर मैं थोड़ी सी भी चूक करती तो यह तो अपने सिर पर दे मारती और खून की धारा बहने लगती। मैंने ऐसा करके अपने कर्तव्य का पालन किया है। कोई भलाई का काम करते हुए भी गले में बुराई का हार पहना दे तो भले ही पहनादे। मैं उस हार को सहर्ष स्वीकार करूँगी। दुनिया की आलोचना से मैं क्यों डरूँ ? दुनिया तो घड़े हुए की भी नुक्ता-चीनी करती है और पैदल चलने वाले की भी।" धन्य है चरितनायिका की कर्तव्यनिष्ठा को ! आपके सामने मानो कवि की यह कि यह उक्ति मार्ग दिखा रही थी—

"सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्प !"

अर्थात्—मनुष्य को हमेशा अपने हित का, अपने कर्त्तव्य का आचरण करना चाहिए, बहुत बड़बड़ाने वाला मनुष्य नुक्ता चीनी करके उसका क्या कर सकता है ?

आपका उत्तर सुनकर महासती मोतवती आनन्दकुमारीजी म० मन ही मन आपकी सराहना कर रही थीं। और सोच रहीं थीं—उसके हृदय में कितनी क्षमा है ? अपकार करने वाले पर भी यह उपकार की वर्षा करती है। कांटा चुभाने वाले पर भी कृपा बरसाती है।

वास्तव में क्षमा अहिंसक की उच्चतम साधना है। श्रमण के १० धर्मों में क्षमा सर्व प्रथम धर्म है। इसे भगवान् महावीर ने साधुता के गुणों में सब से पहला स्थान दिया है। इतना ही नहीं भगवान महावीर ने अपने जीवन में १२ वर्ष की कठिन साधना में क्षमा का प्रयोग किया है। कहा है—"क्षमा खड्ग करे

यस्य दुर्जन किं करिष्यति ?"

अर्थात्—जिसके हृदय में क्षमा रूपी तलवार है, दुर्जन उसका क्या कर सकता है—क्या बिगाड़ सकता है ?

महावीर प्रभु के सामने भी कई व्यक्ति कष्ट देने आए थे, उनके क्षमा की कसौटी करने आए थे, पर अन्त में वे झुक कर गए, नम्र होकर विदा हुए। क्षमावान् मनुष्य क्रोधी से क्रोधी और लड़ाकू व्यक्ति का दिल पलट सकता है। उसकी क्षमा के सामने क्रोध का जहर भी अमृत बन जाता है।

चरितनायिका पर उक्त सतीजी ने झूठा आरोप लगाया और भला बुरा भी कहा पर आखिरकार वही एक दिन आकर आपसे कहने लगीं—मैंने आपको उस दिन व्यर्थ ही मुसीबत में डाला। मैं खुद अपराधिनी थी, भान भूल गई थी। यह तो ठीक हुआ कि आपने मेरा हाथ पकड़ कर रोक दिया, नहीं तो कौन जानता था मैं क्या कर बैठती। उस समय मैं अपने आपे में नहीं थी। सतीजी ! मेरा अपराध क्षमा करना। आपने तो मुझ पर महान उपकार किया है। मैं आपको बहुत अयोग्य वचन भी कह देती हूँ पर आपने मुझे कभी कुछ नहीं कहा। आपने मुझ जैसी पगली को भी निभाया और मुझ पर स्नेह बरसाया।

चरितनायिका ने उक्त सतीजी के सर्मार्द्र हृदय को सान्त्वना दी और कहा—'यह तो हो जाता है। मनुष्य भूल का पुतला है। इससे गलतियाँ होती रहती हैं। आपका दिल तो सरल और साफ है इसलिए अपराध अपने आप पश्चात्ताप के पानी से धुल गया है। कोई चिन्ता न करिये।'

यह है जीवन की ऊँचाइयाँ मापने का पैमाना। चरितनायिका के जीवन की इन घटनाओं को देखकर इनके विशाल हृदय का, इनकी उदारता का और साधुता का पता लग जाता है। धन्य है ऐसी पवित्र आत्माओं को !!

पत्थर क्यों छीना ? तुम इसको मानती नहीं थी ? अब लोग क्या कहेंगे कि फलानी साध्वी अमुक साध्वी का सिर फोड़ रही थी ! यह उपकार करने के बदले अपहार मिलेगा !" पर चरितनायिका ने बड़े विनोद पूर्ण ढंग से कहा—'यह तो अपना मस्तक फोड़ रही थी, पर मैं तो समझदार सामने बैठी थी ! अगर मैं थोड़ी सी भी चूक करती तो यह तो अपने सिर पर दे मारती और खून की धारा बहने लगती। मैंने ऐसा करके अपने कर्तव्य का पालन किया है। कोई भलाई का काम करते हुए भी गले में बुराई का हार पहना दे तो भले ही पहनादे। मैं उस हार को सहर्ष स्वीकार करूँगी। दुनिया की आलोचना से मैं क्यों डरूँ ? दुनिया तो पड़े हुए की भी नुक्ता-चीनी करती है और पैदल चलने वाले की भी।" धन्य है चरितनायिका की कर्त्तव्यनिष्ठा को ! आपके सामने मानो कवि की यह कि यह उक्ति मार्ग दिखा रही थी—

। "सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्प ।"

अर्थात्—मनुष्य को हमेशा अपने हित का, अपने कर्त्तव्य का आचरण करना चाहिए, बहुत बड़बड़ाने वाला मनुष्य नुक्ता चीनी करके उसका क्या कर सकता है ?

आपका उत्तर सुनकर महासती आपकी आनन्दकुमारीजी म० मन ही मन आपकी सराहना कर रही थीं। और सोच रही थीं—इसके हृदय में कितनी क्षमा है ? अपकार करने वाले पर भी यह उपकार की वर्षा करती है। कांटा चुभाने वाले पर भी फूल बरसाती है।

वास्तव में क्षमा अहिंसक की उच्चतम साधना है। श्रमण के १० धर्मों में क्षमा सर्व प्रथम धर्म है। इसे भगवान महावीर ने साधुता के गुणों में सब में पहला स्थान दिया है। इतना ही नहीं भगवान महावीर ने अपने जीवन में १२ वर्ष की कठिन साधना में क्षमा का प्रयोग किया है। कहा है—"क्षमा शत्रु करे

यस्य दुर्जन किं करिष्यति ?"।

अर्थात्—जिसके हृदय में क्षमा रूपी तलवार है, दुर्जन उसका क्या कर सकता है—क्या बिगाड़ सकता है ?

। महावीर प्रभु के सामने भी कई व्यक्ति कष्ट देने आए थे, उनके क्षमा की कसौटी करने आए थे, पर अन्त में वे झुक कर गए, नम्र होकर विदा हुए। क्षमावान् मनुष्य क्रोधी से क्रोधी और लड़ाकू व्यक्ति का दिल पलट सकता है। उसकी क्षमा के सामने क्रोध का जहर भी अमृत बन जाता है।

। चरितनायिका पर उक्त सतीजी ने झूठा आरोप लगाया और भला बुरा भी कहा पर आखिरकार वही एक दिन आकर आपसे कहने लगीं—मैंने आपको उस दिन व्यर्थ ही मुसीबत में डाला। मैं खुद अपराधिनी थी, भान भूल गई थी। यह तो ठीक हुआ कि आपने मेरा हाथ पकड़ कर रोक दिया, नहीं तो कौन जानता था मैं क्या कर बैठती। उस समय मैं अपने आपे में नहीं थी। सतीजी ! मेरा अपराध क्षमा करना। आपने तो मुझ पर महान उपकार किया है। मैं आपको बहुत अयोग्य वचन भी कह देती हूँ पर आपने मुझे कभी कुछ नहीं कहा। आपने मुझ जैसी पगली को भी निभाया और मुझ पर स्नेह बरसाया।

चरितनायिका ने उक्त सतीजी के मर्माहत हृदय को सान्त्वना दी और कहा—'यह तो हो जाता है। मनुष्य भूल का पुतला है। इससे गलतियाँ होती रहती हैं। आपका दिल तो सरल और साफ है इसलिए अपराध अपने आप पश्चात्ताप के पानी से धुल गया है। कोई चिन्ता न करिये।'

यह है जीवन की ऊँचाइयाँ मापने का पैमाना ! चरितनायिका के जीवन की इन घटनाओं को देखकर इनके विशाल हृदय का, इनकी उदारता का और साधुता का पता लग जाता है। धन्य है ऐसी पवित्र आत्माओं को !!

चातुर्मास समाप्त हुआ। यह चातुर्मास चरितनायिका के जीवन-विकास की दृष्टि से बड़ा शानदार रहा। यहाँ की बहनों में जो धार्मिक भावनाएँ दबी पड़ी थीं वह आपके सदुपदेशों का सहारा पाकर पुन उठ खड़ी हुई। विहार की तैयारी होने लगी। जनता आपके पुन दर्शनों के लिये विह्वल हो रही थी। विहार हो गया। विहार में भाइयों का तो कहना ही क्या, जिन बहिनों ने कभी जयपुर की सड़क नहीं देखी थी, वे भी कई मील तक पहुँचाने आईं। यह है सच्ची साधुता और सरलता का सच्चा आकर्षण !! प्रेम-पूर्ण व्यक्तित्व हर जगह जादू-सा चमत्कार दिखाता ही है।

जयपुर से अजमेर

जयपुर का चातुर्मास समाप्त हो जाने के बाद साध्वी मण्डली को वापिस अजमेर की ओर प्रस्थान करना पड़ा। अजमेर में आपके सम्प्रदाय की वयोवृद्धा महासती श्री केशरकुमारीजी कमर के दर्द के कारण कई महीनों से विराजित थीं। आपका जिस समय जयपुर चातुर्मास था उस समय यह खबर पहुँची कि महासती म० के कमर में दर्द ज्यादा है अतः सेवा में सतियों की जरूरत है।

साधु-जीवन में सेवा का काम पहले है और दूसरे काम पीछे। सेवा की अगर कोई दूसरी व्यवस्था न हो तो साधु साध्वी को चातुर्मास में ही विहार करके पहुँचना चाहिए, ऐसी शास्त्रीय आज्ञा है। अगर कोई तपस्या करता हो तो अपनी तपस्या छोड़कर भी सेवा का कार्य पहले सम्भाले। भगवान् महावीर की संघ-व्यवस्था बालू की नींव पर नहीं खड़ी है। उसकी नींव मजबूत है। यही कारण है कि दूसरे धर्मों के संघों में जहाँ विकृतियाँ प्रविष्ट हो गई हैं वहाँ जैन धर्म की संघ-व्यवस्था अब भी काफी सुदृढ़ है।

साथ में आपकी वयोवृद्धा बड़ी आनन्दकुमारीजी म० भी हैं, फिर भी वह शीघ्रातिशीघ्र अजमेर की ओर अग्रसर हुई। मार्ग की कठिनाइयाँ क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ? कभी आहार मिलने को होता तो पानी न मिलता, कभी पानी मिलने

चातुर्मास समाप्त हुआ। यह चातुर्मास चरितनायिका के जीवन-विकास की दृष्टि से बड़ा शानदार रहा। यहाँ की बहनों में जो धार्मिक भावनाएँ दबी पड़ी थीं वह आपके सदुपदेशों का सहारा पाकर पुनः उठ खड़ी हुई। विहार की तैयारी होने लगी। जनता आपके पुनः दर्शनों के लिये विह्वल हो रही थी। विहार हो गया। विहार में भाइयों का तो कहना ही क्या, जिन महिलाओं ने कभी जयपुर की सड़क नहीं देखी थी, वे भी कई मील तक पहुँचाने आई। यह है सच्ची साधुता और सरलता का सच्चा आकर्षण!! प्रेम-पूर्ण व्यक्तित्व हर जगह जादू-सा चमत्कार दिखाता ही है।

जयपुर से अजमेर

जयपुर का चातुर्मास समाप्त हो जाने के बाद साध्वी मयजली को वापिस अजमेर की ओर प्रस्थान करना पड़ा। अजमेर में आपके सम्प्रदाय की वयोवृद्धा महासती श्री केशरकुमारीजी कमर के दर्द के कारण कई महीनों से विराजित थीं। आपका जिस समय जयपुर चातुर्मास था उस समय यह खबर पहुँची कि महासती म० के कमर में दर्द ज्यादा है अत सेवा में सतियों की जरूरत है।

साधु-जीवन में सेवा का काम पहले है और दूसरे काम पीछे। सेवा की अगर कोई दूसरी व्यवस्था न हो तो साधु साध्वी को चातुर्मास में ही विहार करके पहुँचना चाहिए, ऐसी शास्त्रीय आज्ञा है। अगर कोई तपस्या करता हो तो अपनी तपस्या छोड़ कर भी सेवा का कार्य पहले सम्भाले। भगवान महावीर की संघ-व्यवस्था बालू की नींव पर नहीं खड़ी है। उसकी नींव मज़बूत है। यही कारण है कि दूसरे धर्मों के संघों में जहाँ विकृतियाँ प्रविष्ट हो गई हैं वहाँ जैन धर्म की संघ-व्यवस्था अब भी काफी सुदृढ़ है।

साथ में आपकी वयोवृद्धा बड़ी आनन्दकुमारीजी म० भी हैं फिर भी वह शीघ्रातिशीघ्र अजमेर की ओर अग्रसर हुईं। मार्ग की कठिनाइयाँ क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ ? कभी आहार मिलने को होता तो पानी न मिलता, कभी पानी मिलने

को होता है तो आहार नहीं। और कभी-कभी दोनों ही नहीं। अज्ञात जनता, वह भी दरिद्रता के भार से पिसी हुई। गरीबी ने तो उनकी रीढ़ की हड्डी ही तोड़ दी थी। गाँव की जनता में मानवता आती कहाँ से ? पेट में ही चूहे दण्ड पेल रहे हों, खान की फाके-कशी हो, वहाँ दान देन की भावना कहाँ से उठती ? तो भी धैर्यशालिनी चरितनायिका अपनी पूजनीया वयोवृद्धा सतीजी की सेवा में सस्नेह जुटी रहती। उनके मन पर इन कठिनाइयों से कोई ग्लानि नहीं, वे तो सेवा के पथ पर यात्रा कर रही हैं।

अब तो अजमेर दूर से दिखाई दे रहा है। पैर अब झट पट उठते हैं। अजमेर में प्रवेश करते समय स्वागतार्थ भक्त सामने आ रहे थे। अजमेर आई। अजमेर में मोतीकटलावाले सेठ चाँदमलजी प्रमुख श्रावक गणों की व कई मुख्य श्राविकाओं की काफी भक्ति थी। केशरजी म० का संयमीजीवन बड़ा विशुद्ध था उनका आचार विचार भी प्रशस्त था, इसलिये सब लोगों ने आपको स्थिरवास के लिये आग्रह किया। कहा—महासतीजी म० ! आपका शरीर दिनों दिन क्षीण होता चला आ रहा है। अधिक चलने की शक्ति भी नहीं है। वृद्धावस्था ने भी आप पर पूरा अधिकार जमा लिया है, अतः हमारी प्रार्थना मान कर आप यहाँ पर ही स्थिरवास करना स्वीकार करें।

केशरजी महासतीजी शरीर से वृद्ध थीं पर मन का उत्साह कम नहीं हुआ था, बुद्धिमती भी थीं। समयज्ञता की भी कमी नहीं थी। उन्होंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर कहा—"ठीक है, आपकी विनती को ध्यान में रक्खा जायगा, पर अभी स्थिरवास की स्वीकृति हम नहीं दे सकतीं। जब तक अशक्ति है, और अवसर है तब तक जितना ठहरा जायेगा, ठहरेंगी।" अजमेर-संघ के लिये इतना-सा वचन पाने में भी बहुत बड़ी सफलता थी।

विक्रम संवत् १६५६ से १६६१ तक के चातुर्मास का सौभाग्य अजमेर-संघ को मिला। इतने लम्बे काल में केशरजी म० की शारीरिक दुर्बलता भी घटने के बजाय बढ़ गई थी, पर दूसरी ओर प्रेम की सबलता बढ़ गई थी। संघ के लोगों का प्रेमाग्रह कम नहीं था। चरितनायिका जैसी सेवाभाविनी और अध्ययनशीला साध्वीजी के सहयोग से संघ का मनोमयूर नाच उठा था। अधिक परिचय मनुष्य के व्यक्तित्व को नीरस बना देता है, पर चरितनायिका का व्यक्तित्व अधिकाधिक सरस होता चला गया। लोगों का धर्म प्रेम भी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। संघ की प्रेरणा काफी थी इसलिए महासती श्री केशरजी म० की इच्छा एक बार तो ऐसी हो गई थी कि यहीं पर क्यों न निवास किया जाय? लोगों का आग्रह भी है और उपकार भी काफी होता है। हमें तो कहीं पर रह कर संयमी जीवन बिताना है, फिर यहाँ क्या बुरा है?

संवत् १६६० व १६६१ के चातुर्मास तक महासतीजी म० के दर्शनों का सौभाग्य अजमेर संघ को मिलता रहा। चातुर्मास काल में भिक्षाचरी आदि के लिये छोटी-सतियाँ जातीं। वृद्ध सतियों की सेवा का सारा कार्य उन्होंने अपने हाथों में ले रखा था। सतियाँ भिक्षाचरी के लिए जिस मार्ग से होकर जातीं, वहाँ बीच में मांस बेचने वालों की दूकाने पड़ती थीं। उन लोगों की दूकानों का दृश्य बड़ा बीभत्स होता है। कहीं मांस खुले बर्तन में पड़ा है तो किसी जानवर की टांग आदि ऊँची लटकाई हुई है। एक अहिंसक का दया पूर्ण दिल कैसे इस बीभत्स दृश्य को अपनी आँखों देख सकता है? ऐसा दृश्य देखकर रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। मांसाहारी लोगों के इस घृणित कृत्य से चरितनायिका और दूसरी साध्वियों को बड़ी नफरत होती। कभी कभी आहार करने बैठतीं तो भी वह अच्छा नहीं लगता था। छोटी साध्वियाँ प्रति

दिन की इस घटना को देखकर हैरान हो गई थी। भिक्षाचरी के लिये तो कदाचित् दूसरा कोई मार्ग ढूंढा जा सकता था। पर शौच जाने के लिए तो इन्द्रकोट की तरफ होकर ही जाना पड़ता था। वहाँ भी यही हाल था। यही निर्दयता के दृश्य थे। सभी छोटी सतियाँ व्यग्र हो उठी थीं। बड़ी साध्वीजी से किसी को कहने की हिम्मत न होती थी। एक दिन सभी ने मिल कर विचार किया कि बड़ी महासतीजी महाराज से कह देना चाहिये। ऐसा कितने दिन तक चलेगा ?

एक दिन चरितनायिका व दूसरी सतियों ने मिल कर श्री केशरजी म० से अर्ज की—महाराज, अजमेर का क्षेत्र और तो सब तरह से ठीक है। यहाँ शौच जाने के लिये भी काफी जगह है। गोचरी के लिए घर भी काफी हैं। लोगों की भावभक्ति भी प्रचुर मात्रा में है और उनकी आपके लिए स्थिरवास विराजने की प्रार्थना भी है परन्तु यह सब होने पर भी यहाँ का बाहर वातावरण बड़ा खराब है। प्रतिदिन शौच व गोचरी के लिये हमें मांस बेचने वाले लोगों की दूकानों के पास से गुजरना पड़ता है। हमसे यह दृश्य देखा नहीं जाता। और तो हम चाहे जैसा काम करने को तैयार हैं। आपकी सेवा में हम किसी प्रकार की कमी नहीं देखना चाहतीं, न आपके चित्त को दुखाना चाहती हैं, किन्तु इस दृश्य के आगे तो हमारी भी बुद्धि काम नहीं करती। आप चाहें तो हम आपको जैसे-तैसे कहीं भी दूसरी जगह ले जा सकती हैं, आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगी, पर हमारा चित्त यहाँ रहने को नहीं होता।

महासती श्री केशरजी म० कुछ देर तक विचार में डूब गईं, फिर गम्भीरता से कहा—हाँ, तुम्हारी बात अवश्य विचारणीय है। मैं झटपट विचार करके किसी निर्णय पर आजाऊँगी। तुम घबराओ मत। जैसी तुम्हारी रुचि होगी वैसा ही

किया जायगा।"

चातुर्मास समाप्त हो चुका था। महासती जी ने बुद्धिमानी से सोचकर विहार करने का इरादा प्रगट किया। श्रावक लोगों को जब यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने ठहरने के लिए अत्यन्त आग्रह किया। संघ का आग्रह चरम सीमा पर था। इधर चरितनायिका व दूसरी साध्वियों के चरित्र बल का इतना महान् प्रभाव पड़ चुका था कि कोई यह नहीं चाहता था कि महाराज यहाँ से विहार करें। क्या बुड्ढी, क्या बालिका, क्या युवतियां सब के दिल चाहते थे कि अभी महासतीजी म० यहीं विराजें। पर बड़ी महासतीजी ने उन्हें कहा—मैं जानती हूँ कि आपका प्रेम काफी है। मेरे स्थिरवास के लिए आपका पूर्ण आग्रह भी है, पर मैं उक्त कारणों से यहाँ रहने में विवश हूँ। मैंने इन सतियों के मुँह से जब सुना तभी मुझे ग्लानि हो गई तो इन्हें तो उक्त रास्ते से होकर रोज ही जाना पड़ता है। मैं तो वृद्धा हूँ, एक जगह पड़ी रह सकती हूँ, पर भोजन, पानी के लिये तो इन्हीं नौजवान सतियों को चक्कर लगाना पड़ता है। आहार लाने पर भी छोटी मानकुमारीजी तो आहार भी बड़ी कठिनता से करती है। यह एक दिन का काम तो नहीं है।"

भाइयों और बहिनों ने फिर भी किसी तरह रहने का आग्रह चालू रक्खा। मगर चरितनायिका ने महासतीजी श्री केसरजी म० को वहाँ से विहार करवा दिया। लोगों के दिल मुरझाए हुए थे। कह रहे थे—हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे यहाँ आई हुई धर्म जहाज वापिस जा रही है। हम मन्द भाग्य हैं।

चरितनायिका ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'नहीं, ऐसा विचार मत करो। हम जितने दिन यहाँ रही हैं, आप लोगों ने अच्छी सेवा बजाई है। आपका धर्म प्रेम प्रशंसनीय है। अभी अवसर ऐसा ही है। नहीं तो हमें यहाँ ठहरने में कोई

दिक्कत नहीं थी।"

चरितनायिका का यह महान साहस भुलाया नहीं जा सकता। आपके बिना यह विहार का निर्णय होना कठिन था। आपका यह कदम बड़ा स्तुत्य था।

आपकी दूरदर्शिता का इस घटना से पता लगाया जा सकता है। आपने वृद्धा सतीजी को बड़े साहस और स्फूर्ति के साथ अजमेर से ब्यावर की ओर विहार करवाया।

भावी-प्रवर्तिनी के दर्शन

महासतीजी श्री केशरजी म० अत्यन्त अशक्त थीं और उनके पैर व कमर में दर्द रहता था, फिर भी चरितनायिका जैसी साहसिन मनस्वी का सहयोग पाकर नवयुवती की तरह चलने को तैयार हो गई। ब्यावर अभी दूर था। अजमेर से ब्यावर के मार्ग में छोटे-छोटे ग्रामों में भी आप अहिंसा और सत्य का प्रचार करती चली आ रही थीं। आपका ब्यावर आगमन सुन कर वहाँ के लोगों का मन हर्ष से उछलने लगा। ब्यावर से कई लोग आपके स्वागतार्थ पहुँचे। लोगों के आने जाने का तांता-सा लग रहा था। विदुषी महासती श्री श्रेय कुमारीजी ने कई साध्वियों को आपके सामने भेजा। साध्वी मंडली सकुशल ब्यावर पधारीं। श्रीमती श्रेयःकुमारीजी ने चरितनायिका आदि सभी साध्वियों से बड़ी प्रसन्नता से बात चीत की। आपकी मान-मर्यादा का वे बड़ा खयाल रखती थीं।

श्रीमती पण्डिता आर्या श्रेयःकुमारीजी पर वृद्धता ने उस समय काफी प्रभाव डाल दिया था। आपके शरीर में अशक्ति होने के कारण ब्यावर में स्थिरवास विराज रही थीं। आप बड़ी शांतमूर्ति थीं। शास्त्रों की धारणा शक्ति आपकी बड़ी विलक्षण थी। साथ ही आचार विचार भी बड़े पवित्र थे। श्रीमती प्रवर्तिनी रत्नकुमारीजी ने आपको ही भावी प्रवर्तिनी बनाने का निर्णय किया था।

आप सब तरह से योग्य थीं। चरितनायिका को प्रवर्तिनीजी श्री रत्नकुमारीजी का आशीर्वाद मिल चुका था। आपको अपनी वैराग्यावस्था में ही उनके हृदय के पवित्र उद्गार प्राप्त हुए थे। उनके पद पर श्रीमती श्रेयकुमारीजी को प्रवर्तिनी पद दिया गया। आप भी सहनशीला और निडर साध्वी थीं। ब्यावर की जनता आपके प्रवचनों से और शुद्ध आचरण से बहुत संतुष्ट थी।

हाँ, तो जीवन चरित्र का मार्ग पकड़िये। श्रीमती विदुषी प्रवर्तिनी श्रेयकुमारीजी म० के चरितनायिका आदि ने दर्शन किये। आप की भी चरितनायिका पर काफी कृपा-दृष्टि थी। चरितनायिका ने ब्यावर में थोड़े ही दिन रह कर भी प्रवर्तिनीजी म० के हृदय में अपना स्थान जमा लिया था।

साधक जीवन की महत्ता अपने विश्वस्त पूज्य पुरुषों के हृदय में स्थान जमा लेने में है, उनके मनोगत भावों और वचनों को समझ कर कार्य करने में है। उत्तराध्ययन सूत्र की यह गाथा इस बात में साक्षी है—

"मणोगयं, वक्कगयं जाणित्तायरियस्सउ।
तं परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए"

अर्थात्— विनीत साधक आचार्य की मनोगत और वचनगत बातों को समझकर तथा अपने कथन द्वारा उन्हें विश्वास दिलाकर कार्यरूप में परिणत करे।

हमारी चरितनायिका का जीवन इसी साँचे में ढला हुआ था। आपके जीवन के किसी कोने में छिद्र नहीं था, दुर्बलता नहीं थी, आप सतर्क और प्रामाणिक ढंग से रहती थीं। प्रामाणिक जीवन अवश्य विश्वासदायक होता है।

चरितनायिका के प्रामाणिक जीवन के विषय में कोई प्रमाण दिखाना और उसके द्वारा उनके विश्वस्त-जीवन की

मोंकी दिखाना कोई अर्थ नहीं रखता है। क्या सूर्य को दिखाने के लिए भी दीपक की आवश्यकता है? कभी नहीं। चरितना यिका का जीवन गार्हस्थ्य-दशा में भी पवित्र और प्रामाणिक रहा था। और साधुता का बाना पहनने पर भी निष्पक्ष, प्रामाणिक और विश्वसनीय रहा है। आप जहाँ भी, जिनके पास में रहीं, वहीं अपने प्रति विश्वास का वातावरण पैदा किया और जनता को अपने पवित्र गुणों से मोह लिया। साधारण जनता ही नहीं, चरितनायिका ने अपने गुणों का जादू वर्तमान प्रवर्तिनी श्रेय कुमारीजी म० पर भी डाल दिया है। उन्होंने भी आप के शरीर की दिव्याकृति शान्तप्रकृति, और विनय-शीलता को देखकर मन में गाँठ बाँध ली कि यह भविष्य में एक तेजोमूर्ति निकलेगी और सम्प्रदाय की गाडी को सुन्दर ढंग से चलाने का कार्य कर सकेगी। अस्तु!

ब्यावर की जनता ने भी हमारी चरितनायिका की आकृति देखकर कुछ-कुछ अनुमान जाँच लिया था कि 'यत्राकृति स्तत्र गुणा वसन्ति' जहाँ आकृति होती है वहाँ गुण भी रहते ही हैं। ब्यावर की जनता ने आपको अपने यहाँ ठहराने का अत्याग्रह किया। परन्तु आप कैसे ठहर सकती थीं। आपको तो सोजत की भूमि स्पर्श करने के लिए विहार करना था। और साथ में वयोवृद्धा महासतीजी श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी व केशरकुमारीजी म० भी थीं। उन्हें सोजत धीरे-धीरे ले जाना था। जैन साधु-साध्वी कहीं एक जगह तो बिना कारण डेरा जमा कर रहते नहीं है। अतः ब्यावर से सोजत की ओर प्रस्थान हुआ।

२५

सेवा का कठोरतम-व्रत

मानव-जीवन परस्पर के सहयोग से चलता है। कोई मनुष्य यह सोच कर बैठ जाय कि मैं तो किसी से किसी प्रकार की सहायता न लूँगा, तो उसका काम एक दिन भी न चले। जंगल में एकान्त निवास करने वालों को भी प्रकृति की सहायता की आवश्यकता रहती है। साधु जीवन यद्यपि निस्पृह जीवन है, संसार के प्रपञ्चों में विशेष पड़ने की आवश्यकता नहीं रहती, फिर भी आहार, पानी, वस्त्र-पात्र आदि साधनों के लिए उसे गृहस्थों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि, साधु-साध्वी थोड़ा-सा लेकर बदले में बहुत कुछ देते हैं। लेकिन उनका देन का तरीका और है। साधु जीवन में भी साधुओं या साध्वियों में किसी की अशक्तता के कारण परस्पर सहायता लेनी-देनी पड़ती है। और विशेष सहायता का नाम ही सेवा है। इसे जैन परिभाषा में 'वैयावृत्य' कहते हैं।

सेवा का व्रत बड़ा ही कठोर है। थोड़ी-सी असावधानी से परस्पर कटुता उत्पन्न हो जाती है। थोड़े से 'मैं और तू' के कारण वाक्‌कलह खड़ा हो जाता है। पर सेवाव्रती इन सब बातों को सहन करता है। उसे अपना दिल मजबूत बनाना पड़ता है और 'खणे रुट्ठा खणे तुट्ठा' की वृत्ति छोड़नी पड़ती है। सेवा करने वाले को अपना जीवन एक तरह से दूसरों को बेच देना पड़ता है। अपने मन को कुचल कर नियन्त्रित करना पड़ता है।

उसे उसके पूज्य पुरुष तीर की तरह जहाँ कहीं फेंकें वहाँ जाना पड़ता है। इसीलिए तो नीतिकारों ने कहा है—

सेवा-धर्मः परमगहनो, योगिनामप्यगम्यः ।'

'सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है। योगियों के लिये भी यह अगम्य है।'दूसरे की मनोवृत्ति के अनुसार चलना कितना कठिन है? अपने बनाए हुए मार्ग पर तो सभी चलने को तैयार रहते हैं, पर दूसरों क बताए मार्ग पर चलने में ही बलिहारी है।

हमारी चरितनायिका ने भी अपना जीवन सेवामय बना रखा है। दीक्षा लेने से अब तक चरितनायिका ने अपनी गुरु स्थानीया पूजनीय बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की छत्रछाया में ही अपना प्रामाणिक जीवन व्यतीत किया था और कहीं पर भी उनके और सम्प्रदाय के गौरव को ठेस नहीं लगाई ! दीक्षा लेने के बाद सरलभाव से उक्त-महासतीजी की सेवा में ही अधिक-तर अपने को समपर्ण कर देना और जैन संघ की यथाशक्य सेवा करना ही चरितनायिका का काम था। आपने सेवा करके सतियों के कठोर वचन भी सहे, दूसरी छोटी सतियों की बात मानना भी सहन की। मानो आपकी छाती विधाता ने वज्रमय ही बनाई हो।

ब्यावर से विहार हो गया है। रास्ते की कठिनाइयाँ कम नहीं हैं फिर भी साहसियों के लिये कोई बात नहीं है। यात्री का थक कर बैठ जाना कैसा ? उसे तो चलना है, चले चाहे धीरे ही। श्रीमती वयोवृद्धा केसरकुमारीजी की कमर में काफी दर्द रहता था। सर्दी के दिन थे। कड़ाके की ठण्डी पड़ती थी। फिर भी सेवाव्रत की अनुगामिनी चरितनायिका उनके मार्ग को बहुत हल्का कर रही थी। उनकी रास्ते की सेवा बड़ी सराहनीय थी।

सोजत सिकटवर्ती हो रहा था। सोजत-संघ को जब यह समाचार मालूम हुआ कि हमारे यहाँ धर्म-नौका साध्वीजी स्थिर-

२५

सेवा का कठोरतम-व्रत

मानव-जीवन परस्पर के सहयोग से चलता है। कोई मनुष्य यह सोच कर बैठ जाय कि मैं तो किसी से किसी प्रकार की सहायता न लूँगा, तो उसका काम एक दिन भी न चले। जंगल में एकान्त निवास करने वालों को भी प्रकृति की सहायता की आवश्यकता रहती है। साधु जीवन यद्यपि निस्पृह जीवन है, संसार के प्रपञ्चों में विशेष पड़ने की आवश्यकता नहीं रहती, फिर भी आहार, पानी, वस्त्र-पात्र आदि साधनों के लिए उसे गृहस्थों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि साधु-साध्वी थोड़ा-सा लेकर बदले में बहुत कुछ देते हैं। लेकिन उनका लेन का तरीका और है। साधु जीवन में भी साधुओं या साध्वियों में किसी की अशक्तता के कारण परस्पर सहायता लेनीदेनी पड़ती है। और विशेष सहायता का नाम ही सेवा है। इसे जैन-परिभाषा में 'वैयावृत्य' कहते हैं।

सेवा का व्रत बड़ा ही कठोर है। थोड़ी-सी असावधानी से परस्पर कटुता उत्पन्न हो जाती है। थोड़ी से 'मैं और तू' के कारण वाक्‌कलह खड़ा हो जाता है। पर सेवाव्रती इन सब बातों को सहन करता है। उसे अपना दिल मजबूत बनाना पड़ता है और 'खण रुट्टा खणे तुट्टा' की वृत्ति छोड़नी पड़ती है। सेवा करने वाले को अपना जीवन एक तरह से दूसरों को बेच देना पड़ता है। अपने मन को कुचल कर नियन्त्रित करना पड़ता है।

उसे उसके पूज्य पुरुष तीर की तरह जहाँ कहीं फेंकें वहाँ जाना पड़ता है। इसीलिए तो नीतिकारों ने कहा है—

सेवा-धर्मः परमगहनो, योगिनामप्यगम्य ।'

'सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है। योगियों के लिये भी यह अगम्य है।' दूसरे की मनोवृत्ति के अनुसार चलना कितना कठिन है? अपने बनाए हुए मार्ग पर तो सभी चलने को तैयार रहते हैं, पर दूसरों के बताए मार्ग पर चलने में ही बलिहारी है।

हमारी चरितनायिका ने भी अपना जीवन सेवामय बना रखा है। दीक्षा लेने से अब तक चरितनायिका ने अपनी गुरु स्थानीया पूजनीय बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की छत्रछाया में ही अपना प्रामाणिक जीवन व्यतीत किया था और कहीं पर भी उनके और सम्प्रदाय के गौरव को ठेस नहीं लगाई। दीक्षा लेने के बाद सरलभाव से उक्त-महासतीजी की सेवा में ही अधिक तर अपने को समर्पण कर देना और जैन संघ की यथाशक्य सेवा करना ही चरितनायिका का काम था। आपने सेवा करके सतियों के कठोर वचन भी सहे, दूसरी छोटी सतियों की अव मानना भी सहन की। मानो आपकी छाती विधाता ने वज्रमय ही बनाई हो।

ब्यावर से विहार हो गया है। रास्ते की कठिनाइयाँ कम नहीं हैं फिर भी साहसियों के लिये कोई बात नहीं है। यात्री का थक कर बैठ जाना कैसा? उसे तो चलना है, चले चाहे धीरे ही। श्रीमती वयोवृद्धा केसरकुमारीजी की कमर में काफी दर्द रहता था। सर्दी के दिन थे। कड़ाके की ठण्डी पड़ती थी। फिर भी सेवापथ की अग्रगामिनी चरितनायिका उनके मार्ग को बहुत हल्का कर रही थी। उनकी रास्ते की सेवा बड़ी सराहनीय थी।

सोजत निकटवर्ती हो रहा था। सोजत-संघ को जब यह समाचार मालूम हुआ कि हमारे यहाँ धर्म-नौका साध्वीजी स्थिर

वास के लिए पधार रही हैं तो उन्हें वैसा आनन्द आया जैसे आकाश में घन गर्जन सुनकर मयूर को आता है। एक साथ उन्हें दुगुना लाभ हो रहा था। एक ओर तो स्थिरवास के लिए पवित्र शीला श्रीमतीआनन्दकुमारीजी व केशरकुमारीजी पधार रही थीं दूसरी ओर सोजत भूमि की अमरबेल श्रीमती चरितनायिका। सोजत के लोगों को ऐसा मालूम पड़ता था मानो हमारे घर बैठे कल्पवृक्ष आ रहा हो। उन्होंने बड़े समारोह के साथ आप का शहर में प्रवेश कराया। अब तो सोजत एक प्रकार की आनन्द पुरी बन रहा था। क्यों न बने? जहाँ दो-दो आनन्दकुमारीजी विराज रही हों, वह स्थान आनन्द से खाली कैसे रह सकता है!

सोजत नगर महासतीजी का अपूर्व लाभ ले रहा था। महासतीजी केशरकुमारीजी वृद्ध हो चुकी थीं, अशक्त थीं, फिर भी तपश्चर्या की ज्योति जला रहीं थी। एकाएक उनके कमर में दर्द बढ़ने लगा और उन्हें अपना स्थिरवास सोजत में ही निश्चित करना पड़ा। आपकी परिचर्या में सेवाभाविनी चरितनायिका जुट पड़ीं।

चातुर्मास का अब पूछना ही क्या? वह तो सोजत के ही भाग्य में लिखा था। सोजत-संघ अपने नगर की अनुपम विभूति चरितनायिका की सेवा वृत्ति देखकर मोहित होगया था। उसने आपको बड़ी आशाभरी दृष्टि से देखा। आपमें क्षमा, विनय, मधुरभाषण, कोमलता आदि गुणों को पाकर उनका आशांकुर दृढ़ हो गया। चरितनायिका के परिवार के लोग भी आपकी भव्याकृति, और शास्त्रों के परिशीलन में तन्मयता का अवलोकन कर हर्ष से प्रफुल्लित हो रहे थे। आपके मुखमण्डल पर वैराग्य भावना की उज्ज्वल प्रभा स्पष्टत: झलक रही थी। सभी साध्वियाँ आपके शिष्ट-व्यवहार और विनयशीलता से अत्यन्त सन्तुष्ट थीं। महासतीजी तो आपको अपनी सेवा में रत देखकर हृदय से

साधुवाद देतीं थीं। जब भी कोई विषम परिस्थिति होती तो प्रवर्तनायिका को याद किया जाता। वे झटपट उचित-व्यवस्था करके सारा काम निपटा देतीं।

सोजत की ही बात है। सोजत में कई दिनों से एक वृद्धा आर्या बुआजी ठहरी हुई थीं। वह श्रीमती नन्दकुमारीजी की सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थीं, पर बाद में प्रकृति की अनबन के कारण सम्प्रदाय से पृथक् कर दी गई थी।

प्रकृतियों का काम बड़ा टेढ़ा है। जो मनुष्य अपनी प्रकृति को वश में नहीं रख सकता, वह जहाँ कहीं जाता है, टिक कर नहीं रह सकता। उसके मस्तिष्क में स्वच्छन्द विचरण का भूत सवार होजाता है। बड़े बड़े साधक प्रकृति के खेल में परास्त होगए हैं। प्राचीन काल में भी और आज के नवीन-युग में भी। और सब कुछ कर सकते हैं, कड़ी धूप और सर्दी भी सहन कर सकते हैं, लम्बी-लम्बी तपस्याएँ भी करने में दिक्कत नहीं, उग्रविहार भी सरल है, पर प्रकृति का संयम बड़ा कठिन है। इसी कारण साधुपन में सारा किया-कराया गुड़ गोबर हो जाता है, काता पींजा फिर से कपास बन जाता है। 'स्वभावो दुरतिक्रम' यह वाक्य अक्षरशः सत्य है।

उक्त साध्वीजी भी प्रकृति की झपेट में आगई थीं। उनका स्वभाव बड़ा चपल था। उस पर भी मजा यह कि वे बेले बेले पारणा (दो दो दिन का लगातार उपवास) करतीं थीं। उनकी प्रकृति की यह भी विशेषता थी की वे किन्हीं दूसरी साध्वियों की प्रशंसा सहन नहीं कर सकतीं थीं। सोजत के श्रावकगण बड़ी आनन्दकुमारीजी म० वगैरह की तारीफ उनके सामने करते तो वे बाहर न तो उनके सामने कुछ कह नहीं सकतीं थीं, पर मन ही मन कुढ़ती थी। और कभी उग्र रूप धारण करके कहतीं—लो यह मुट्ठी भर धूल तुम्हारी प्रशंसनीय आनन्दकुमारी

के पीछे ! उसकी कौनसी मोहता है ? यह तपस्या भी नहीं करती, सोजत से विहार भी नहीं होता, कई दिनों से यहाँ आकर जमके मेरी छाती पर बैठी है !!

पर सब दिन एक से नहीं होते। मनुष्य कितना सुन्दर है, नवयुवक है। उठती हुई तरुणाई जब अंगड़ाई लेती है तो आस पास के वातावरण में मादकता भर आती है। सोचता है— प्रत्येक अंग कितना परिपुष्ट एवं मांसल है ? शक्ति और साहस बलात् उछल पड़ता है। परन्तु यह देखो बुढ़ापा ! कितनी भयंकर है उसकी छाया ? उसका नाम सुनते ही केश अपना रंग बदल देते हैं। उसके प्रवेश करते ही शरीर का रंग फीका पड़ जाता है। मुँह से दाँत भी हार मान कर भाग जाते हैं। किसी का मन उसके नजदीक आने का नहीं होता ! जरा की शक्ति अजब गजब की है।

उक्त साध्वीजी को भी जरा-देवी ने आ घेरा। अब वृद्धावस्था उनकी संगिनी बन गई थी। एक दिन कहीं जीने से उतर रही थी तो अचानक ही पैर फिसल गया। गिर पड़ीं। यौवन की सारी शक्ति और मादकता स्वाहा हो गई। उठना बैठना भी दूभर हो गया। दुर्बलता आते ही दूसरे रोगों ने भी मौका देख कर अपना बसेरा कर लिया। व भी आ धमके। और बुढ़ी आर्या को घर दबाया। दिन भर दस्तें लगने लगीं। चलना फिरना भी बन्द सा हो गया। अकेली ठहरीं। अब सेवा कौन करे ! जैन-साध्वी अपने वस्त्र धुलाव गृहस्थों से सेवा नहीं ले सकती। सोजत के संघ में हलचल मची कि क्या किया जाय ? यहाँ बड़ी आनन्दकुमारीजी ठाणा ५ से विराजी हैं, उनके पास जाकर अर्ज करें ताकि वे किसी योग्य साध्वी को भेज कर इनकी परिचर्या करावें। वहीं पर कई समझदार भाई बैठे थे, उन्होंने कहा—उन्हें इनकी सेवा [illegible] किस मुँह से कहा जाय ?

आप जानते नहीं हैं, यह तो उन्हें गालियाँ देती हैं। उनका नाम सुनते ही इनका माथा ठनकने लगता है। तब वे सेवा में कैसे आयेंगी ? उन्हें सेवा के लिए अर्ज भी कैसे की जाय ? पंचों ने कहा—"आपका कहना यथार्थ है। जो व्यक्ति जिसके साथ दुर्व्यवहार रखता है, वह उसकी सेवा में कैसे आ सकता है ? परन्तु वे महासती श्रीबड़ी आनन्दकुमारीजी आदि तो इतनी भाग्यवती और सुशीला साध्वी हैं कि वे तो इनकी बातों पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देतीं। उनका साधु-जीवन प्रशस्त है। वे समता की पगडंडी पर चलने वाली हैं। उन्हें किसी की निन्दा या प्रशंसा से मतलब ही नहीं हैं। अतः हम समझते हैं कि वे सतीजी को ऐसी हालत में देखकर अवश्य किसी आर्याजी को सेवा में भेज देंगीं। उनकी मानसभूमि ऊपरभूमि नहीं है। वह उपजाऊभूमि है।"

कई लोग मिल कर महासतीजी श्रीबड़ी आनन्दकुमारीजी के पास प्रार्थना करने आए। महासतीजी को हालत समझते देर न लगी। उन्होंने सोचा—चुन्नाजी आर्या की प्रकृति तो ऐसी ही है, पर हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। बड़ी आनन्दकुमारीजी उस समय परिसनायिका को साथ में लेकर उठ खड़ी हुई। कई लोग साथ में थे। चुन्नाजी आर्या के स्थान पर आइ। आपने उनकी आकृति वगैरह देखी और कहा— इनकी तबियत तो काफी खराब हो गई है। हमें आपने पहले क्यों नहीं बतलाया ? पहले आकर सम्भाल लेतीं। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब इन्हें जरा बुला कर देखूँ तो सही, इनकी तबियत में क्या अँचता है ? महासती आनन्दकुमारीजी ने आवाज लगाई—चुन्नाजी ! चुन्नाजी ! पर चुन्नाजी तो बोली ही नहीं। अब भी थोड़ी थोड़ी अकड़ थी। रस्सी के जल जाने पर भी उसका बट जैसे बना रहता है उसी तरह तपःशक्ति रूप रस्सी जल गई थी पर अभिमान रूप अकड़ उसमें शेष थी।

भाइयों ने उन्हें कहा। भी सही, देखो आपके पास ये महाभाग्यशालिनी सती पधारी हैं और आप मुख से बोलती भी नहीं। जरा मुंह खोल कर इनसे बात करो। पर उन्होंने अपनी भाषा मुंह में ही बन्द रखी। नहीं बोली सो नहीं बोलीं।

उक्त सतीजी के न बोलने पर भी बड़ी आनन्दकुमारीजी और चरितनायिका के मन में किसी तरह का भी दुर्भाव नहीं था। उन्होंने सोचा—इस अशक्ति की हालत में इन्हें कुछ भी कहना उचित न होगा। आप झटपट गईं और कहीं से प्रासुक जल लाईं और उनके दस्तों से भरे हुए कपड़े साफ किये। उनका बिछौना ठीक किया। 'पेचिस' दस्तों के कारण इतनी दुर्गन्ध फूटती थी कि पास में खड़े हुए आदमी का ठहरना कठिन हो जाय, नाक फटने लगे। पर श्रीबड़ी आनन्दकुमारीजी व चरितनायिका ने अम्लान भाव से उनकी सेवा की। धैर्यधुरन्धरा श्री चरितनायिका अपनी पूजनीय महासतीजी को अपने देखत ऐसे छोटे काम में कब हाथ डालने देतीं? चरितनायिका ने श्रद्धेय महासतीजी से आग्रह करके वह काम अपने हाथ में लिया और उठती हुई दुर्गन्ध की कोई परवाह न करके उनके कपड़े वगैरह साफ किये। सेवा करते समय तनिक भी नाक-भौं सिकोड़ना क्या होता है, यह मानो आप जानती ही नहीं थीं।

यह है सच्ची-सेवा! मुनि-नन्दिषेण ने ऐसी ही कठोर-सेवा वृत्ति अपना कर अपना अमूल्य मानव जन्म सार्थक कर लिया था और उसी के प्रभाव से वे वसुदेव बने थे। सेवा का काम तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। कुशल नटों के लिए कदाचित् तलवार की धार पर चलना सरल हो, पर सेवा की तीव्र धार पर चलना तो बड़ा कठिन है। चरितनायिका की इस सेवावृत्ति को हम सौबार धन्यवाद देते हैं।

उक्त सतीजी की सेवा करते हुए आप दोनों को १५ दिन

करीब हो गए। तबियत दिनोदिन बिगड़ती जा रही थी। सतीजी मरणासन्न होगई थीं। और इस भयंकर रोग के हमले ने अत्यन्त परेशानी कर रखी थी। दोनों महाभागा सतियों ने विचार किया कि अब इनके जीवन की थोड़ी ही घड़ियाँ शेष हैं। न मालूम कब मृत्यु आजाय? इससे पहले ही सावधान होकर हमें इन्हें कुछ त्याग का पाथेय पल्ले बंधा देना चाहिए ताकि इन का जीवन भी कुछ सुधरे"।

दैवयोग से तपस्वी चतुर्भुजजी महाराज उन दिनों सोजत ही विराजते थे। वे अनुभवी और प्रवीण थे। उन्हें बुलाया गया। वह आप और सतीजी की आकृति देखकर कहा—"लक्षण देखते हुए मालूम होता है कि इनके जीवन के थोड़े ही क्षण बाकी हैं। अवसर निकट आगया है। इनकी अफीम छुड़ाकर अनशन (सथारा) कराओ।"

महासतीजी बड़ी व छोटी आनन्दकुमारीजी, दोनों ने सब लोगों की राय लेकर उनका अफीम बन्द कर दिया और यथावसर अनशन भी करा दिया।

उनके अनशन (सथारा) लेने के समाचार सारे शहर में बिजली की तरह फैल गये। झुंड की झुंड औरतें दर्शन के लिए उमड़ पड़ीं। परन्तु उक्त आर्याजी की प्रकृति में इस समय भी काफी विषमता थी। उन्हें अपने सिवाय दूसरे आदमी का बोलना, चालना सुहाता नहीं था। जिन्दगी किनारे लगी हुई है, शरीर में भयंकर व्याधि है, फिर भी हायरी प्रकृति! तू अपनी उगली के इशारे पर नाच रही है!! शान्ति-रवी से तो मानो सतीजी का कई जन्मों का वैर था। वह तो पास में फटकती ही नहीं थी। जो भी बहनें दर्शन करने आती, उन्हें कहने लगीं–निकलो यहाँ से, यहाँ मेरा दर्शन करने आई सो ठीक नहीं रहेगा। इधर तो क्रोध की पुतली पुष्पाजी आर्या अन्दर अनशन किये हुए पड़ी

रहीं। उधर शान्तमूर्ति चरित्रनायिका बाहर ही सब बहनों को मांगलिक सुना रहीं थीं। एक ही जगह दो प्रकार के दृश्य देख कर लोग आश्चर्यान्वित हो रहे थे।

अनशन कराने पर अफीम छूट गया, जिससे खूनी दस्त लगने लगे। दिन रात में तीस-तीस चालीस चालीस का ठिकाना नहीं था। फिर भी धन्य हैं ऐसी सेवामूर्तियों को जो अपने कर्त्तव्य से जरा भी विचलित नहीं हुई और पवित्र भाव से उनकी सेवा करती रहीं।

रात को उपाश्रय के बाहर ही दुकानों पर सोने वाले लोगों ने यह हालत देखी तो परस्पर कहने लगे—धन्य है इन सतियों को! ये साक्षात् मूर्तिमती सेवा की देवियाँ हैं! ऐसी सेवा तो चिरसंगिनी और विवाहित पत्नी भी नहीं कर सकती। वह भी ऐसी कठिन सेवा में मुंहमोड़ कर चली जाती है। कोई न कोई बहाना बना लेती है! पर इन साध्वियों का जीवन देखो! ये तो सेवा बजाकर पुण्य की राशि लूट रही हैं। अपने चिर सञ्चित कर्मों को झाड़ रहीं हैं!

भादों का महीना है। वर्षा से सारी गली में कीचड़ ही कीचड़ हो गया है। चलते समय पैर फिसल जाते हैं। बीच बीच में बौछारें अलग तंग कर रही हैं, फिर भी सेवा की कठोर राह पर चलने वाली साहसिन साध्वी रात्रि में परठने के लिए बीस-बीस तीस-तीस चक्कर लगा रही हैं। अपने तन-मन से सेवा कर रही हैं। क्या आप बता सकते हैं, यह सेवा-व्रतिनी कौन है? सम्भव है आप का हृदय कुछ निर्णय न करे, मैं ही बता दूँ? यह हैं, अपने महान साध्य पर दृढ़तापूर्वक चलने वाली चरित्रनायिका—साध्वी श्रीआनन्दकुमारीजी।

आपका उद्देश्य कितना महान् है? कहाँ तो उक्त सतीजी का चरित्रनायिका आदि से इतना विरोध और संघर्ष, और कहाँ

चरितनायिका उनकी सेवा के लिये तैनात हैं। अपकार के बदले उपकार। जहर के बदले अमृत !! धन्य है चरितनायिका को, ऐसी अलौकिक हृदयवाली तो आप ही हैं।

उक्त सतीजी का संथारा (अनशन) २७ दिन में पूर्ण हुआ, श्रावकों ने उनकी शवयात्रा निकाली और अंतिम-संस्कार किया। सोजत के श्रीसंघ ने आप दोनों महासतियों की सेवा का अभिनन्दन किया। आपकी गुण-गाथाएँ प्रत्येक सोजत निवासी जैन के मुख पर गाई जाने लगीं। श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी म० व चरितनायिका ने लोगों से कहा—"भाइयो, इसमें हमारी कोई प्रशंसा जैसी बात नहीं है। हमने तो अपना कर्त्तव्य अदा किया है। सेवा के ऐसे प्रसंग तो ढूंढने पर ही नहीं मिलते हैं। हमने उन सतीजी की सेवा की, उसके बदले हमारी प्रशंसा करके आप सेवा का मूल्य मत घटाओ। मानव जीवन का उद्देश्य यही है कि वह अपने को पहले से आगे बढ़ावे।"

सोजत संघ के अग्रगण्य लोगों ने आपसे बहुत से त्याग लिये। अब तो उनके घर में ही कामधेनु थी, वे जब चाहते तब जिनवाणी रूप दूध का दोहन कर लेते। सोजत के संघ को महा भाग्यशालिनी बड़ी आनन्दकुमारीजी व चरितनायिका जैसी साध्वियों का सुयोग मिल गया था। अब वह अन्यत्र चातुर्मास की याचना करने क्यों जाय? संवत् १९६२ से लगाकर १९७१ तक लगातार १० चातुर्मास चरितनायिका को, फजरकुमारीजी म० की वृद्धावस्था के कारण सोजत में ही करने पड़े।

आप पूछ बैठेंगे, क्या दूसरी जगह नहीं थी, चातुर्मास करने के लिए? यदि थी तो फिर एक ही स्थान पर क्यों?

मैं पहले बता चुका हूँ कि साधु जीवन में तपस्या, उपकार आदि से बढ़कर काम सेवा का है। उसका नम्बर सब से पहले है। इसी कारण महासतीजी की सेवा में रहकर आपने १०

समझाएँ ? शिष्यों पर जादू की लकड़ी फिरा कर धन हरण करना और बात है और उनके मन को हरण करना दूसरी बात है। कंचन और कामिनी के लोभी गुरु नहीं हो सकते। गुरु वह है जो शिष्य के हृदय पर आध्यात्मिकता की छाप डाले। जो अज्ञान रूप रतौंधी को मिटा कर ज्ञान भानु का प्रकाश न कर दे वह गुरु ही क्या है ? ऐसे गुरु शिष्य के सद्भाग्य से ही मिलते हैं। और यह बात भी सोलहों आने सत्य है कि किसी भाग्यशाली गुरु को ही योग्य शिष्य की प्राप्ति होती है। योग्य गुरु और योग्य शिष्य की अनुपम जोड़ी वस्तुतः सोने में सुहागे की-सी है।

श्रद्धेय बड़ी आनन्दकुमारीजी व चरितनायिका का विक्रम सं० १९६२ का चातुर्मास मोमत में ही था। चातुर्मास के बाद की बात है। उस समय क्रान्तिकारी-युगद्रष्टा जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज थाँदला में विराजित थे। थाँदला की धर्म-प्रेमी बहिन मूलीबाई को पूज्य श्री के प्रभावोत्पादक व्याख्यान सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया था। अन्तर में सच्ची जागृति होने के बाद कोई विरला ही संसार की वासना में फँसता है। संसार का जिसने खतरे की घंटी समझ लिया है वह ऐसे खतरनाक स्थल में कितने दिन तक रहेगा ?

एक दिन अवसर पाकर मूलीबाई ने अपने दीक्षा लेने के विचार पूज्यश्री के सामने रखे। वे बड़े चतुर और व्यक्ति की परख करने वाले सच्चे जौहरी थे। सुनते ही पूछा—स्पष्ट कहो तुम्हारा क्या विचार है ? मूलीबाई—मैं जैन-दीक्षा लेकर अपना कल्याण करना चाहती हूँ। मैंने संयम के मार्ग की यात्रा करने का दृढ़ विचार कर लिया है।

पूज्यश्री—मार्ग कठिन है, कुछ समझ भी लिया है, या यों ही सनक में आकर कह रही हो ?

"मैंने अपने दिल को अच्छी तरह से टटोल लिया है। मेरा दिल तो इन सब द्वन्द्वों को सहने के लिए तैयार है।"

"किनके पास दीक्षा लेना चाहती हो ?

यही तो मैं आप से पूछने आई हूँ कि मैं किसकी पवित्र छाया में आश्रय प्राप्त करूँ ? मेरे संयम, तप और ज्ञान में वृद्धि हो ऐसी कोई जगह बताइये, ऐसा कोई झरना बताइये, जहाँ मैं अपने जीवन कल्याण की पिपासा मिटा सकूँ। ऐसी आश्रय दात्री बताइये जो शान्त और गम्भीर हो।

पूज्य श्री—"ठीक है, वास्तव में तुम्हारे विचार अभिनन्दनीय हैं। जिस किसी की शरण में जाना हो उसे शरण्य की जाँच पड़ताल तो पहले ही करनी चाहिए। पीछे अपनी प्रकृति न मिलने और आध्यात्मिक जिज्ञासा पूरी न होने पर मन में अनुताप करने की अपेक्षा पहले ही सोच समझ कर काम करना बेहतर है।" मेरी दृष्टि में सोजत में एक ही नाम की दो भाग्य शालिनी सतियाँ हैं, उनका आश्रय लेना ठीक रहेगा। वे दोनों आनन्दकुमारीजी हैं। उनका सौम्य स्वभाव, अपूर्व प्रतिभा और चारित्रनिष्ठा को देखकर तुम्हारा मन और कहीं आकर्षित नहीं होगा। उनके चरणों की शरण पाकर तुम आगे बढ़ो और अपना कल्याण करो।"

पूज्य श्री ने वैरागिन मूलीबाई के हृदय में आपके प्रति प्रेमांकुर पैदा कर दिये। मूलीबाई पन्नालालजी राव को साथ में लेकर उदयपुर, ब्यावर आदि स्थानों में सतियों के दर्शन करती हुई आपकी सेवा में सोजत पहुँची।

मूलीबाई ने श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी व चरित नायिका से काफी बातचीत की। उनके सदाचरण और ज्ञान की ज्योति की परख की। पहिले तो साधारण परिचित थीं ही, बाद में उनमें असाधारण धर्म-प्रेम बढ़ता चला गया। महासतीजी के

चरणों का स्पर्श पाकर भला वह संस्कारी आत्मा अलग-थलग कैसे रह सकती थी ? मूलीबाई ने महासतीजी को अपना सकल्प सविस्तार सुनाया। कहा—मुझे अब शीघ्र ही इस संसार-दावा नल से निकाल कर अपनी छाया में स्थान दीजिये।

महासतीजी बड़ी दूरदर्शिता से काम लेती थीं। वह सहसा किसी नए आगन्तुक को कैसे दीक्षा प्रदान कर सकती थीं ? उन्होंने मन के अन्दर गहरी दृष्टि डाली। नवीन वैरागिन में दुर्बलता सबलता की खोज करने लगीं। साधुता का प्रश्न सहज नहीं है। पूरी जांच पड़ताल के बाद ही योग्य साधक को इस पथ पर लेना चाहिए। योग्य गुरु संख्या बढ़ाने की लालसा में पड़कर मु ड-मण्डली की भर्ती नहीं करता। वह अच्छी तरह जाँच-परख कर ही कोई कदम बढ़ाता है। और जब वह ऐसा करता है, तो संसार उसके कार्यों को देखकर चमत्कृत हो उठता है। जैनधर्म गुण को महत्ता देता है, संख्या को नहीं।

चरितनायिका व उनकी श्रद्धेय महासती श्रीबड़ी आनन्द कुमारीजी दोनों इस बात में पक्की थीं। आपने सोचा—"इसे हमारे किसी उपदेश के बिना ही वैराग्य का रंग चढ़ा है, और स्वयं दीक्षा देने के लिये कह रही है, अत: शिष्या के लोभ में पड़ कर हमें झटपट इसे मूड नहीं लेना चाहिये। पहले हमें इसके खानदान, प्रकृति, इज्जत, आचरण आदि की जाँचपड़ताल करनी चाहिये"।

आपने पन्नालालजी राव से उक्त वैरागिन बाई के विषय में पूछताछ की। उनसे यह पता लगा लिया कि मूलीबाई की प्रकृति शान्त है। कई दिनों से वैराग्य-दशा में हैं। साधु जीवन की कई क्रियाओं का पालन भी कर रही है और खानदान घरान की है। अपने गाँव में इज्जत आबरू भी अच्छी है। संयम का भार सहन कर सकेगी।" परन्तु मनस्वी और धीर पुरुष

सहसा कोई काम किसी के कहने पर भी नहीं कर बैठते। आपने मूलीबाई से साक्षात् पूछने का विचार किया और कहा—क्यों साध्वी किस लिये बनना चाहती हो ? क्या घर में कुछ दुःख है ?

मूलीबाई— नहीं, गुरुदेव कोई दुःख नहीं। भरापूरा घर है। आत्म कल्याण के लिये ही इस मार्ग पर आना चाहती हूँ।

महासतीजी—तो संरक्षकों की आज्ञा ले आई हो ?

हाँ, आज्ञा तो लेकर ही आपके पास उपस्थित हुई हूँ। बिना आज्ञा के तो आप दीक्षा ही कैसे दे सकतीं हैं ! यह मैं जानती हूँ।

महासतीजी ने अब मूलीबाई के सामने संयम के कष्टों आदि का जिक्र किया और कहा—देखो जैन-दीक्षा पालन करना बड़ा कठिन काम है। दीक्षा कोई बच्चों का खेल नहीं है। यहाँ तो सीधे ही अपने को कष्ट की भट्टी में झौंकना पड़ता है'। फिर आपने लोच, पैदल चलना, यावज्जीवन रात्रि भोजन त्याग सर्दीगर्मी आदि परिषहों की कष्ट-कथाएँ सुनाई । पर मूलीबाई का वैराग्य सोडावाटर का उफान नहीं था, जो शीशी खोलते ही उड़ जाता। उनका निश्चय पक्का रंग ले चुका था। मन, वचन और काया में सर्वत्र प्रसन्नता थी। वैराग्य की आभा मुखमण्डल पर स्पष्ट झलक रही थी। सुनते ही कहने लगीं—यह कष्ट-कथाएँ मुझे विचलित नहीं कर सकतीं। मैंने अपने लक्ष्य का निर्णय कर लिया है। मैं संयम के तमाम कष्टों को सहने के लिये तैयार हूँ।

बात पक्की हो चुकी थी। वैरागिन अपनी परीक्षा में खरी उतरी। महासतीजी ने अपना निर्णय उन्हें सुना दिया—'तब ठीक है। शुभस्य शीघ्रम्। अपनी तैयारी करो।' वैरागिन बाई ने

कहा—'महाराज, दीक्षा तो मेरे ग्राम में पधार कर दीजिए। आपने मेरी कसौटी की है, और मुझे अपने प्रेम से आकर्षित किया है तो मेरी बात भी आपको रखनी पड़ेगी। आप थाँदला पधारने की कृपा करें। थाँदला-संघ सब तरह से समर्थ है। वह धर्मवीर आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज की जन्मभूमि है। चारों ओर पर्वत श्रेणियों से घिरा होने के कारण उसकी रमणीयता और बढ़ गई है। साधु साध्वियों के लिए तो वह स्थान बड़ा प्रशस्त है। क्या आप मेरी जन्मभूमि को यह लाभ न देंगी?

महासतीजी ने उत्तर दिया—तुम्हारी प्रार्थना उचित ही है। परन्तु इस समय मेरी परिस्थिति इन वृद्ध-साध्वियों की सेवा छोड़ कर जाने जैसी नहीं है। अगर मैं स्वतन्त्र विचरण करती तो अवश्य तुम्हारी जन्मभूमि में जाकर ही दीक्षा देती। सेवा धर्म का महत्त्व दीक्षा से कम नहीं है। तुम्हें अगर संसार से सच्ची विरक्ति हो गई है तो वहाँ और यहाँ में क्या फर्क है? जैसी वहाँ दीक्षा होगी वैसी ही यहाँ होगी। सोजत-संघ तुम्हारी दीक्षा अच्छी तरह से अपने यहाँ करा सकता है।

मूलीबाई के हृदय में निर्मलता और निष्कपटता थी। उन्होंने कहा—'तब ठीक है महाराज, मैं आपसे ज्यादा आग्रह नहीं करूँगी। आपको व्यर्थ ही परेशानी में डालने से मुझे क्या मतलब है? मेरी दीक्षा यहीं होने दीजिये।'

सोजत के लोगों के दिल में दीक्षा की बात सुनकर हर्ष का सागर हिलोरें लेने लगा। दीक्षा-महोत्सव की धूम मची हुई थी। वैरागिन बाई अपने परिवार के नौ व्यक्तियों को साथ लेकर सोजत आई। दीक्षा का सब प्रबन्ध थांदला-संघ की ओर से था। सोजत शहर के बाहर रामद्वारा के विशाल मैदान में वटवृक्ष के नीचे दीक्षा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए विशाल मानव-मेदिनी एकत्रित हुई। दीक्षा देने का समय आया

तो श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी म० ने वैरागिन को दीक्षा का पाठ सुनाया। विक्रम संवत् १६६२ चैत सुदी १० के दिन शुभ समय में दीक्षा विधि बड़े आनन्द के साथ सम्पन्न हुई। श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी ने हमारी चरितनायिका के निश्राय में इस शिष्या को किया। साध्वीश्री मूलीबाई के जीवन की बाग डोर चरितनायिका के हाथों में सौंपी। श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी की इस निस्पृहता और त्याग के लिए हम उन्हें कोटिश धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। आज के पवित्र दिन की स्मृति कभी भुलाई नहीं जा सकती। आज के दिन जहाँ योग्य शिष्या को योग्य गुरुनी मिली तो वहाँ योग्य गुरुनी को भी योग्य शिष्या मिली। दोनों एक दूसरे को पाकर जीवन-यात्रा में सफल हो सकीं।

कष्टों का पहाड़

मनुष्य-जीवन की सच्ची परीक्षा विषम-परिस्थितियों में हुआ करती है। कौन मनुष्य कितना धीर और वीर है, इसका पता घर में आराम से गद्दों पर लेटनेवाले के सम्बन्ध में कैसे लग सकता है? अपने घर में तो सभी शूरवीर कहलाते हैं। एक कुत्ते जैसा प्राणी भी अपनी गली में शेर बन जाता है। सच्ची शूरता का पता तब लगता है, जब कष्टों के पहाड़ सामने हों, विघ्न बाधाएँ खड़ी खड़ी हों, मौत की घंटी सामने नाद कर रही हो, जीवन का चंचल दीपक एक ही हवा के झोंके में बुझने वाला हो, भय और आतंक की ज्वालाएँ सब ओर से लपलपाती हुई बढ़ रही हों। इस प्रकार की संकटापन्न परिस्थिति में जो अपने कदम पीछे न रक्खे, भय से जरा भी विह्वल न हो वही धीर और वीर है।

साधु-जीवन का मार्ग फूलों का मार्ग नहीं है। बड़ी २ आकाश पाताल को एक कर देने वाली बातें करनेवाले पुरुष भी इस मार्ग पर लड़खड़ा जाते हैं, विकट समय में वे भी हार खा बैठते हैं। धैर्यशाली पुरुष ही इस पथ का सच्चा यात्री हो सकता है। जो कायर और बुजदिल है, जो संकट की घड़ियों में चीख उठता है, अपने मार्ग से फिसल जाता है, वह साधुता के उच्च शिखर पर नहीं चढ़ सकता। वह साधु जीवन ही क्या, जिसमें मौत का नाम सामने देख कर आँखों से आँसू आ जाए?

चरितनायिका ने जीवन में कई उथल पुथल की परिस्थि तियाँ देखी हैं। उन्होंने अपने जीवन में सुख भी देखा है और दुःख का भी साक्षात्कार किया है। वे कोमल शय्या के सुख का भी अनुभव कर चुकी हैं और कठोर चट्टान की शय्या भी अंगी कार कर चुकी हैं। वे न सुख में फूलीं और न दुःख में घबराईं। भयभीत होना उनकी प्रकृति में नहीं है। भयंकर से भयंकर दृश्यों को देख कर उनका अटल साहस्य चमकने लगता है। वे जहाँ जाती हैं वहाँ अपना व्यक्तित्व का चमत्कार दिखाती हैं। उनके लिये जंगल में भी मंगल हो जाता है।

आप सोजत स चातुर्मास उठाकर श्रीमती प्रवर्तिनीजी मेंय' कुमारीजी की सेवा में पधारती हैं। वहाँ भी श्रीमती चांदबाई की दीक्षा आपके ही कर कमलों द्वारा सम्पन्न होती है। विक्रम सं० १९७० है, चैत्र का महीना है। चैत्र वदी में दीक्षा देकर ज्यों ही आप सोजत श्रीकशरकुमारीजी म० की सेवा में लौटती हैं, वहाँ भी इन्हीं साध्वीश्री चाँदबाई की सुपुत्री केशरबाई की दीक्षा थी। उस दीक्षा के देने में भी आपका पवित्र हाथ रहा।

इधर वैशाख मास में केशरबाई की दीक्षा हो जाती है, उधर पूज्यश्री चौथमलजी म० के पट्टधर कठोरचारित्री पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का सन्देश आता है कि "जोधपुर श्रीसंघ काफी उत्साह और धर्म प्रेम है। यहाँ की बहनें चाहती हैं कि कोई साध्वीजी म० चातुर्मास करें तो हम भी धर्मध्यान अच्छी तरह कर सकें। श्रीमती छोटी आनन्दकुमारीजी विदुषी हैं और प्रभावशालिनी हैं। वे जोधपुर आना चाहें तो आ सकती हैं।" पूज्य श्री के इस सन्देश में 'एक पन्थ दो काज' वाली कहावत पूरी उतरती थी। धम का प्रचार और आचार्यश्री की सेवा व उनके शास्त्रीय अनुभव। इस स्वर्ण-अवसर को भला चरितनायिका कब टाल सकती थीं? नवीन-शिष्या को दीक्षा देकर आप

सोजत के बाहर ही ठहरी हुई थीं। मारवाड़ में यह प्रथा है कि नवदीक्षित को दीक्षा लेते ही गाँव या शहर के अंदर नहीं रखते हैं। शायद गाँव में प्रवेश करने पर उस कहीं घर की याद आने लगे, उच्च-प्रासाद देख कर मोह स घिर जाय, उसका वैराग्य रफू-चक्कर होजाय! सन्यास लेकर उसी समय घर की ओर मुख मोड़ना, सम्भव है, घरवालों के मोह का कारण बन जाय! इस प्रथा में क्या रहस्य है, यह तो ज्ञानी जानें!

हाँ, तो बड़ी आनन्दकुमारीजी म० ने आपको जोधपुर की ओर विहार करने की आज्ञा दे दी। एक तो चरितनायिका थीं और तीन थीं नवदीक्षिताएँ—मूलीबाई, चाँदबाई और कशर बाई। इस तरह चार ठाणे स सोजत से विहार हुआ। सोजत के कई बहन और भाई बहुत दूर तक आपको पहुँचाने आये। मंगल मांगलिक श्रवण कर वापिस लौटे। आप अब छोटे-छोटे ग्रामों में भ्रमण करती हुई पधार रहीं थीं।

वैशाख का महीना समाप्ति पर था। गर्मी बड़े जोर से पड़ रही थी। राजपूताने में इन दिनों कितनी कड़ी धूप पड़ती है, यह तो व भुक्तभोगी ही बता सकते हैं, जो रेगिस्तान के बालू के टीलों पर नंगे पैरों चले हों। खुले सिर पर ऊपर स सूर्य का प्रचण्ड सन्ताप है, पसीने से सारा शरीर तरबतर है और नीचे भाड़ की तरह जलती हुई बालुका। छाया भी रेगिस्तान में बहुत इंतजार करने पर मिलती है, वह भी कंटीले वृक्षों की छाया! दोनों ओर का यह दुःसह ताप यात्री की सच्ची कसौटी कर लेता है। मारवाड़ की यह यात्रा कितनी महँगी पड़ती है, यह तो अनुभव करने पर ही जाना जा सकता है। ऐसे कष्टकर पथ पर स्वार्थ-साधना के लिये चलने वाले तो बहुत मिल सकते हैं, पर परमार्थबुद्धि स अपने प्राणों का मोह त्याग कर विचरण करने वाली चरितनायिका जैसी महान् आत्माएँ विरली ही होंगी।

तो भी इस घोर संताप को सहती हुई चरितनायिका व साध्वियाँ मरुधर-देश के शिरोमणिभूत जोधपुर की ओर प्रयाण कर रही थीं। उष्णता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उसने अपना प्रभाव भी दाख दिया। धिनाव के आसपास आप रुपाव ग्राम में पहुँची होगी, इतने में छोटी-साध्वी चान्दबाई को दाहज्वर का प्रकोप होगया, सारा शरीर तवे के समान तप रहा था। अपनी शिष्या का यह हाल देख कर चरितनायिका खुद परिचर्या करने में जुट पड़ीं। दूसरी साध्वियों को गाँव में धोवन पानी तलाश करने भेजा। चार-पाँच कोस चल कर आई हैं, थकान से पाँव चूर-चूर होरहे हैं, फिर भी रोटी-पानी की तलाश करने के लिए खुद को ही जाना होगा। साधुता का मार्ग कितना कठिन है? कच्चे जोगियों की यहाँ आकर परीक्षा होजाती है।

साध्वियाँ गाँव में आहार पानी की तलाश में घूमने लगीं। यहाँ कोई जैनियों के घर तो थे नहीं कि घरों में जाते ही मिल जाता। कई घरों में ग्रामीण लोगों ने बड़ा स्वागत किया और भक्तिभाव से आहार पानी बहराया। कई जगह नहीं भी मिला। फिर भी साध्वियों ने साहस नहीं छोड़ा और किसी तरह से जितना मिला उतना लेकर आई। चाँदबाई आर्याजी को पहले आहारपानी देकर फिर चरितनायिका व दूसरी साध्वियों ने थोड़ा-थोड़ा आहार किया। इधर तो यह परिचर्या होरही थी। ग्राम के लोगों ने साध्वीजी की यह हालत देखी और जैन-साध्वियों की कठिन-चर्या देखी तो वे दंग रह गए। कितने ही लोग आपके परम भक्त बन गए। आपकी मीठी वाणी और धर्म-कथाएँ सुन कर लोगों ने आपसे कहा—"यह साध्वीजी जब तक ठीक न होजाएँ तब तक आप यहीं ठहरिये। हम आपकी सेवा करेंगे।" आपकी भी यही इच्छा थी। अतः यहाँ पर ही ठहरने का निर्णय कर लिया। जेठ सुदी १२ तक साध्वीजी का उपचार

चलता रहा। अब वे काफी स्वस्थ होगई थीं।

इसी बीच में 'सायीया' ग्राम में कितने ही लोगों ने यह अफवाह फैलादी कि "आनन्दकुमारीजी साध्वी ने चौरवाई आर्या को छोड़ दी और उनकी बेटी केशरजी आर्या को रखली। 'सायीया' में चान्दबाई आर्याजी का सांसारिक पीहर था। वहाँ से उनके सांसारिक भाई मेघराजजी इस घटना की छानबीन करने आये। वे उधर के गाँवों में घूमते घामते 'रुपाव' आ पहुँचे। उन्होंने अपनी आँखों से जब यह देखा कि उनकी गुरुनी (चरित नायिका) खुद सेवा में लगी हुई हैं और बीमार साध्वी की सारी व्यवस्था कर रही हैं तो, मेघराजजी दंग रह गये। उन्होंने चरित नायिका से कहा—'आप तो अपनी शिष्या की खूब सार सम्भाल करती हैं बड़े प्रेम से रखती हैं, लोगों ने यों ही गप्प उड़ादी। मुझे आपकी चर्या देख कर बड़ा संतोष हुआ है। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मेरे मन में आपके प्रति ऊँचेनीचे परिणाम आगये थे। आप तो महाभाग्यवती सती हो।" चरित-नायिका ने बड़ी गम्भीरता से कहा—'क्या हमने इन्हें छोड़ने के लिये लिया था ? आप कभी यह विचार न करें कि साध्वियों को ही बीच में धर्मधक्का देकर निकाल देंगी, या छोड़ देंगी। क्या हमें ये कड़वी लगती हैं ? मेरी तरफ से आपको माफी है। मुझे तो आपके प्रति जरा भी द्वेषभाव नहीं है।' मेघराजजी वन्दना कर चल गये।

देखिये, झूठे आरोप देने वाले को भी शान्ति से उत्तर देना और अपनी समता न खोना, यह चरितनायिका में कितना उज्ज्वल गुण है ? थोड़ी-सी बात सुनने पर क्षुद्रपुरुषों के हृदय में क्रोध का साँप फुफकारने लगता है; पर महापुरुषों की प्रकृति में यह बात नहीं होती।

हाँ, तो प्रस्तुत विषय पर आइये। अठ्ठाई १४ तक और

बाई आर्याजी की तबियत ठीक हो गई थी। चरित्तनायिका ने कोमलता से पूछा—क्यों बाई, अब तुम्हारी तबियत ठीक है?

"हाँ, अब तो आपकी कृपा से मैं काफी स्वस्थ हूँ। दो चार कोस तक चल भी सकती हूँ।"

"देखना, कहीं फिर तबियत बिगड़ न जाय। तुम खुशी से चल सकती हो तो चलो।"

हाँ मैं प्रसन्नतापूर्वक चल सकती हूँ। चलिये, पधारिये!

चरित्तनायिका ने सोचा—इन बुढ़ी आर्या को ओसपुर लेकर चलना बड़ी टेढ़ी खीर है। अभी अचानक इनके अशान्ति हो गई। भाग्य से गाँव सुलभ मिल गया, नहीं तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। अत सोजत लौटना ही ठीक रहेगा। सब ने सोजत की ओर प्रस्थान किया। चाँदबाई आर्याजी को छोड़ कर तीनों साध्वियों को उपवास था। गर्मी कम न थी। जेठ की दुपहरी तो हर जगह भयानक होती है। साथ में दो गोरी दही और कुछ पानी लेकर चल पड़ीं। गर्मी बार बार सताती थी। साथ में बीमारी से तुरन्त उठी हुई आर्या थी, अत थोड़ी थोड़ी दूर पर उठत-बैठत, किसी तरह दो कोस का मार्ग काटा। वहाँ से श्मशान के पास आई वहां से सोजत करीब आध कोस रहा होगा इतने में तो आर्याजी चक्कर खाकर धड़ाम से गिर पड़ीं। प्यास के मारे कण्ठ सूख गए थे। बोला नहीं जा रहा था। इशारे से धोवनपानी पीने को मांगा। साथ में जितना पानी लेकर चली थीं, वह सारा पी चुकी थीं। बड़ी मुसीबत हुई। ग्राम पास में नहीं, बीमार प्यास स तड़फड़ा रहा है, क्या करें? कड़ कड़ाती हुई गर्मी! तपी हुई बालुका! ऐसे समय में धैर्य की परीक्षा होती है। ऐसे समय में फकीरी का पता लगता है! अब कच्चे व्यक्ति तो परिषहों की मार खाकर गीदड़ की तरह संयम के क्षेत्र को छोड़ कर भाग जाते हैं। परन्तु चरित्तनायिका के

के पास हलवाइयों की दूकानें हैं, वहाँ जाकर पूछो। वे देदें तो दे दें।'

चरितनायिका ने आशा का पल्ला नहीं छोड़ा था। उन्हें आशा थी कि वहाँ जाने पर तो मिल ही जायगा। चलीं। रास्ते में एक किसान का लड़का छाछ की हँडिया लिये जारहा था उससे कहा—'भाई, हमें बड़े जोर की प्यास लगी है। तेरी इच्छा हो तो यह छाछ दे सकता है।' किसान का लड़का बड़ा सीधा था। उसने हँडिया में जो थोड़ी सी छाछ थी, वह बहरादी। पर इतनी सी छाछ से क्या होना था? वह तो होठों तक आकर सूख जाती। आखिरकार हलवाइयों की दूकानों पर आई। वहाँ पर सहज ही धोवण (कड़ाहों का धोया हुआ पानी) रक्खा था। परिश्रम सफल हुआ। कुछ जी में जी आया। हलवाइयों से आपने कहा—'यह धोवन अगर आप लोगों की इच्छा हो तो हमें देदो। हमारे साथ में एक साध्वी हैं। वह बहुत घबरा गई हैं। उन्हें हम पीछे छोड़ कर आई हैं। हमें भी कड़ी प्यास लगी है।' हलवाई ने कहा—ऐसा गन्दा धोवन तो हम नहीं देसकते। हमारे यहाँ धर्मशास्त्रों में गन्दा पानी देन से भविष्य में गन्दा ही मिलता है, ऐसा कथन है। और कहीं पानी ढूढ़ो।' चरित नायिका ने कहा—'भाई, इस समय हमारी साध्वी की तो जान जाने की नौबत आगई है और तुम अपनी फिलोसॉफी छाँट रहे हो। हमारा यह नियम है कि हम धोवण या गर्म पानी के सिवाय और पानी नहीं लेतीं। तुम्हें इसे में हर्ज ही क्या है? फालतू ही तो फेंकोगे। इसकी अपेक्षा हमारे काम में आये तो क्या हानि है? हलवाई किसी तरह भी देने को तैयार नहीं हुआ। पास में एक सज्जन व्यक्ति बैठा था, जो जैन था। उसने हलवाई को समझाया कि इन्हें यह धोवण देदो। ये ऐसा ही धोवण पीती हैं। तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। हलवाई ने यह समझ कर सारा

धोवण आपको बहरा दिया। दो पात्र पूरे भर गये थे। धोवण मिलने पर मन को सन्तोष हुआ। आपको घोवण मिलते ही थोड़ी सी छाछ दोनों सतियों ने पीकर वापिस लौटने का इरादा किया।

इधर चान्दकुंवरजी का जी काफी घबराने लगा। बेहोशी आगई। केशरजी आर्या ने देखा कि अब इनके शरीर में चैन नहीं है, चेहरा निस्तेज होता जाता है। मृत्यु के लक्षण दिखते हैं। उन्होंने उसी समय अपनी माता आर्याजी को संथारा (अनशन) करा दिया। इधर तो आप दोनों पानी लेकर पहुंचती हैं, उधर उनके प्राणपखेरू उड़ गये थे। हा! काल की गति बड़ी विचित्र है। यह दशा पत्थर को भी कम्पा देने वाली थी। पर काल के क्रूर हाथों के आगे मनुष्य का बस ही क्या है! किसी तरह उनकी पुत्री केशरजी आर्या को आश्वासन दिया गया और सोजत क संघ को समाचार पहुँचाए गये। उस दिन चतुर्दशी थी अत कई लोगों के पौषध थे। यह वज्रपात सी खबर सुनकर लोगों को मार्मिक व्यथा हुई। शहर स ३२ जने मिलकर आये और साध्वीजी का अन्तिम-संस्कार किया।

चरितनायिका क धैर्य और साहस का यह ज्वलन्त प्रमाण है। एक तरफ तो पृथ्वी जल रही है, खुद को प्यास लगी है, दूसरी ओर अपनी शिष्या प्यास से छटपटा रही है। इस विकट प्रसंग में भी उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पूर्णत पालन किया है।

सभी साध्वियाँ वहाँ से भण्डोपकरण उठाकर सोजत शहर पधार गईं। जोधपुर जाना लिखा नहीं था। उसमें कमी अन्तराय थी। अत आप जोधपुर चातुर्मास के लिये नहीं जा सकीं। वह चातुर्मास सोजत में ही हुआ।

चातुर्मास उठने पर आपका विहार पीपाड़ (मारवाड़) की ओर हुआ। पीपाड़ के संघ ने आपकी वाणी का काफी लाभ

उठाया। धर्म ध्यान का ठाठ लग रहा था। पीपाड़ श्रीमान् जवरचन्दजी सिंघी की धर्मपत्नी महताबकुँवर आपके वैराग्योत्पादक व्याख्यान सुनकर संसार के प्रपञ्चों से विरक्ति होगई। उन्होंने अपने दीक्षा लेने के विचार चरित नायिका के सामने प्रगट किये। महासतीजी ने उनकी प्रकृति, ज्ञानाभ्यास आदि की पूछताछ की व दीक्षा लेने का कारण पूछा। उन्होंने सारी बातों का सन्तोष जनक जवाब दिया। महासतीजी ने उन्हें अपने कुटुम्बियों से आज्ञा प्राप्त करने के लिये कहा। महताबकुँवरबाई का परिवार काफी बड़ा था, अत: कुटुम्बियों से आज्ञा प्राप्त करना बड़ा कठिन काम था। परिवार वालों से आज्ञा के लिए कहने पर उन्होंने कहा—तुम तो दीक्षा लेने को तैयार हुई हो, लेकिन यह कुमारी कन्या क्या करेगी? इसे किसके आश्रय पर छोड़ जाओगी? महताबकुँवरबाई की पुत्री सजनकुँवरबाई थी। वह उस समय ८ साल की थी। इतनी छोटी उम्र की होने पर भी उसमें बचपन नहीं था। अपनी माता के साथ प्रतिदिन महासतीजी म० के यहाँ दर्शन करने जाती व्याख्यान खूब ध्यान से सुनती और सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धर्मक्रियाएँ भी बड़ी उत्सुकता से करती थी। बाल मस्तिष्क से कभी बूढ़ों जैसे सुलझे हुए गंभीर विचार निकलते तो परिवारवाले सुनकर चकित होजाते। महासतीजी आनन्द कुमारीजी के गम्भीर उपदेशों की छाप इस बाल हृदय पर भी काफी पड़ चुकी थी। हृदय में संयम विचार अंकुरित हुआ और अपनी माता के साथ ही पुत्री की भी दीक्षा लेने की उत्कृष्ट अभिलाषा हुई। घरवालों ने जब यह सुना कि लड़की भी साथ ही दीक्षा लेरही है तो उन्होंने महताबकुँवरबाई को काफी धम काया और कहा—तुम्हारी तो दीक्षा लेने की उम्र है, पर इस बालिका को कोमल वय में साथ क्यों लेरही हो? महताबकुँवर

बाई ने घरवालों को बड़े प्रेम से समझाया तो भी वे पुत्री के साथ में दीक्षा देने को किसी तरह भी तैयार न हुए।

जोधपुर में सेठ अच्छीरामजी सौंद, छगनलालजी मुथोत, व सतीदानजी गोलेछा (ब्यावर वाले) बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। महतावकुँवरबाई का जोधपुर आवागमन रहा ही करता था। इन्होंने अपने व पुत्री की दीक्षा के विचार उनके सामने प्रगट किये और आज्ञा दिलाने के लिए प्रयत्न करने को कहा। इन लोगों ने बाई की बात मानकर पीपाड़ आकर आज्ञा के लिये जी-तोड़ परिश्रम किया। घरवालों को बहुत कुछ समझाया। आखिर कार उन्होंने दीक्षा के लिए आज्ञा दे दी। परन्तु सरकार की ओर से यह प्रतिबन्ध था कि १८ वर्ष से कम उम्रवाली दीक्षा नहीं ले सकती। अन्ततोगत्वा सेठ चाँदमलजी रियाँ वालों ने प्रयत्न करके यह प्रतिबन्ध हटवाया और दीक्षा की तैयारी करने के लिये कहा।

यह सब करने में दो वर्ष लग गये। परन्तु संसार की दशा विचित्र है। यह किसी के शुभकार्य को अच्छी नजरों से नहीं देखता। *'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'* इस लोकोक्ति के अनुसार शुभ-कार्य में विघ्न हुए बिना नहीं रहते। अस्तु, इधर समस्त पीपाड़ संघ, व परवाले दीक्षा महोत्सव की तैयारी में जुटे हुए थे। दोनों वैरागिनें बड़े ठाठबाठ से दीक्षा-स्थान पर पहुँच चुकी थीं। दोनों वैरागिनों ने मस्तक मुण्डन करवा लिया था और दीक्षा लेने की तैयारी थी। इतने में कितने ही धर्मद्रोही *विरोधियों ने विघ्न डालने का प्रयत्न किया।* उन्होंने पीपाड़ के मुसलमान हाकिम से, जो कई वर्षों से हाकिमी कर रहा था, यह शिकायत की कि एक दशवर्षीया बालिका को जबरन दीक्षा दी जा रही है। यह महान् अनर्थ है। भोले हाकिम ने उसी समय उस बाई की दीक्षा के लिए हुक्मनामा निकाला कि—"जबरजन्दसी

की धर्मपत्नी तो दीक्षा ले सकती है, पर उनकी पुत्री को किसी हालत में अभी दीक्षा न दी जाय।" बाहर से आने वाले लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया। यह हुक्म तो पहिले ही दिन निकाल दिया गया था। लेकिन सुनाया गया ऐन दीक्षा लेन के मौके पर। संघ के लोगों के चेहरे का रंग उड़ गया था, उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिल रही थी। फिर भी सब के अग्रगण्य लोगों में से कई व्यक्ति हताश होने वाले नहीं थ। उन्होंने बड़े उत्साह भरे शब्दों में कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं है। हम अपने सत्कार्य में महासतीजी म० की कृपा से अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। वे सीधे कचहरी में गये। जाकर देखा तो वहाँ का मामला ही और का और हो गया था। उन हाकिम साहब का तबादला हो गया था। उनके स्थान पर जैन हाकिम आए हुए थे। उनके सामने सारी परिस्थिति रक्खी गई। उन्होंने कहा—'छोटी उम्र में दीक्षा लेने वाली बहन को यहाँ हाजिर करो, उसका बयान लिया जायगा।' सब न कहा—'अब वह यहाँ नहीं आ सकती। आप वहाँ पधार कर ही तहकीकात कर सकते हैं।" सब लोगों की दृढ़ता की छाप जैन हाकिम पर पड़ चुकी थी। वह खुद आये और जतनबाई से पूछा—तुम दीक्षा क्यों ले रही हो? क्या तुम्हें इन साध्वियों ने बहकाया है? या माता के सिखाने स दीक्षा ले रही हो? अभी तुम्हारी उम्र दीक्षा लेने जैसी नहीं है। अभी गृहस्थी में ही रहो।"

जतनबाई—"दीक्षा लने का कारण और कुछ नहीं, मुझे आत्मकल्याण करना है। मैं किसी के बहकावे में आकर या सिखाने से दीक्षा नहीं ले रही हूँ। मैं अपनी खुशी से यह व्रत अङ्गीकार कर रही हूँ। आप मुझे दीक्षा लेने की मनाही कर रहे हैं, पर क्या आप यह गारंटी दे सकते हैं कि तुम विधवा नहीं होओगी? यदि हाँ, तो मैं रुकने के लिए सहर्ष तैयार हूँ अन्यथा

मुझे रोकने की किसी में शक्ति नहीं है।"

हाकिम यह उत्तर सुन कर दंग रह गये। उन्होंने दीक्षा लेने की सहर्ष स्वीकृति दे दी। और यह भी तसल्ली दी कि मैं स्वयं यथावसर उपस्थित होकर इस कार्य में भाग लूँगा। संवत् १६७१ फाल्गुन वदी ७ को दीक्षा बड़ी शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुई।

चरितनायिका के सामने यह घटना चल रहा था। उनसे जब कभी बातचीत होती है तो वे कहती हैं—'*सत्यमेव जयति नानृतम्*' आखिर सत्य की ही जीत होती है, झूठ की नहीं। बस सत्य की शक्ति संसार में बहुत बड़ी शक्ति है।'

थाँदला और मन्दसौर

परिसनायिका ने १९६२ से १९७१ तक के चातुर्मास सोजत में श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की सेवा में ही व्यतीत किये। इन चातुर्मास में आपका शास्त्रीय अध्ययन काफी विशाल हो चुका था। आपका लक्ष्य हमेशा अपनी गुरुस्थानीया श्रद्धेय आनन्दकुमारीजी की आज्ञा को शिरोधार्य करना रहता था। आप आज्ञा-पालन में ही आनन्द मानती थीं, उस समय कष्टों की कोई कल्पना आपके मन में ही नहीं रहती थी। आपको श्रीमती बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की ओर से मूलीबाई आर्याजी व केशरजी आर्या को साथ में लेकर थाँदला की ओर विहार करने की आज्ञा हुई। आपका दिल तो अपनी श्रद्धेय मातृतुल्य महासतीजी का छोड़ने का नहीं था, पर आपका सिद्धान्त था—*'आज्ञा गुरूणामविचारणीया'* गुरु की आज्ञा होने पर कोई विचार नहीं करना चाहिए। अब आप अपनी जन्म भूमि सोजत को छोड़ रही हैं! सोजत से विहार होरहा है। सोजत के सब लोगों के मुँह पर यही वाक्य है—"महासतीजी फिर कब पधारेंगी? अभी और विराजतीं तो अच्छा रहता।" सबके मन परिसनायिका के विहार को देखकर मुर्झाए हुए थे। पर गुरुनीजी की आज्ञा के सामने संघ की प्रार्थना का कोई मूल्य नहीं था। आपके सांसारिक परिवार के व ससुराल के लोग बहुत

दूर तक पहुँचाने आए। संघ के लोगों ने भी बड़ी दूर तक आपकी सेवा की।

सोजत से विहार करती हुई आप सीधी उदयपुर पहुँची। उदयपुर में उस समय काफी धर्मोदय होरहा था। इधर प्रातः स्मरणीय चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री मीलालजी म० अपनी मुनि मण्डली सहित विराजित थे, इधर सम्प्रदाय की प्रसिद्ध साध्वियाँ १३ ठाणा से विराजित थीं। आपके पधारने से १६ ठाणे होगई थीं। पूज्यश्री की अनुपम प्रतिभा ने चरितनायिका में एक विलक्षण तेज पाया और आपके शानदार व्यक्तित्व की छाप भी उन पर पड़ी। उन्हें आप जैसी धैयशालिनी महासती को देखकर बड़ा संतोष हुआ। जोधपुर की ओर आपकी विहार करने की घटनावली सुन कर तो उन्होंने साधुवाद प्रदान किया।

उदयपुर में पूज्यश्री की सेवा में थोड़े दिन रहकर आपने जावरे की ओर विहार किया। जावरा तो आपके चरण-स्पर्श से पहिले ही पवित्र हो चुका था। फिर भी वयोवृद्धा साध्वियाँ थीं, उन्हें सम्भालना और उनकी सेवा का लाभ लेना था। बस वहाँ पर रह कर आपने ओंवले किये। ओंवले लेने पर भी आपके पथ्य का पूर्णतः पालन न हो सका। कारण, आप शरीर की इतनी परवाह नहीं करती थीं। जैसा मिल जाता वैसा आहार कर लेतीं। इसलिए वहाँ स्वतु-मास तक रुकी रहीं। वहाँ से विहार करके छोटे-छोटे ग्रामों में धर्मोद्योत करती हुई, आषाढ़ तक 'रावटी' पधारीं।

थांदला की जनता को आपके आगमन का समाचार मिल चुका था। वहाँ के लोग आपके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। थांदला, वही स्थल है जहाँ की रत्नगर्भा भूमि में आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज जैसे चमकते रत्न पैदा हुए हैं।

थाँदला वालों ने भय्यालालजी नामक एक श्रावक को आपके सामने भेजा। वह रावटी में आ मिला। रावटी में ठहराने के लिए काफी आग्रह था, पर आपको थाँदला पधारना था। बीच में ही कैसे ज्यादा दिन बिताते? विहार हो गया। आगे यह चली हैं। रास्ते में एक छोटा-सा गाँव आता है। उस गाँव के नाम से कोई मतलब नहीं। वहाँ दस बजे करीब पहुँचे। भिक्षाचरी कर के थोड़ा बहुत आहार पानी मिला उसे लेकर एक बजे विहार कर दिया। दोपहर का समय था। थोड़ी-सी दूर चली होगी कि पाँव जलने लगे। ऊपर से सूर्य उत्ताप उष्णता फैंक रहा था, नीचे कंकरीली जमीन से पैर छिल रहे थे। साथ में भयंकर अन्धड़ भी ऐसा चला कि चलना भी कठिन हो गया। इधर चलें तो उधर से थपेड़े लगाता, उधर चलें तो इधर से। कपड़े सम्भालना भी दूभर हो गया। इस पर वर्षा की झड़ी लग गई। मालवे में बरसात आती है तो कन्जूस के धन की तरह रोती-रोती नहीं आती, वह तो एकदम मूसलधार बरसती है जिससे जल-थल एक हो जाता है। आगे तीन कोस चलना था, तब जाकर कहीं ठहरने का स्थान मिलता। पर बीच में ही गर्मी, बरसात आँधी आदि के मेल से सघन अन्धकार हो गया। ठहरने के लिये रास्ते में कोई गाँव नजर नहीं आ रहा है। चारों तरफ पहाड़ियों और सघन झाड़ियों ने अन्धेरा बढ़ाने में और सहायता कर दी है। उस समय का दृश्य बड़ा भयावना हो रहा था। बड़ी विकट समस्या है। ठहरने के लिए स्थान की तलाश है, पर वह नहीं मिल रहा है। रास्ते में कई सरकारी मकान भी मिले, पर वहाँ ठहरने कौन देता? कष्ट आते हैं तो एक साथ ही आकर हमला बोलते हैं। सरकारी मकान पर एक आधा कोई चौकीदार मिला। वह कहने लगा—'आप लोग यहाँ नहीं ठहर सकतीं। यहाँ रात को सिंहादि हिंस्र प्राणी कभी कभी आते हैं। उजाड़ के कारण जगह बड़ी

खतरनाक है। इसी कारण सरकारी तौर से यहाँ किसी को ठहराने की सख्त मनाई है।'

इन पहाड़ी-स्थलों में चोर लुटेरों का भी काफी डर रहता है। परन्तु मथ्थाशाहजी ने बुद्धिमानी से एक भील के लड़के को साथ में ले लिया था ताकि कहीं लूटने का डर न हो। ऐसे भयंकर जंगल में यदि भीलों का एक छोटा सा बच्चा साथ लेकर साथ चले तो कोई सताता नहीं।

हाँ, तो चरितनायिका अपनी शिष्याओं सहित अपना मार्ग तय कर रही हैं। उन्हें सिवाय भगवान् की आज्ञा के और कोई भय नहीं है। भगवान् की आज्ञा का कहीं उल्लंघन हो जाय, यह डर तो उन्हें हर समय रहता है। सन्ध्या समय हो आया। रास्ते में दूर तक काँटे बिछे पड़े थे। पूरी सावधानी से चलने पर भी पैर काँटों से छिद गये हैं। चरितनायिका के पैरों में तो शूल ने घुस कर रक्त का आस्वादन कर ही लिया। बड़ी वेदना हो रही है। चला नहीं जा रहा है। फिर भी आपके मन में इन कठिनाइयों के प्रति कोई ग्लानि नहीं है। साहस-पूर्वक चल रही हैं। अंधकार में रास्ते का पता नहीं चल रहा है, पर बीच में ही जंगल में कहाँ डेरा डालें ? आखिर तो कहीं ठिकाना मिलेगा ही।

घोर अन्धकार ने एक विपत्ति और बुलाई। चरितनायिका का पैर तारों में उलझ गया। धड़ाम से गिर गई। काफी चोट खाई। आपकी संगिनी लकड़ी भी अन्धेरे में कहाँ जाकर गिरी, पता ही नहीं चला। इस कठोर विहार में आपके धैर्य की पग पग पर परीक्षा होती थी। एक के बाद एक आपत्ति और कठिनाई अपना दल-बादल लेकर सामने बढ़ती ही आ रही थी। परन्तु हमारी चरितनायिका हतारा नहीं हुई। काफी संकट का सामना करना पड़ा, तब जाकर तीन घड़ी रात के बाद मैरोंगढ़स्टेशन के दर्शन हुए।

खतरनाक है। इसी कारण सरकारी तौर से यहाँ किसी को ठहराने की सख्त मनाई है।"

इन पहाड़ी-स्थलों में चोर लुटेरों का भी काफी उपद्रव रहता है। परन्तु झम्बालालजी ने बुद्धिमानी से एक भील के लड़के को साथ में ले लिया था ताकि कहीं लुटने का डर न हो। ऐसे भयंकर जंगल में यदि भीलों का एक छोटा सा बच्चा तीर लेकर साथ चले तो कोई सताता नहीं।

हाँ, तो चरितनायिका अपनी शिष्याओं सहित अपना मार्ग तय कर रही हैं। उन्हें सिवाय भगवान् की आज्ञा के और कोई भय नहीं है। भगवान् की आज्ञा का कहीं उल्लंघन हो जाय, यह डर तो उन्हें हर समय रहता है। सन्ध्या समय हो आया। रास्ते में दूर तक काँटे बिछे पड़े थे। पूरी सावधानी से चलने पर भी पैर काँटों से छिद गये हैं। चरितनायिका के पैरों में तो शूल ने घुस कर रक्त का आस्वादन कर ही लिया। बड़ी वेदना हो रही है। चला नहीं जा रहा है। फिर भी आपके मन में इन कठिनाइयों के प्रति कोई ग्लानि नहीं है। साहस-पूर्वक चल रही हैं। अंधकार में रास्ते का पता नहीं चल रहा है, पर बीच में ही जंगल में कहाँ डेरा डालें ? आखिर तो कहीं ठिकाना मिलेगा ही।

घोर अन्धकार ने एक विपत्ति और बुलाई। चरितनायिका का पैर तारों में उलझ गया। धड़ाम से गिर गई। काफी चोट आई। आपकी संगिनी लकड़ी भी अन्धेरे में कहाँ जाकर गिरी, पता ही नहीं चला। इस कठोर विहार में आपके धैर्य की पग पग पर परीक्षा होती थी। एक के बाद एक आपत्ति और कठिनाई अपना दल-बादल लेकर सामने खड़ी हो जाती थी। परन्तु हमारी चरितनायिका हतारा नहीं हुई। आगे संकट का सामना करना पड़ा, तब जाकर तीन घड़ी रात के बाद भैरोंगढ़स्टेशन के दर्शन हुए।

वहाँ पर भी ठहरने का ऐसा स्थान मिलता है, जहाँ पशु भी बड़ी मुश्किल से ठहर सकते हैं। पर भिक्षु-जीवन में अच्छी और बुरी जगह का कोई प्रश्न ही नहीं। उसे तो रात भर ठहरना है। अच्छी जगह हुई तो क्या और बुरी हुई तो क्या ? उसे तो उत्तराध्ययन सूत्र का यह *'किमेगराई करिस्सइ एवं तत्थऽहियासए'* का मूलमंत्र अपनाना है।

कपड़े पानी से लथ पथ हो गए हैं। भैरोंगढ़ स्टेशन छोटा सा स्टेशन है, वहीं एक ओर ठहरने को स्थान मिला। दुर्भाग्य से वहाँ भी इधर-उधर गोंद बिखरा हुआ था। उसकी डालियाँ सारे कपड़ों के चिपक गई। बड़ी कठिनाई से उन्हें कपड़ों से अलग किया। शूल का काँटा तो मानता ही न था। वह तो रात भर आपके कोमल चरणों की शय्या पाकर सोया रहना चाहता था। सुबह होते ही उसे भी किसी तरह से विदा किया। जैसे तैसे रात काटी। नींद तो पूरी आती ही कैसे ? यहाँ पर मीरा का वह गीत मुझे याद आ रहा है—

''हेरी मैं तो दर्द दीवानी, मेरो दर्द न जाने कोय।
शूली ऊपर सेज हमारी सोणो किस विध होय।।''

यही हालत आपकी हो रही थी। आपने तो महावीर प्रभु का बताया हुआ, तलवार की धार अथवा शूली की नोक से बढ़ कर तीक्ष्ण मार्ग अपना रखा था। आपको नींद कैसे आती ? यहाँ तो *'सुत्ताऽमुणिणो मुणिणो सया जागरंति'* का आदर्श चमक रहा था। आप धर्म प्रचार का अदम्य उत्साह रखने वाली थीं। साथ ही आप भी शिष्या मण्डली भी शान्त भाव से आपके पद चिह्नों पर चल रही थी। संकटों में भी किसी के मुख पर म्लानता नहीं, कोई भय नहीं। धर्म-प्रचार करने वाले महापुरुषों को दुःख भी सुख ही मालूम होता है।

सुबह सूर्योदय होते ही विहार होता है। रात भर की

थकावट है। दिल में परेशानी भी काफी है। फिर भी साधु-जीवन का मार्ग है, विहार तो करना ही होगा। वहाँ से विहार करके पटलावद पहुँची। वहाँ दो दिन निवास करके थाँदला पधार रही हैं। थाँदला के लोग आपका आगमन सुनकर हर्षित हो उठे। वे समझने लगे, महासतीजी क्या पहुँची, हमारे लिए तो साक्षात् भगवती ही पधार गई हैं। आपका शरीर स्वभावतः सुन्दर था। यौवन और ब्रह्मचर्य के प्रताप से इसमें अद्भुत तेज और लावण्य की आभा चमकती थी। तपस्या ने आपकी शरीर सम्पत्ति का प्रभाव बढ़ा दिया गया था। आप में गजब की आकर्षण शक्ति बढ़ गई थी। गौरवर्ण, विशाल और दीप्तिमान लोचन, उन्नत और चमकता हुआ भाल, सौम्य मुख-मण्डल। चरितनायिका ने सिंहगति से जिस समय थाँदला में प्रवेश किया तो लोग आश्चर्य करने लगे। उस समय ऐसा मालूम होता था मानो सूर्य का समस्त तेज छीन कर कोई राजकुमारी दीक्षित हुई हो।

अद्भुत शरीर-सौभाग्य के साथ वाणी में भी अमृत की सी मिठास थी और विचारों में मौलिकता थी। आपके चातुर्मास के लिये थाँदला संघ का आग्रह कई दिनों से चल ही रहा था। आखिरकार, विक्रम संवत् १६७२ का चातुर्मास थाँदला ही होकर रहा। चातुर्मास के चार महीने बड़े ही आनन्द में बीते। जैन अजैन जनता आपके दर्शनों के लिए ऐसी उमड़ती थी जैसे किसी देवी की जात लग रही हो।

वहीं पर पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य पूज्यश्री नन्दलालजी म० के शिष्य मुनिश्री किशनलालजी म० व ताराचन्दजी म० आदि ७ ठाणा से विराजे हुए थे। उनके साथ चरितनायिका का बड़ा सद्व्यवहार रहा। परस्पर प्रेम पूर्वक वार्तालाप, और मीठा वर्ताव देख कर संघ के लोग आपके प्रति अत्यन्त आकर्षित होगए थे।

आपकी सरलता का प्रभाव उन सन्तों पर काफी पड़ा। उन्होंने भी आपकी प्रशंसा की। चातुर्मास काल में दोपहर के समय आप धर्मकथा (चौपाई) सुनाती थीं। आपके विषय प्रतिपादन की शैली रोचक, सरल और अत्यन्त भावपूर्ण थी। कहानी कहने का ढंग आपका निराला ही था। जनता सुनकर मन्त्र मुग्ध सी हो जाती थी। उस समय आप के व्याख्यानों में जैन व अजैन लोगों की काफी उपस्थिति होती थी। वे लोग आपके इतने भक्त होगए थे कि आप जहाँ गोचरी जातीं वहाँ आपको देखकर उनका प्रेम उमड़ आता और भिक्षा लेने के लिये काफी आग्रह करते। तीन सुनार भाई तो इतने भक्त होगए थे कि अब आप थाँदला से विहार करने लगीं तो उनकी आँखों में आँसू छल-छला आए। उन्हें ऐसा लगा मानो आज हमारी सम्पत्ति लुटा जारही है।

थाँदला से अब मन्दसौर की ओर विहार होगया। रास्ते में जो भी कठिनाइयाँ आतीं उन्हें आप समभाव से सहन करतीं। चरितनायिका कठिनाइयों से घबरानेवाली नहीं थीं। उनका जीवन कठिनाइयों से जूझने के लिये बना था, पीछे हटने के लिए नहीं। ज्यों-ज्यों कठिनाइयाँ आतीं आपका साहस और अधिक बढ़ता जाता।

थाँदला से काफी आगे बढ़ गई हैं। सन्ध्या समय जब कि सूर्यास्त होने में कुछ ही देर थी, चरितनायिका एक पटेलों के गाँव में पहुँचीं। गाँव के मुखिया से मकान की आज्ञा लेकर सभी साध्वियाँ ठहरीं। घर का स्वामी धीरे धीरे साध्वियों की चर्या देखकर बड़ा प्रभावित होगया। उसने कहा— महाराज भोजन तैयार है, घर पर पधारिये। यदि वहाँ पधारना न चाहें तो मैं यहाँ ले आऊँ ?' चरितनायिका ग्रामीण भाई की सरलता देखकर मन में बड़ी प्रसन्न होती हैं, और मारवाड़ी बोली में समझाती

हैं,—भाई, हम जैन साध्वियाँ हैं। दिन छिपे बाद भोजन नहीं करतीं। और दिन रहते भी किसी गृहस्थ का लाया हुआ भोजन नहीं करतीं। न किसी का निमंत्रण स्वीकार कर सकती हैं। दिन रहते भी अपने लिए भोजन पानी हम स्वयं ही लाती हैं। अब तो थोड़ा-सा दिन बचा है, अब भोजन लाकर भी हम कब निपटेंगी ?'

गाँव का भद्र पटेल महासतीजी की यह बात सुनकर चकित होजाता है। आज तक जिन साधु-साध्वियों से उसे वास्ता पड़ा था, उनसे विलक्षण ही यह त्याग वैराग्य देखने को मिला। वह और अधिक भावुकता की धारा में बह कर कहने लगता है—महाराज, "हम तो अब भोजन करेंगे और आप यों ही बैठी रहेंगी। यह हमसे देखा नहीं जाता। आप हमारे हाथ का बनाया हुआ न जीमें तो आपको हम भोजन बनाने की सामग्री दे दें। आप झटपट बना लीजिये।"

चरितनायिका ने वात्सल्यभाव से कहा—"भाई, तुम्हारी भक्ति बहुत अच्छी है। जैनसाध्वियाँ अग्नि का स्पर्श नहीं करतीं। दिन काफी होता तो तुम्हारे यहाँ से आहार लेने में कोई हर्ज नहीं था। हमें अब किसी तरह की तकलीफ नहीं है। सब तरह का आनन्द है।'

यह भाई समझता है, शायद य दिन छिपने के बाद रोटी नहीं लेती होंगी, पर दूध लेने में क्या हर्ज होगा ? यह झटपट जाकर दूध गर्म करवाता है और वापिस आकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है—"महाराज कुछ तो कृपा कीजिये। भोजन नहीं लेते तो दूध तो ले लीजिये। ताजा गर्म दूध तैयार है। पधारिये"। चरितनायिका स्वयं जैनसाध्वी की चर्या का विस्तार से वर्णन करके कहती है—"भाई तुम समझे नहीं। हम भोजन में दूध को भी गिनती हैं। दिन छिपने के बाद किसी तरह

का भोजन तो दूर रहा, पानी तक भी नहीं लेतीं।" अब ग्रामीण आपके त्याग की अद्भुत छाप लेकर जा रहा है। जाते हुए वह कहता है—"अच्छा, महाराज, हम लोग जाते हैं, भोजन करके वापिस लौटेंगे। आप लोग हमें कुछ हरजस (भजन) वगैरह सुनायेंगी न ?" महासतीजी म० ने कहा—हाँ क्यों नहीं, जब तुम इतनी लगन से प्रार्थना कर रहे हो तो हमें सुनाने में कौनसी हानि है ? हमारा तो यह कर्त्तव्य ही है। तुम एक काम करना, गाँव में सूचना दे देना, जो लोग साध्वियों के भजन व उपदेश सुनना चाहें वे हमारे सन्ध्या-वन्दन (प्रतिक्रमण) करने के बाद सुन सकते हैं।'

गाँव में सूचना देदी गई। बस, अब क्या था। गाँव के भोले-भाले सरल हृदयवाले ग्रामीण स्त्री और पुरुष इकट्ठे होगए। आपकी वाणी में अपूर्व माधुर्य था ही। गाँव के लोग भक्ति से गद्‌गद् होगए और मस्ती में झूमने लगे। ग्रामीण लोगों ने अपनी भाषा में कहा—"महाराज ! आछो धरम दरसायो। म्हाँको काँई वेगा, म्हे इतरो पाप करां हाँ। आप तो भगवान् री भक्ति करो हो, तिर जावोगा।"

चरितनायिका ने उनके पवित्र हृदय को आश्वासन देते हुए समझाया—"भाई, तुम्हारे मन में बड़ी सरलता है। तुम लोगों में साधुसन्तों के प्रति काफी भक्ति है। तुम्हारे घर पर कोई भूला भटका अपरिचित व्यक्ति आजाता है तो उसे भी तुम भूखे प्यासे नहीं जाने देते हो। यह अतिथिसत्कार का गुण सराहनीय है। तुम परमात्मा की भक्ति के लिए थोड़ा बहुत समय जरूर निकाला करो। और इन छोटे-बड़े प्राणियों पर दयाभाव रखो। तुम्हारा कल्याण होगा।"

दूसरे दिन सुबह ही आप विहार कर रहीं थी, आपका उनके ग्राम से जाना उन्हें बड़ा ही खटक रहा था। बड़े आग्रह

के साथ अपने घर की ओर ले गये और दूध आदि बहराया।

त्यागी-जीवन मनुष्य पर प्रभाव डालता ही है। परन्तु त्याग सच्चा होना चाहिये, जीवित होना चाहिये। मुर्दा त्याग अपने जीवन को भी दूषित करता है और संसर्ग में आने वालों के जीवन को भी। जैन साधु-साध्वियों का त्याग सच्चा त्याग होता है।

यहाँ से आप कई छोटे-छोटे ग्रामों में विचरीं। कई ग्रामों में किसानों को जीव-दया के लिए सुन्दर भावपूर्ण कहानियाँ सुना कर प्रेरित किया। उन्हें समझाया—देखो, तुम्हारे खेतों में चूहे, मकोड़े, कीड़ियों वगैरह के बिल हों तो उस जगह को छोड़ दो। तुम्हें महान् लाभ होगा। ये बिचारे तुम्हारा क्या बिगाड़ते हैं? और ये साँप, बिच्छू आदि भी निरपराध प्राणी हैं। छेड़े बिना तो काटते नहीं, फिर इन्हें क्यों मारते हो? उन्हें भी मारने पीटने पर तुम्हारे समान दुःख होता है। अपने छोटे २ बच्चों की तुम रक्षा करते हो, उसी तरह इन जूँ और लीख वगैरह की भी रक्षा करो। छोटे-छोटे ग्रामीण बच्चों और महिलाओं को तो आपकी कथाएँ बड़ी रुचिकर लगतीं वे आपके प्रतिक्रमण हान स पहले ही कथा सुनने के लिये जम कर बैठ जाते।

इस तरह कई छोटे २ ग्रामों में धर्म की वंशी बजाती हुई आप रतलाम, जावरा आदि प्रसिद्ध क्षेत्रों में भ्रमण करती हुई मन्दसौर पहुँची। आपको यहाँ सूचना मिली कि बड़ी आनन्द कुमारीजी म० की तबियत कुछ खराब-सी रहती है अतः आपको जल्दी ही लौटना चाहिये। मन्दसौर में आपकी मासी गुरुनीजी की शिष्या रतनकुमारीजी आर्या ठाणा ४ से विराजती थीं। आपको उन्होंने ठहरने के लिये काफी आग्रह किया, पर आपके हृदय में तो श्रद्धेय महासतीजी आनन्दकुमारीजी म० की सेवा में शीघ्रातिशीघ्र जाने की लगन थी। आपकी उस पर

अत्यन्त भक्ति थी। वे भी आपको पुत्री-तुल्य समझती थीं। उन की ही परम-कृपा का फल है कि आप प्रवर्तिनी जैसे ऊँचे दर्जे पर पहुँच गई। दीक्षा लेने के बाद उनसे इतने दिनों तक दूर रहने का कभी अवसर ही नहीं आया था।

परन्तु, मनुष्य का सोचा हुआ कार्य हर-समय सिद्ध नहीं हो जाता है। मनुष्य सोचता कुछ और है, होता कुछ और है। बड़े २ सम्राटों का राज्य क्षण भर में पलट जाता है, जो क्षण भर पहले सोचते थे कि हमें कौन जीत सकता है? यह तो प्रकृति की लीला है। मनुष्य को तो अपने कर्त्तव्य-पालन में पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। उसे फल की ओर आँखें नहीं उठानी चाहिए। गीता में कहा है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

"तेरा अधिकार कार्य करने में है, फलों की ओर तू कभी मत देख।"

हाँ, तो चरित्रनायिका जिस दिन मन्दसौर से विहार करने वाली थीं, उसी दिन अचानक जीने से नीचे उतरते समय आपका पैर फिसल गया। पाँव में मरोड़ आ गई। काफी दर्द होने लगा। पैर सूज कर डबलरोटी-सा हो गया। अब क्या किया जाय? चरित्रनायिका सोचती हैं—मैं तो जल्दी से जल्दी योजत पहुँचना चाहती थी, पर पैर ने मुझे अचानक ही रोक लिया है। सम्भव है मेरे प्रेम की कसौटी हो रही है। पर यह मेरे हाथ की बात नहीं।

थोड़े दिन तक आपको मन्दसौर में ही रुकना पड़ा। पैर का उपचार किया गया। धीरे धीरे थोड़ा २ चलना आपने प्रारम्भ कर दिया। शहर के लोगों ने काफी प्रार्थना की कि—आप अभी यहीं विराजिये। थोड़े दिन बाद पैर एकदम ठीक हो जाय तो विहार करने के लिये हम रोकेंगे नहीं।

साधु-जीवन किसी के बन्धन में नहीं है। वह अप्रतिबद्ध विहारी है। साधु मौका देखे तो कहीं ठहर भी जाय, नहीं तो बड़े से बड़े आदमी के कहने पर भी नहीं रुक सकता। यही तो साधु जीवन की महत्ता है।

चरितनायिका ने श्रावकों से थोड़े शब्दों में कहा—'मैं अब रुकना नहीं चाहती। मुझे श्रद्धेय बड़ी आनन्दकुमारीजी म० की सेवा में शीघ्र पहुँचना है। यहाँ तो पैर के दर्द से रुक गई थी। अब दर्द इतना नहीं है।'

आपने पैर के मामूली दर्द की कोई परवाह नहीं की, और उग्र विहार करती हुई थोड़े ही दिनों में अपनी शिष्यमण्डली सहित सोजत पधार गई।

चरितनायिका अकसर कहा करती हैं—'मुझे महासतीजी म० के दर्शनों की उमंग थी। और उसी उमंग और महासतीजी के प्रेम के कारण मैं पाँव का दर्द भूल सी गई थी। पहले जहाँ मेरा पैर चलने के लिए मुश्किल से उठता, अब वह तेजी से उठने लगा था। यह महासतीजी म० की ही दयादृष्टि का फल है।'

सच्चे प्रेम का आकर्षण बड़ा तीव्र होता है। सच्चे प्रेम के कारण साधुता की मस्ती में झूमने वाले अपना दुःखदर्द सभी कुछ भूल जाते हैं।

महाभागा श्री बड़ी आनन्द-कुमारीजी म० को धर्म-सहायता

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने बड़े बूढ़े व्यक्तियों को अन्तिम समय में, जब उनकी जिन्दगी किनारे लगी हो, शान्ति दे। उन्हें आश्वासन दे। और यथासंभव धर्म की सहायता भी दे। जीवन में कर्त्तव्यों की दौड़ लगाते २ जब मनुष्य थक जाता है तो उसे विश्रान्ति भी लेनी पड़ती है, उस समय कौन सच्ची विश्रान्ति देसकता है ? सांसारिक क्षेत्र में वृद्ध व्यक्ति के पुत्र और पुत्री और आध्यात्मिक क्षेत्र में शिष्य और शिष्या। वह उस समय धर्म-पाथेय देकर अपने प्रिय पिता या गुरु को शान्ति के साथ परलोक भेजते हैं। पुत्र का अर्थ ही यह है— 'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते रक्षतीति पुत्रः' जो पुम् नामक नरक से पिता की रक्षा करे वह पुत्र है।

हमारी चरितनायिका के लिए वयोवृद्धा गुरुनी से भी बढ़ कर पूजनीय महाभागा आनन्दकुमारीजी थी। उनके शरीर में अब काफी दुर्बलता आ गई थी। शरीर जराक्रान्त था, पर मन अभी बुड्ढा नहीं था। अतः वे चरितनायिका, महताब कुमारीजी आर्या व साध्वी श्री रतनकुमारीजी को साथ में लेकर पीपाड़ पधारीं। पीपाड़ के लोगों में धर्मजागृति करके

अपनी जीवन-यात्रा पार करनी चाहिये। साध्वी आनन्दकुमारी जी बड़ी भाग्यवती हैं। यह सब सतियाँ मेरी सेवा कर रही हैं। इन्हें स्वप्न का हाल कहूँगी तो शायद अधिक चिन्ता में पड़ जायेंगी और मोह के कारण मुझे संथारा भी न करने दें।

ऐसा सोचकर महासतीजी ने कोशाणानिवासिनी छोगीबाई नाम की एक वृद्ध और अनुभवी श्राविका के सामने यह बात प्रगट की और कहा– 'देखो, मेरे जीवन का अब कोई भरोसा नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि मेरी जीवन की साधना का सर्वस्व यों ही नष्ट हो जाय और खाली हाथ ही यात्रा करनी पड़े। कहीं मझधारा के लिये मौका आने पर भूल न कर बैठना। ये साध्वियाँ अल्पवयस्का हैं। इन्हें विशेष अनुभव नहीं है। हाँ, आनन्दकुमारीजी मेरी प्रकृति से परिचित है, पर क्या पता, इस समय वह भी मेरी ममता में पड़ कर उस सारभूत चीज को भूल जाय। तुम विश्वस्त श्राविका हो, अतः मैं तुम्हें अपनी तरफ से सावधान किये देती हूँ।"

छोगीबाई बड़ी धर्मपरायणा श्राविका थी। उसने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा—महाराज! आप यह क्या कहती हैं? अभी तो हमें आपकी छत्रछाया की अत्यधिक अपेक्षा है। अभी तो आप इतनी अस्वस्थ नहीं हैं कि आपको संथारे की चिन्ता करनी पड़े। आपने जो स्वप्न देखा है, उसे देखते हुए हमें तो मालूम होता है आपको किसी साध्वी की प्राप्ति होगी। आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं अपनी ओर से पूर्णतः सावधानी रखूँगी। आनन्दकुमारीजी म० को भी सावधान कर दूँगी। इस विषय में आप स्वयं जागरूक हैं, यह हमारे लिए गौरवपूर्ण बात है। छोगीबाई तो यह कह कर अपने घर चली गई। संयोगवश छोगीबाई को उसी दिन बुखार ने आ घेरा। अस्वस्थ होने के कारण वह महासतीजी की सेवा में उपस्थित न हो सकी,

एक दूसरी श्राविका सेवा में उपस्थित थी।

आज मार्गशीर्ष शुक्ला १० का दिन है। पूजनीय महासतीजी अपनी शय्या पर लेटी हुई हैं। शरीर का क्या विश्वास? यह मिट्टी का पुतला ही तो ठहरा। इसीलिए तो कहा है—*'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'* शरीर व्याधियों का घर है। अस्वस्थ सतीजी ने चरितनायिका से कहा—देखो, तुम मुझे उस अन्तिम घड़ी के समय संथारा (अनशन) कराना भूलना मत। जीवन में तुम इतने वर्षों तक जैसी निर्भीक और न्यायवृत्ति पर चली हो भविष्य में यही वृत्ति कायम रखना। और सभी साध्वियों के साथ स्नेह भाव रखना। समय पर संथारा कराने का उत्तर दायित्व मैं तुम्हें सौंपती हूँ। चरितनायिका कह रही थीं, अभी समय नहीं आया है, समय आया तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी। यह सेविका भूल नहीं करेगी। आज्ञा-पालन में कोई खामी न रहेगी। आप निश्चिंत रहें।

थोड़ी देर बाद अचानक ही शरीर में तीव्र वेदना खड़ी हो जाती है। चेहरे का रंग बदल जाता है। श्वास की गति में एकदम परिवर्तन हो जाता है। चरितनायिका यह देखकर एकदम चकित हो जाती हैं और सोचती हैं बस, अब मुझे अपने दायित्व का पालन करना चाहिये। और इन्हें अनशन करा देना चाहिए। चरितनायिका ने दिल में साहस और धैर्य धारण कर उसी समय हाथ जोड़ कर महासतीजी से संथारा कराने की स्वीकृति ली और संलेखना का पाठ पढ़ कर यावज्जीवन का संथारा (अनशन) करा दिया। अन्तिम समय में वृद्ध महासतीजी के परिणाम बड़े उज्ज्वल रहे। सभी साध्वियों से क्षमायाचना की और शांति के साथ उसी रात में इस औदारिक शरीर को विसर्जन किया।

पाठक देख सकते हैं, उक्त महासतीजी की दृष्टि में चरितनायिका का कितना व्यक्तित्व था! संथारा कराने का उत्तर

दायित्व सौंपकर सतीजी ने चरितनायिका के प्रति कितना प्रामाणिक विश्वास प्रगट किया है ? वह जीवन धन्य है, जो अपने बड़ों का विश्वास प्राप्त करता है और उनके अन्तिम समय में धर्म की सहायता करता है, परलोक के लिए पाथेय साथ में बँधा देता है !

चरितनायिका ने उक्त महासतीजी की ऐहिकलीला समाप्त हो जाने पर काफी समवेदना प्रगट की। सभी साध्वियों को उक्त महासती के चले जाने का दुःख था। लेकिन काल की विकराल दाढ़ों में पड़ जाने पर किसकी ताकत है जो रख सके ? साथ ही चरितनायिका के मन में इस बात से संतोष हुआ कि मैंने अन्तिम समय में अपने कर्तव्य का उचित ढंग से पालन किया है और उनकी अभिलाषा पूर्ण की है !

प्रातःकाल समस्त श्रावकों को मालूम हुआ। उन्होंने महासतीजी की शवयात्रा निकाल कर अग्निसंस्कार किया। इस प्रकार चरितनायिका ने अपनी शिक्षा-दीक्षा दात्री महासतीजी को अन्तिम समय में धर्म के पवित्र मार्ग पर आरूढ़ किया और अपनी जिम्मेवारी का निर्वाह किया।

जोधपुर के पथ पर

महासती श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी के स्वर्गवास होने की खबर सोजत पहुँच गई थी। सोजत से महासती श्रीकेशरजी म० ने चरित्रनायिका की सेवा में दो साध्वियाँ भेजीं। सोजत से सतियों के आने पर आपने कोशाणे से पीपाड़ की ओर विहार किया। पीपाड़ के धर्म-क्षेत्र में आप पहले भी धर्म का सुन्दर बीज बो गई थी। इस बार भी आपके व्याख्यानों को सुन कर एक पीपाड़ निवासिनी धर्मशीला बहन को वैराग्य की झाँकी मिली। यह बहन महतावकुमारीजी साध्वी की सांसारिक पक्ष से देवरानी लगती थी। नाम था—अचरजबाई। दीक्षा की तिथि निर्णीत हो गई। संघ में हर्ष का पार न रहा। संवत् १९७२ के पौष शुक्ला १० के दिन, शुभ समय में धूमधाम से दीक्षा सम्पन्न हुई।

वहाँ से नवदीक्षिता साध्वी आदि को लेकर आपने सीधे सोजत में पदार्पण किया। सोजत में महासती श्रीकेसरजी म० और आपकी गुरुनी श्रीमती लक्ष्मीकुमारीजी म० विराजित थीं। उनकी सेवा में आप तल्लीन हो गई।

इधर जोधपुर में फूलचन्दजी महाराज का चातुर्मास तय हो चुका था। पूज्य श्रीलालजी महाराज मुक्तकण्ठ से इनके त्याग, वैराग्य और चारित्र की प्रशंसा किया करते थे। उस

समय के चारित्रशील साधुओं में फूलचन्द्रजी म० का सर्वप्रथम स्थान था।

जोधपुर मारवाड़ का मुकुट है। मारवाड़ में जोधपुर जैनियों का प्रधान केन्द्र स्थल है। जोधपुर उन दिनों धर्मध्यान का खास गढ़ बना हुआ था। यहाँ स्थानकवासी जैनों के करीब १५०० घर हैं। उस समय जोधपुर का ओसवाल-समाज काफी उन्नति पर था और राजमान्य भी। वह युग धर्माराधन की दृष्टि से सतयुग (चौथे आरे) के समान समझा जाता था। बड़े-बड़े आचार्यों के चातुर्मास हुआ करते थे। लोगों की धर्मश्रद्धा गाढ़ी थी। पर काल की गति विचित्र है। समय की ठोकरें विश्व का इतिहास कुछ ही क्षणों में पलट देती हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य पल भर में इधर से उधर हो जाते हैं। जोधपुर के जैन संघ का इतिहास भी समय के फेर ने बड़े भयकर रूप से बदल डाला है। आज के जोधपुर और पहले के जोधपुर में भारी अन्तर हो गया है। आज लोगों में वह भावना कहाँ है ? साम्प्रदायिता की संकीर्ण भावना ने आज जैन-लोगों के दिमागों में घर कर लिया है। सम्प्रदायों के संघर्ष ने उनके बीच में एक गहरी खाई डाल दी है। अब स्थानकवासी समाज में ही एक नहीं दो दल होगये हैं। दलों के दल दल में फँस कर भला जनता धर्म-कर्म के सम्मुख कैसे हो सकती है ? फूट पिशाचिनी ने आज जोधपुर में अपना नग्न-नृत्य मचा रखा है। आपस की तू-तू मैं-मैं में धर्म का ह्रास हो रहा है। क्यां अब वह समय नहीं आएगा, जब धर्म की ध्वजाएँ फहरेंगी, संघ के कदम एक साथ उठेंगे ? शायद आएगा जोधपुर संघ का भाग्य फिर भी पलट सकता है।

हाँ, तो जीवन चरित्र का पथ पकड़िये। जोधपुर की बहनों में उस समय धर्म की भावना काफी तीव्र थी। बहनों की धर्म-ध्यान में प्रगति होने के लिए जोधपुर में साध्वियों के चातुर्मास

समय के चारित्रशील साधुओं में फूलचन्द्रजी म० का सर्वप्रथम स्थान था।

जोधपुर मारवाड़ का मुकुट है। मारवाड़ में जोधपुर जैनियों का प्रधान केन्द्र-स्थल है। जोधपुर उन दिनों धर्मध्यान का खास गढ़ बना हुआ था। यहाँ स्थानकवासी जैनों के करीब १५०० घर हैं। उस समय जोधपुर का ओसवाल-समाज अपनी उन्नति पर था और राजमान्य भी। वह युग धर्माराधन की दृष्टि से सतयुग (चौथे आरे) के समान समझा जाता था। बड़े-बड़े आचार्यों के चातुर्मास हुआ करते थे। लोगों की धर्मश्रद्धा गाढ़ी थी। पर काल की गति विचित्र है। समय की ठोकरें विश्व का इतिहास कुछ ही क्षणों में पलट देती हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य पल भर में इधर से उधर हो जाते हैं। जोधपुर के जैन संघ का इतिहास भी समय के फेर ने बड़े भयकर रूप से बदल डाला है। आज के जोधपुर और पहले के जोधपुर में भारी अन्तर हो गया है। आज लोगों में वह भावना कहाँ है ? साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावना ने आज जैन लोगों के दिमागों में घर कर लिया है। सम्प्रदायों के संघर्ष ने उनके बीच में एक गहरी खाई खोद दी है। अब स्थानकवासी समाज में ही एक नहीं ६ दल होगये हैं। दलों के दल-दल में फँस कर भला जनता धर्म कर्म के सम्मुख कैसे हो सकती है ? फूट पिशाचिनी ने आज जोधपुर में अपना नग्न-नृत्य मचा रखा है। आपस की तू-तू मैं मैं में धर्म का ह्रास हो रहा है। क्या अब वह समय नहीं आएगा, जब धर्म की ध्वजाएँ फहरेंगी, सब के कदम एक साथ उठेंगे ? शायद आएगा। जोधपुर संघ का भाग्य फिर भी पलट सकता है।

हाँ, तो जीवन चरित्र का पथ पकड़िये। जोधपुर की बहनों में उस समय धर्म की भावना काफी तीव्र थी। बहनों के धर्म-ध्यान में वेग देने के लिए जोधपुर में साध्वियों के चातुर्मास

राज, इस तरह किनारा कसने और बगलें झाँकने से कोई काम नहीं चलने का। अगर इन दोनों में से किसी एक की पसन्दी न हुई तो भविष्य में इसका परिणाम संघ के पक्ष में हितावह नहीं आएगा। संघ के लोगों की श्रद्धा दूर से ही प्रणाम करके भग जायगी। आप समझदार और विदुषी सती हैं, आपको अवश्य ही अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिये। आपके निष्पक्ष निर्णय से यदि किसी को कटु लगता हो और कोई अप्रसन्न होता हो तो इसमें आप क्या कर सकती हैं? या आपसे बड़ी फूलकुमारीजी म० हैं, उन पर ही यह मामला छोड़ दीजिये। वे जिसे कहें उसे रख या छोड़ दीजिये।

चरितनायिका ने इस परिस्थिति पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया और इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि, फूलकुमारीजी महाराज मुझ से बड़ी हैं, वे जो निर्णय दे देंगीं, वह मुझे मान्य होगा।

देखिये, चरितनायिका की वृत्ति से कितनी सरलता टपकती है? नम्रता की यह पराकाष्ठा है। साधुता की पगडंडी पर चलने वालों को इसी का अभ्यास करना चाहिए।

अब तो, फूलकुमारीजी म० के द्वारा दिये गए फैसले पर ही सब की आँखें गड़ी हुई थीं। उन्होंने चरितनायिका से कहा—"मेरी दृष्टि में आप मोताजी आर्या को अपने साथ ले जाइये और कस्तूरोंजी आर्या को यहाँ मेरे पास रख दीजिये। इनकी प्रकृति भी ठीक है। इन्हें कई थोकड़े भी कण्ठस्थ हैं, इसलिए मुझे अपना शास्त्रीयज्ञान बढ़ाने में इनकी काफी सहायता रहेगी।"

चरितनायिका साध्वी श्रीफूलकुमारीजी का निर्णय अब टाल नहीं सकती थीं। अतः उन्होंने नम्रता-पूर्वक उक्त बात को शिरोधार्य किया।

पाली में कुछ दिन रह कर चरितनायिका ने जोधपुर की ओर

शोध में आगे बढ़ सकता है। प्रकृतियों और वृत्तियों को बदलने के लिये ही तो साधुत्व अङ्गीकार किया जाता है। वह भी नहीं बदली तो किया क्या ? 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' वाली गति हुई। 'धोबी का कुत्ता घर का रहा न घाट का।' फिर तो उसका जीवन ही दुविधा में पड़ कर बर्बाद हो जाता है।

हाँ, तो उक्त दोनों महासतियों ने जीवन की ऊँचाइयाँ प्राप्त नहीं की, और वही घरगृहस्थियों का-सा संघर्ष यहाँ भी मचाने लगीं। फूलकुमारीजी आर्या इन दोनों की चर्या देखकर हैरान थीं। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि इनका कैसे निपटारा किया जाय ? कई श्राविकाओं को यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने यह सलाह दी कि महासती श्री आनन्दकुमारीजी आ रही हैं, उनके पास कई सतियाँ हैं। उनमें से एक सतीजी को आप यहाँ रख लेना और एक को उनके साथ भेज देना। उनकी प्रकृति बड़ी शान्त है। वे पूर्णतः निभा लेंगी।

महासती फूलकुमारीजी चरितनायिका से दीक्षा में बड़ी थीं, अतः वे उनकी मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रखती थीं। फूलकुमारीजी म० ने आप से सारा हाल सुनाकर कहा—"इन दोनों में से किसी एक को आप अपने साथ ले पधारें और आपके पास की सतियों में से किसी एक को यहाँ रख दो।"

चरितनायिका बड़े धर्म सङ्कट में पड़ गईं। सोचने लगीं—मैं किसको रक्खूँ और किसे ले जाऊँ ? मेरे लिए तो जैसी ये हैं, वैसी ही ये (यहाँ रहने वाली) सतियाँ हैं। मैं इन्हें रक्खूँ तो वे शायद नाराज हों, और इन्हें रक्खूँ तो ये नाराज होंगी। दुविधा की यह स्थिति बड़ी नाजुक होती है। चरितनायिका कुछ देर तक असमंजस में पड़ी रहीं। अन्त में एक मार्ग मिल गया।

वहीं पर एक धर्मिष्ठ श्राविका—समीरमलजी नाहिया की धर्मपत्नी खड़ी थी। वह बड़ी विचक्षण थी। उसने कहा—'महा

दौड़ में आगे बढ़ सकता है। प्रकृतियों और वृत्तियों को बदलने के लिये ही तो साधुत्व अङ्गीकार किया जाता है। वह भी नहीं बदली तो किया क्या ? '*इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः*' वाली गति हुई। 'धोबी का कुत्ता घर न घाट का।' फिर तो उसका जीवन ही दुविधा में पड़ कर बर्बाद हो जाता है।

हाँ, तो उक्त दोनों महासतियों ने जीवन की ऊँचाइयाँ प्राप्त नहीं की, और वही घरगृहस्थियों का-सा संघर्ष यहाँ भी मचाने लगीं। फूलकुमारीजी आर्या इन दोनों की चर्या देखकर हैरान थीं। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि इनका कैसे निपटारा किया जाय ? कई श्राविकाओं को यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने यह सलाह दी कि महासती श्री आनन्दकुमारीजी आ रही हैं। उनके पास कई सतियाँ हैं। उनमें से एक सतीजी को आप यहाँ रख लेना और एक को उनके साथ भेज देना। उनकी प्रकृति बड़ी शान्त है। वे पूर्ववत निभा लेंगी।

महासती फूलकुमारीजी चरितनायिका से दीक्षा में बड़ी थीं, अत वे उनकी मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रखती थीं। फूलकुमारीजी म० ने आप से सारा हाल सुनाकर कहा—"इन दोनों में से किसी एक को आप अपने साथ ले पधारो और आपके पास की सतियों में से किसी एक को यहाँ रख दो।"

चरितनायिका बड़े धर्म संकट में पड़ गई। सोचने लगी-मैं किसको रक्खूं और किसे ले जाऊँ ? मेरे लिए तो जैसी ये हैं, वैसी ही ये (इन्हीं रहने वाली) सतियाँ हैं। मैं इन्हें रक्खूं तो ये शायद नाराज हों, और इन्हें रक्खूं तो ये नाराज होंगी। दुविधा की यह स्थिति बड़ी नाजुक होती है। चरितनायिका कुछ देर तक असमंजस में पड़ी रही। अन्त में एक मार्ग मिल गया।

वहीं पर एक धर्मिष्ठ श्राविका—समीरमलजी नाहिया की धर्मपत्नी खड़ी थी। वह बड़ी विलक्षण थी। उसने कहा—'महा

राज, इस तरह किनारा कसने और बगलें झाँकने से कोई काम नहीं चलने का। अगर इन दोनों में से किसी एक की बदली न हुई तो भविष्य में इसका परिणाम संघ के पक्ष में हितावह नहीं आएगा। संघ के लोगों की श्रद्धा दूर से ही प्रमाण करके भग जायगी। आप समझदार और विदुषी सती हैं, आपको अवश्य ही अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिये। आपके निष्पक्ष निर्णय से यदि किसी को कटु लगता हो और कोई अप्रसन्न होता हो तो इसमें आप क्या कर सकती हैं? या आपसे बड़ी फूलकुमारीजी म० हैं, उन पर ही यह मामला छोड़ दीजिये। वे जिसे कहें उसे रख या छोड़ दीजिये।

चरितनायिका ने इस परिस्थिति पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया और इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि, फूलकुमारीजी महाराज मुझ से बड़ी हैं, वे जो निर्णय दे देंगी, वह मुझे मान्य होगा।

देखिये, चरितनायिका की बुद्धि से कितनी सरलता टपकती है? नम्रता की यह पराकाष्ठा है! साधुता की पगडंडी पर चलने वालों को इसी का अभ्यास करना चाहिए।

अब तो, फूलकुमारीजी म० के द्वारा दिये गए फैसले पर ही सब की आँखें लगी हुई थीं। उन्होंने चरितनायिका से कहा—"मेरी दृष्टि में आप मोड़ाजी आर्या को अपने साथ ले जाइये और कस्तूराँजी आर्या को यहाँ मेरे पास रख दीजिये। इनकी प्रकृति भी ठीक है। इन्हें कई थोकड़े भी कण्ठस्थ हैं, इसलिए मुझे अपना शास्त्रीयज्ञान बढ़ाने में इनकी काफी सहायता रहेगी।"

चरितनायिका साध्वी श्रीफूलकुमारीजी का निर्णय अब टाल नहीं सकती थीं। अतः उन्होंने नम्रता-पूर्वक उक्त बात को शिरोधार्य किया।

पाली में कुछ दिन रह कर चरितनायिका ने जोधपुर की ओर

विहार कर दिया। साध्वी मोहाजी आपके साथ में पास रही थीं। आपकी दृष्टि में किसी साध्वी के प्रति पक्षपात तो था नहीं। आपका मातृहृदय सभी साध्वियों के प्रति वात्सल्यभाव रखता था। छोटी, बड़ी सभी सतियों को आप बड़े प्रेम से बुलाती। मोहाजी आर्या पर भी आप अत्यन्त स्नेह-वृष्टि करती थीं। उनकी रुचि के अनुसार उनसे काम वगैरह लेतीं और बड़ा सद्व्यवहार रखती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि मोहाजी का जहाँ पहले उग्र स्वभाव था, वह अब मिटकर सौम्य हो गया।

मनुष्य स्नेह ढूंढता है। उसे जहाँ स्नेह की धारा मिल जाती है वहीं उसे शान्ति प्राप्त हो जाती है। बड़े से बड़े लुटेरे और चोर भी स्नेह से मनुष्य के वश में हो जाते हैं। सिंह जैसे हिंसक और क्रूर प्राणी भी स्नेह के कारण अपना वैरभाव भूल जाते हैं। तो अच्छे व्यक्ति के साथ रहकर मानव स्वभाव बदलते क्या देर लगती है। एक नीतिकार ने कहा है—

"अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
पुरुषविशेषं प्राप्य हि भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥"

अर्थात्—घोड़ा हथियार, शास्त्र, वीणा, बोली, मनुष्य और स्त्री, यह सब किसी अच्छे व्यक्ति का संसर्ग पाकर योग्य बन जाते हैं और अयोग्य, के हाथों में पड़ कर अयोग्य बन जाते हैं।

चातुर्मास जोधपुर हो गया। चार ही महीने धर्म ध्यान का ठाठ लगा रहा। मोहाजी आर्या ने इसी चातुर्मास में गर्म पानी के आधार पर ४१ दिन की तपस्या की। महताबकुमारीजी ने १७ दिन और ५ दिन की तपस्या की। यह सब तपस्या आपके विशिष्ट संसर्ग को पाकर हुई। चरितनायिका ने स्वयं ६ दिन की तपस्या की। जो स्वयं तपस्या करती हों, उसकी शिष्याएँ और साथिनें तपश्चर्या क्यों न करें?

आपकी परम बुद्धिमती शिष्या थी—बालब्रह्मचारिणी जतनकुमारीजी। उन्हें चारित्रशील श्रीफूलचन्दजी म० ने ३ शास्त्र गाथाओं का स्वाध्याय करने को कहा था। गुरुदेव की कृपा से जतनकुमारीजी आर्या ने एक ही दिन में उपवास करके ३२ बार नन्दीसूत्र का व १ बार दशवैकालिक का स्वाध्याय किया। अस्वाध्याय काल में नन्दीसूत्र में पठित स्थविरावलियों का पारायण किया। दूसरे दिन बेला किया। उसमें भी स्वाध्याय किया। जतनकुमारीजी साध्वी १२ वर्ष की थीं। फिर भी उत्तराध्ययन दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और सुखविपाक ये चारों आगम उन्हें कण्ठस्थ थे। स्वभाव की बड़ी कोमल और विनयवती थीं। पारस का संसर्ग पाकर लोहा भी सोना बन जाता है तो योग्य गुरानीं को पाकर शिष्या योग्य क्यों न हो? चरितनायिका में खुद में विलक्षणता थी तो उसका अंश शिष्याओं में आए बिना कैसे रह सकता था?

इस तरह जोधपुर के चातुर्मास में तपस्या की झड़ियाँ लगी हुई थीं। भाइयों और बहनों में भी तपस्याएँ काफी हुई। एक बहन ने मासखमण तप किया और २१ बहनों ने एक साथ अठाइयों का प्रत्याख्यान किया और भी अनेक पंचरंगियों व पृथक् पृथक् तपश्चर्याएँ हुई। विक्रम सं० १६७४ का चातुर्मास सानन्द व्यतीत हुआ।

सहकारी-साधिकाओं का वियोग

लोकोत्तर महापुरुषों का चित्त वज्र से भी कठोर होता है तो दूसरी ओर होता है—फूल से भी कोमल। जो महापुरुष अपनी विपदाओं को कठोरता-पूर्वक सहन करता चला जाता है, वही दूसरों का साधारण-सा कष्ट देखकर मोम-सा पिघल जाता है। इसलिए एक कवि ने महापुरुषों के चित्त का वर्णन करते हुए कहा है—*'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।'*

हमारी चरितनायिका की कठोरता और कोमलता भी इसी किस्म की थी। वे अपने लिये बड़ी से बड़ी विपत्तियों का सहन में बिल्कुल भी नहीं हिचकचाती थी। पर अपने साथियों, शिष्याओं या सहायिकाओं का वियोग उन्हें भी क्षुब्ध कर देता था।

जोधपुर-चातुर्मास समाप्त कर आपका विचार सोजत पधारने का था, पर संयोगवश आप उस समय सोजत न पहुँच सकीं। सोजत परगने में उस समय प्लेग की बीमारी चल रही थी। मार्ग के कई गाँव प्लेग के शिकार बने हुए थे। इसमें गर्दन पर गाँठ होती और टपाटप मर जाते। यह देख कर लोग घरबार छोड़ कर भागे जा रहे थे और गाँव के बाहर झौंपड़ियाँ बनाकर डेरा डाले हुए थे। सरकार की ओर से भी सोजत परगने के गाँवों और सोजत में किसी बाहर से आने वाले को घुसने देने की सख्त मनाही थी।

आपके मन में अपनी गुरुनीजी वगैरह के दर्शन की उत्कण्ठा थी। पर नागरिक कानूनों का पालन करना भी आपके लिये आवश्यक था। जैन-शास्त्रों में साधु साध्वियों के लिये यहाँ तक आदेश है कि "जहाँ प्लेग, महामारी आदि भयकर रोगों का उपद्रव हो गया हो, वहाँ से साधु चातुर्मास में भी विहार करके चला जाय और ऐसी उपद्रवग्रस्त जगह में पहले ही चातुर्मास न करे या शेष काल में भी न जाय।" अत शास्त्रों की आज्ञा का पालन करना भी आवश्यक था।

हाँ, तो उस बीमारी के कारण सोजत में बाहर से आने वालों पर प्रतिबन्ध लगा होने के कारण आपने सिवरी, लोहावट आदि क्षेत्रों की ओर विचरना शुरु कर दिया। इधर बीमारी फैलने के कारण साध्वियों को भी सोजत स विहार करना था, पर उस समय 'वहाँ' दूसरो जगह जान का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। दूसरी बात यह है कि कई साध्वियाँ इतनी अशक्त थीं कि वे विहार नहीं कर सकती थीं, ऐसी दशा में उन्हें छोड़कर कैसे जाया जाता ? अस्तु, इस बीमारी न अपना विकराल रूप धारण कर लिया और साध्वियों को भी लपेट में ले लिया। आपकी पूज्य गुरुनी श्रीमती चरमीकुमारीजी म० को भी अचानक इस बीमारी की भेंट होना पड़ा। गुरुनीजी के अचानक स्वर्गवास के समाचार परिसमाधिका को लोहावट में मिले। गुरुनीजी का आकस्मिक निधन सुनकर आपके हृदय को तीव्र आघात पहुँचा। आपके मन में कई संकल्प विकल्प आए। अब क्या किया जाय ? मेरे जीवन को बदलने वाली, मुझे दीक्षा देकर संयम मार्ग पर आरूढ़ करने वाली गुरुनी का वियोग कैसे हुआ ? अब मेरे-जीवन की क्या दशा होगी ? हा हन्त ! काल किसी को छोड़ता नहीं है। वह गुरुनी और शिष्या, माता और पिता, पति और पत्नी के इस जन्म के सम्बन्ध को तोड़ कर दूसरे जन्म स सम्बन्ध

चला गया, अब क्या है ? मेरे जैसी बुड्ढी तो बैठी है और काल क्रूर उसे छीन कर ले गया। अफसोस! क्या किया जाय!

श्रीमती चरित्रनायिका ने जब इस प्रकार से सुना तो उन्होंने वृद्धा महासतीजी को धैर्य दिलाते हुए कहा—आप चिंता न करें। यह किसी के हाथ की बात नहीं है। उनका जीवन इतना ही था। हमारे साथ उनका थोड़ा ही सम्बन्ध रहना था। जीना-मरना किसी के वश की बात नहीं है। जो होना है वह होकर रहेगा। अगर हमारे जीवन की घड़ियाँ बाकी हैं तो हमें कोई भी मार नहीं सकता। आप धैर्य रखिये, आत्मा अक्षर अमर है, इसे कोई मार नहीं सकता। यदि शरीर नष्ट होता है उससे दुःख क्यों? यह तो दूसरा चोला आगे-पीछे कभी न कभी बदलना ही था। आप तो प्रभु का स्मरण कीजिये, और उन्हीं के चरणों में अपने आपको समर्पण कीजिये। डरने की क्या बात है? इस क्षणभंगुर जीवन में प्रभु-स्मरण ही हमारे लिए जड़ी बूटी है।

चरित्रनायिका की बात ने वृद्धा महासती के मन पर जादू-सा काम किया। वे एकदम शान्त-भाव में लीन हो गईं। और थोड़ी ही देर में स्थिति ने सहसा अपना रूप बदला। महासतीजी मानो फिर निद्रा में सो गई थीं। यही हुआ—मदन कुमारीजी के स्वर्गवास के करीब एक ही प्रहर बाद उन्होंने अपना औदारिक शरीर छोड़ दिया। सारे शहर में शोक की घटाएँ उमड़ पड़ीं। सभी लोगों के दिल पर उदासी छा गई। ओसवाल संघ ने शवयात्रा बड़ी धूमधाम से निकाली। सभी लोग अफसोस कर रहे थे—कि एक ही दिन में दो विवाह, दो दीक्षा तो हमने अपने जीवन में देखी हैं, लेकिन एक ही दिन में सतों की दो शवयात्रायें निकलने का यह पहला ही मौका है। ओसवाल-संघ के लोगों के एक साथ इतनी मृत्यु देख कर आँसू भर रहे थे। उन्हें महासतियों और एक प्रतिष्ठित साधु का कालकवर की मही

में स्वाहा हो जाने की घटना सोजत के लिए बड़ी कलंक स्वरूप लग रही थी। कई लोग तो चरितनायिका के सामने फूट-फूट कर रोने लगे। चरितनायिका ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

"भाई, डरते क्यों हो ? यह क्या तुम्हारे या हमारे हाथ की बात है ? यह तो मृत्यु का खेल है। उसे मिटाने की ताकत किस में है ? मौत हुई है तो शरीर की हुई है। आत्मा तो अजर अमर है। वे अपना मानव जीवन सफल बना कर गये हैं। हार कर नहीं, इसलिए उनके लिये चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है ? यह मिट्टी तो कहीं न कहीं पड़ती ही। सोजत में पड़ी तो इससे क्या ? यह तो अच्छा हुआ, तुम लोगों को ऐसी भाग्यवती साध्वियाँ और साधु की सेवा का महान् लाभ मिला। और देखना ! प्रभु का स्मरण और धर्माचरण भूलना मत। तुम अपनी आँखों ये घटनाएँ देख चुके हो। अब अपने जीवन को गफलत में मत रखना।"

सभी लोग हाथ जोड़ कर खड़े हुए थे, कहने लगे— धन्य हो गुरु-देवता !" चरितनायिका ने सब को मांगलिक सुना कर विदा किया। सब लोग आश्वस्त हो गए थे। देखिये, चरितनायिका का कितना बड़ा साहस है ? कितनी धीरता थी ? मृत्यु का खेल किस प्रकार अट्टहास किये खड़ा है, फिर भी अन्तहृदय में कोई भय नहीं। अपनी रत्नोपम शिष्याएँ और गुरुनी को, मासीगुरुनी एवं श्रद्धेय फूलचन्द्रजी महाराज का आँखों के सामने वियोग होता है फिर भी धैर्यवती और साहसशीला चरितनायिका ने धैर्य का धागा नहीं तोड़ा। यह प्रवचन आपके अन्तरङ्ग का प्रतिबिम्ब था। ऐसे समय में पत्थर भी काँप उठता है। मौत का डर ऐसा ही है। पर चरितनायिका को धन्य है, जो कालज्वर की भयंकर लीला को देखकर भी हिम्मत नहीं हारी।

की साधना में किसी तरह का विघ्न न आने दूंगी। तन मन से सेवा करूँगी।" प्रवर्तिनीजी—"हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है। तुम्हारे विचार बहुत ऊँचे हैं। मैं तुम लोगों की सहायता से ही अपना संयम पालन कर रही हूँ। तुम्हीं मेरी सहायिका हो। परन्तु यहाँ मेरी सेवा करने वाली भी काफी सतियाँ हैं। मैं तुम्हें जावरा भेजने का विचार कर रही हूँ। वहाँ तुम्हारी दादा गुरुनी तपस्विनी श्रीचौथाजी म० हैं। वे अत्यन्त वृद्ध हैं। वे तुम्हारी सेवा से बहुत सन्तुष्ट हैं। उनके पास जाओ। उनकी सेवा की अभी अत्यन्त आवश्यकता है।"

आपने श्रीमती प्रवर्तिनी म० की आज्ञा को *'तथाऽस्तु'* कह कर शिरोधार्य किया। और थोड़े दिन प्रवर्तिनीश्री म० की सेवा में रह कर मेवाड़ के गाँवों में घुमती हुई मालवा देश के प्रसिद्ध जावरा नगर पधारीं। जावरा आपका चिर-परिचित क्षेत्र था ही। आपके दर्शन करके जनता अपने को धन्य समझने लगी। चौथाजी महासती ने भी आपको अपनी सेवा में पाकर बड़ा ही सन्तोष अनुभव किया। जावरे में ही आपको पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के रतलाम पधारने की खबर मिली। पूज्य श्री का अनुपम अनुग्रह चरितनायिका पर था ही। आपने पूज्य श्री के दर्शन करने की इच्छा प्रगट की। महासती श्रीचौथाजी म० ने खुशी से आज्ञा दे दी। आपने जावर से शिष्यामण्डली सहित विहार किया और रतलाम पहुँचीं।

रतलाम में आचार्यश्री रत्नत्रय की शानदार आराधना कर रहे थे। रतलाम के संघ में धर्म का अपूर्व उत्साह था। पूज्यश्री के कदमों पर चलने के लिये स्थानकवासी-समाज प्राण प्रण से तैयार था। उधर जावरा संघ पूज्य श्री के चातुर्मास के लिये एकमत होकर विनति कर रहा था। पूज्यश्री जावरा संघ की दृढ़ भक्ति और बारबार आग्रह को टाल न सके और

संवत् १६७६ का चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति दे दी। पूज्यश्री ने चरितनायिका की अनुपम भक्ति, शास्त्रीय जिज्ञासा, श्रद्धा, विनय आदि गुणों से प्रभावित होकर आपको भी चातुर्मास के लिए फरमाया। चरितनायिका की पूज्यश्री के समीप चातुर्मास करने की प्रबल इच्छा थी ही। फिर भी आपने देखा—पूज्यश्री के साथ चातुर्मास करने से सन्तों को कहीं तकलीफ न पड़े, इस विचार से पूज्यश्री से अर्ज की—"आपने मुझ तुच्छ साध्वी पर भी कृपा कर साथ में 'चातुर्मास' करने के लिये फरमाया है। यह मेरे लिए कम सौभाग्य की बात नहीं है, तथापि मैं यह जानना चाहती हूँ कि हमारे चातुर्मास करने से आपको किसी तरह का कष्ट तो न पड़ेगा?" पूज्यश्री ने उत्तर में कहा—"नहीं, हमें आपके साथ में चातुर्मास करने से किसी प्रकार का कष्ट न होगा। आप सहर्ष चौमासा कर सकती हैं। जावरा-संघ की आप पर अपूर्व श्रद्धा थी ही। उन्होंने अत्यन्त प्रार्थना करके आप से जावरा-चातुर्मास की स्वीकृति ले ली। रतलाम से चातुर्मास के लिये चरितनायिका पधारी। चातुर्मास में बड़ा ही आनन्द रहा। पूज्यश्री के व्याख्यान और सेवा का आपने लाभ लिया और अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। पूज्यश्री चरितनायिका में संत्य की उदात्त झाँकी पा सके थे। चातुर्मास में जावरा संघ मानो तीर्थ क्षेत्र बन गया था। बाहर से दर्शनार्थी लोगों का तांता-सा लग जाता था। महासती भीमकुंवरकुमारीजी ने ६ दिन व १७ दिन की तपश्चर्या की। और भी धर्म-ध्यान का ठाठ लगा रहा। चातुर्मास की सानन्द समाप्ति हुई।

३२

दीक्षाओं की धूम

"यदि कोई व्यक्ति अपने पड़ौसी की अधिक अच्छी किताब लिख सकता है, अच्छा भाषण कर सकता है, अथवा अधिक अच्छी चीज बना सकता है तो यदि वह जंगल में भी अपना मकान बनाएगा तो संसार उसके द्वार तक मार्ग बना लेगा।"

—'इमरसन'

उपर्युक्त वाक्यों में जीवन का सच्चा आदर्श चित्रित किया गया है। वस्तुतः योग्य व्यक्ति सर्वत्र पूजा जाता है। 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' यह वाक्य इस उक्ति का ही रूपान्तर सा है। हमारी चरित्रनायिका में वह विलक्षण शक्ति थी कि जहाँ जाती, वहाँ अपने प्रेमबल से, ज्ञानबल से व चारित्रबल से जनता को आकर्षित कर लेती। जिसके हृदय में वात्सल्य होता है उसके चरणों में दुनिया झुकने को तैयार हो जाती है। यही कारण है कि चरित्रनायिका का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली बन गया और एक-पर-एक दीक्षार्थिनियों का जमघट लगने लगा। आप तो खूब परख कर विचार-पूर्वक ही किसी को दीक्षा देती थीं, फिर भी आपने अपनी मर्यादा में रहते हुए शिष्या-परिवार में काफी वृद्धि की।

आप मन्दसौर पधारीं। मन्दसौर बहुत पुराना शहर है। यहाँ करीब दस पुरे हैं। इसी कारण इसका प्राचीन नाम 'दशार्ण' था। राजा दशार्ण भद्र ने इसे बसाया था। भगवान् महावीर के समय में भी यह शहर उन्नति की परम सीमा पर था। स्वय राजा दशार्णभद्र भगवान् महावीर का भक्त था। काल के प्रभाव से अब यहाँ जैनियों की सख्या कम होगई है।

मन्दसौर में आपका व्याख्यान उस समय बड़े प्रभावशाली ढंग से होता था। व्याख्यान में प्राय: वैराग्योत्पादक कथाएँ, व चौपाइ आदि भी होतीं। जनता पर आपके व्यक्तित्व का सीधा असर पड़ता था। थोड़े ही दिनों में आपके व्याख्यानों से मंन्दसौर निवासिनी धर्मशीला चाँदबाई को वैराग्य का रंग लग गया। चाँदबाई बड़ी सरलात्मा थी और बुद्धिमती भी। वह चरितनायिका के आचार विचार, प्रकृति आदि का निरीक्षण करने लगी। उसने आपको परख कर अपना विचार आपके पास दीक्षा लेने का स्थिर किया। पर आपके सामने अपने विचार कहने का साहस नहीं होता था। मैं अकेली हूँ, मुझे अपने मानव जीवन को सफल करना चाहिए। यह जीवन बड़ा अनमोल है। सब तरह से मेरे बन्धन टूटे हुए हैं। किसी का लेना देना नहीं है। ऐसे अमूल्य अवसर को मैं हाथ से नहीं जाने देना चाहती। मेरे भाग्योदय से कल्पलता-सम महासतीजी पधारी हैं। अत: शीघ्रता करना चाहिए।" ऐसे विचारों में चाँदबाई झूलती रहती। आपसे यह अकेले में बात करना चाहती थी, इसलिये कि—'शायद आप कोइ कठिन शर्त रखदें और उसका पालन न कर सकी तो फिर दीक्षा की बात मुह से निकालना अच्छा नहीं रहेगा।' यह सोचकर ही वह अवसर की प्रतीक्षा में थी।

एक दिन सभी सतियाँ रत्नकुमारीजी म० को लेने पधारी हुई थीं। चरितनायिका अकेली बैठी थी। बाई ने सोचा—'यह

समय ठीक है।' ऐसा सोचकर वह चारित्रनायिका की सेवा में आकर बैठ गई। कोई बात चीत नहीं हुई। उसने सोचा था कि महासतीजी मुझे दीक्षा के लिए कहेंगी तो मैं अपनी सारी बात खोल कर कहूँगी। पर महासतीजी को क्या मालूम था कि यह दीक्षार्थिनी है? आपने अपनी निस्पृह वृत्ति के कारण दीक्षा के विषय में तो कुछ पूछा नहीं। मामूली परिचय के बाद आपने यही पूछा—बाई तुम्हें क्या बोलचाल, थोकड़े वगैरह आते हैं? तुम्हें कुछ ज्ञान सीखने की इच्छा हो तो सीखना। चाँदबाई ने कहा—महाराज, मुझे ज्ञान ध्यान सीखने की भी लालसा है, आपसे और भी सीखना है। मैं थोड़े ही दिन के लिए नहीं आजीवन आपके पास सीखना चाहती हूँ। अर्थात् मेरा विचार आपके चरणों में दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करने का है।

महासतीजी ने सोचा— यह मेरे पास आज ही आकर दीक्षा लेने की बात कहती है? मैं इसकी प्रकृति से परिचित नहीं, इसके आचरणों से अभिज्ञ नहीं। झटपट दीक्षा देना तो खतरनाक है। पहले इससे पूछूँ तो सही कि यह कहाँ रहती है? किस घराने की है और परिवार में अभी कौन-कौन हैं? आपने पूछा तो चाँदबाई ने सारा परिचय दिया और कहा—महाराज, मेरे ससुराल में तो मैं अकेली हूँ। दूसरी सिर्फ एक गाय है। उसे मैं बड़े प्रेम से पालती-पोसती हूँ। बड़ी-सीधी है। मेरा दीक्षा लेने का तो इरादा है, पर गाय का प्रेम छूटना बड़ा कठिन हो रहा है।

चारित्रनायिका—"तुम एक तरफ तो दीक्षा लेने का विचार कर रही हो, दूसरी ओर कहती हो, गाय नहीं छूट रही है। दोनों काम कैसे हो सकते हैं? हम तुम्हें तो तुम्हारी जाँच पड़ताल के बाद खरी उतरने पर दीक्षा दे सकती हैं, पर गाय को तो साथ नहीं ले सकतीं। हमारी तो अकिंचन-वृत्ति है। धर्मोपकरण और शरीर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रख सकती हैं। तुम एक

काम कर सकती हो। तुम्हारे पीहर में तो सभी हैं, उन्हें गाय सौंप सकती हो। क्या गाय तुम्हारे बिना रह नहीं सकती ?"

चाँदबाई ने कहा—"ठीक है, ऐसा ही करूँगी। पर यह बताइये मुझे आप गाय छोड़ने के बाद में तो दीक्षा दे सकेंगी न ?"

चरितनायिका—"मैं एकदम हाँ' नहीं कह सकती। तुम अभी सेवा में कुछ दिन रह कर ज्ञान ध्यान सीखो। तुम्हारी प्रकृति से पूर्णतः परिचित हो जाने के बाद देखा जायगा।"

चाँदबाई ने अपनी प्रिय गैया अपने पीहरवालों को सौंप दी। स्वयं रातदिन ज्ञान ध्यान सीखने लगी। चरितनायिका ने मन्दसौर के प्रतिष्ठित लोगों से उसके विषय में छानबीन की। फिर चाँदबाई की प्रकृति से संतुष्ट होकर दीक्षा देने की स्वीकृति दी। विक्रम सं० १९७७ की ज्येष्ठ शुक्ला ७ को विधि पूर्वक दीक्षा हुई। साध्वी चाँदबाई चरितनायिका की आज्ञा पालिका और विनीत प्रकृति की थीं। दुर्भाग्य से थोड़े ही समय में वह आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गधाम पहुँच गई।

मन्दसौर से विहार करके चरितनायिका अपनी शिष्य मण्डली सहित छोटी सादड़ी (मेवाड़) पधारीं। छोटी-सादड़ी छोटा-सा क्षेत्र होते हुए भी शहरों से टक्कर लेनेवाला गाँव है। उस समय भी यहाँ शिक्षा का प्रचार अच्छा था। 'श्री गोदावत जैन गुरुकुल' में कई जैन विद्यार्थी धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा पा रहे थे। छोटी सादड़ी के संघ की चातुर्मास के लिए आग्रहभरी विनती मान कर विक्रम सं० १९७७ का चातुर्मास आपने छोटी-सादड़ी में ही करना स्वीकार किया। चातुर्मास में मेवाड़ के लोगों की अत्यधिक भाव-भक्ति रही। उनका सा भावुक और सरल हृदय शहर के लोगों में कम दृष्टिगोचर होता है।

चरितनायिका जब चातुर्मास करने पधारीं, उस समय आषाढ़ मास में ब्यावर में जैन-समाज की अनुपम-विभूति

सरदार कुँवरबाई, व मैनकुँवरबाई के हृदय में वैराग्य की ज्योति जग उठी। उन्होंने आपकी परख पहले से ही करली थी। अत उक्त दोनों बहनों ने अपने-अपने अभिभावकों से आज्ञा प्राप्त करके सं० १९८१ की चैत्र शुक्ला ६ को सहर्ष दीक्षा अंगीकार की।

उक्त दो बहनों की दीक्षा होने के बाद ही मानो आपकी परीक्षा होने वाली थी कि आप में गुरुनी-पद की कितनी योग्यता है? आप कष्ट को सहने में कितनी मजबूत हैं? बात यों हुई। रात के समय आप एक छोटे से पट्टे पर विराज रही थीं, उस समय अचानक ही एक लोहे की पत्ती आपके पैरों में घुस गई। लोहे की पत्ती आपके स्वादिष्ट रक्त में अपना मुख लिपटा कर मानो आपके वैराग्य का कुछ स्वाद लेना चाहती थी। खून की धारा बहने लगी। आपने सोचा—इस समय मैं किसी के सामने कुछ कहूँगी तो यह बैठी हुई बहनें होहल्ला मचाएँगी और दीपक भी यह जला कर अग्निकाय का आरम्भ करेंगी। अत आप चुप रहीं और, कुछ न बोलीं। थोड़ी देर बाद कई साध्वियाँ आईं। उन्होंने ज्यों ही आपका चरण-स्पर्श किया, त्यों ही हाथ खून से लथपथ हो गए। वे घबराने लगीं कि क्या बात है? क्या किसी सर्प ने काट खाया है? वे समझतीं थी आप को कुछ हो गया होगा तो भी कहेंगी नहीं। उन्होंने झटपट कुछ बूढ़ी सतियों को बुलाया और पूछताछ करने लगीं। चरितनायिका ने कहा—"अभी शोर न मचाओ, कुछ नहीं हुआ, एक छोटी-सी पत्ती पैर में घुस गई थी। कोई चिन्ता की बात नहीं है, सब ठीक हो जायगा।" यह सुनते ही वो, साध्वियों ने उस पर कपड़े की पट्टी बाँध दी और कई दिनों बाद वह घाव ठीक हुआ।

यह है सहिष्णुता का जीता जागता नमूना! साधु जीवन में और खास कर गुरु-पद की योग्यता रखने वालों में तो यह कूट कूट भरा होना चाहिए। चरितनायिका इस सहन

शीलता के गुणों से ही इतने उच्च पद पर पहुँची हैं।

थाँदले में दो दीक्षाएँ देकर आपने बदनावर में पदार्पण किया। यहाँ की जनता ने आपके गुणों से आकर्षित होकर अपने यहाँ चातुर्मास कराना चाहा। अत्यन्त आग्रह देख कर आपको यहाँ की प्रार्थना माननी ही पड़ी। चातुर्मास में धर्म ध्यान और तपस्या का ठाठ लगा रहा।

चरितनायिका का जीवदया की ओर प्रारम्भ से ही विशेष ध्यान रहा है। एक दिन आप कहीं बाहर पधार रही थीं। रास्ते में एक तेरापन्थी भाई को लकड़ी फाड़ते हुए देखा। लकड़ी थोहर की थी और पोली-सी दिखती थी। आपने देखते ही उसे कहा—"भाई, तुम जिस लकड़ी को फाड़ रहे हो, वह पोली है, न मालूम कोई जीव-जन्तु इसमें हो, अतः इसे असावधानी से मत फाड़ो।" उसने आपकी बात मानकर सावधानी से लकड़ी फाड़ी और अन्दर देखा तो १२ मैंढक फुदकते हुए निकले। उस भाई के मन में आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागी और दौड़ा हुआ आपके पास आकर कहने लगा—"महाराज! आज तो आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया। मुझ पापी को आपने आज बचा लिया, नहीं तो बेचारे १२ जीव मारे जाते। मैं आज से आपके पास प्रतिज्ञा करता हूँ कि किसी भी निरपराधी प्राणी को नहीं मारूँगा। और हर एक चीज देखभाल कर काम में लूँगा।"

यह है सच्चा उपकार! यद्यपि तेरापन्थी मान्यता के अनुसार मरते हुए किसी जीव की रक्षा करना पाप है, किन्तु अन्तरात्मा की जब आवाज निकलती है, तो सहृदय-व्यक्ति उसे ठुकरा नहीं सकता। चातुर्मास में आपने अठाई (८ उपवास) की और तपस्या में भी दोनों समय स्वय व्याख्यान सुनाती थीं। प्रायः सभी जाति के लोग आप के व्याख्यान में आते और प्रसन्नता

पूर्वक लौटते। इस तरह संवत् १६८१ का चातुर्मास पूरा हुआ।

अब आपको एक विचार तो यह हो रहा था कि मैं मारवाड़ जाकर सम्प्रदाय की साध्वियों की यथायोग्य व्यवस्था करूं। दूसरी ओर यह भी खयाल होता था कि रतलाम में जो वैरागिन रामकुमारीबाई हैं, उसे यदि आज्ञा प्राप्त हो गई तो दीक्षा देने के लिये वापिस लौट कर आना पड़ेगा। इससे तो बेहतर यही होगा कि मैं मालवा में ही इधर उधर के क्षेत्रों में परिभ्रमण करूँ। उज्जैन व इन्दौर के लोगों का काफी आग्रह था। कहने लगे—'आपके पधारने से हम लोगों का मुरझाया हुआ धर्म बाग पुनः उपदेश जल पाकर हरा भरा हो जायगा।' चरितनायिका ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर पधारना मंजूर कर लिया। इन्दौर तो एक तरह से जैनियों का दुर्ग है। यहाँ श्वेताम्बर व दिगम्बर जैन काफी संख्या में हैं। इन्दौर पधारने के थोड़े ही दिनों बाद आपको अचानक जोर की सर्दी लग गई फिर बुखार ने भी आ घेरा। इन्दौर के कई भावुक श्रावकों ने यहाँ के प्रतिष्ठित डाक्टरों से मिल कर आपका इलाज कराना शुरू किया। बहुत उपचार के बाद जाकर कुछ स्वास्थ्य ठीक हुआ। पर इसी बीच श्वास का दर्द एक और नई आफत बनकर आगया। श्वास के दर्द से मिलने का आपके जीवन में पहला ही प्रसंग था। बहुत सी औषधियाँ लीं, तब जाकर एक महीने में बीमारी दूर हुई। फिर भी शरीर में कमजोरी बहुत बढ़ी हुई थी। चरितनायिका का विचार यहाँ से शीघ्र ही विहार करने का था, परन्तु श्रावक लोगों ने अपनी विनति की डोर ढीली न छोड़ी और आग्रह पर आग्रह करते रहे। उन्होंने आप से कहा—"महाराज! आप इन्दौर तो पधारीं, पर थोड़े ही दिनों बाद यहाँ अस्वस्थ हो गईं। हमारे अन्तराय-कर्म के उदय से हमें सेवा का विशेष लाभ भी नहीं मिला। हमें आपके सदुपदेश के

सत्संग का लाभ तो बिल्कुल ही नहीं उठाया। बस अब आप कृपा करके कुछ दिन और विराजकर हमें अपनी वाणी का लाभ दें और नगर का सौभाग्य बढ़ायें।"

चरितनायिका ने अपने साथ की सतियों की ओर दृष्टि डाली और उनका अभिप्राय जानना चाहा। पूछा—"कहो, तुम्हारा क्या विचार है ? तुम्हें ही सारा काम संभालना पड़ता है। तुम लोग विचार कर मुझे अपनी राय दो।"

सभी साध्वियों ने कहा—"अन्नदाता ! हम क्या बतायें ? जो आपका विचार है, वही हमारा विचार है। आप अपने स्वास्थ्य को देख लीजिये। इन सेविकाओं को तो जो आज्ञा मिलेगी उसका पालन करने को तैयार हैं। आपको यहाँ पर श्वास की एक नई बीमारी लग गई। अतः हमारे ख्याल से जलवायु का परिवर्तन होना आवश्यक है। कहीं वह बीमारी फिर से लौट कर आ जाय। फिर आपके ध्यान में जचे सो करें। हम आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहतीं।"

आपने सभी साध्वियों से परामर्श लेकर इन्दौर से विहार करना ही उचित समझा और विनति करने वाले भाइयों से कहा—"भाइ, तुम लोगों की विनति ध्यान में है। पर इस समय तुम हमें मत रोको। मेरे स्वास्थ्य के लिए मुझे जलवायु परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। बस इस समय मेरे स्वास्थ्य में जिससे सुधार हो वैसा काम करो।"

सब लोग मान गये और बोले—"महासतीजी को ज्यादा कष्ट देना उचित नहीं है। हमारे भाग्य होंगे तो फिर कभी आपका पदार्पण होगा ही।" चरितनायिका ने इन्दौर से उज्जैन आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए खाचरोद में प्रवेश किया।

इधर रतलाम में वैरागिन राजकुमारीबाई ने दीक्षा की आज्ञा न मिलने पर चौविहार उपवास आरंभ कर दिया। सस्‌

रक्षकों ने फिर भी कसौटी की और उसे एक कोठरी में बन्द करके ताला लगा दिया। तीन दिन तक कोठरी में बन्द रक्खा। फिर भी धर्म में दृढ़ राजकुमारीबाई ने आज्ञा के लिए तकाजा करना न छोड़ा। अन्ततो गत्वा-निरुपाय होकर रक्षकों ने दीक्षा के लिये अनुमति देदी। माघ शुक्ला ५ का मुहूर्त निकाला गया।

चरितनायिका खाचरोद में विराजित थीं, अतः वहाँ से विनति करके आप को बुलाया गया। आपने रतलाम पधार कर वैरागिन राजकुमारी को सं० १६८१ माघ शुक्ला ५ को भगवती दीक्षा प्रदान की।

इस तरह चरितनायिका के पास आए साल दीक्षाओं की धूम मची रहती। आपकी आकर्षण शक्ति और प्रतिभा ही ऐसी थी कि वैराग्य का अंकुर पैदा होजाता। जहाँ सच्चे त्याग और वैराग्य का झरना बहता है वहाँ दूर-दूर से कष्ट उठाते हुए संसारताप से संतप्त, वैराग्यरस के प्यासे पथिक चले ही आते हैं।

प्रवर्तिनी-पद

जैन-संस्कृति गुणों की पुजारिणी है। उसके सामने वैभव, वंश, जाति या धन की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। वह ब्राह्मण के घर में जन्म ले लेने से ही उच्चता का फैसला नहीं दे देती है। वह तो उसमें तभी ब्राह्मणत्व समझती है, जब ब्राह्मण के गुण मौजूद हों। यही कारण है कि जैनधर्म में पंचपरमेष्ठी के आगे किसी नाम का उल्लेख नहीं है। उसे नाम से कुछ नहीं लेना है, उसे तो व्यक्ति के गुणों से काम है। गुणों के अनुसार ही यहाँ किसी को पद दिया जाता है। जैन-संस्कृति में पद का महत्त्व भी मानव जाति के समक्ष एक उज्ज्वल महत्त्व उपस्थित करता है। यहाँ योग्यता के लिये स्थान है, ऊँचे गुणों और आदर्शों की ही कीमत है।

जो किसी पद को पाकर अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं, अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतः निभाते हैं अपने जीवन में सद्गुणों की सुगन्ध भर लेते हैं, उनके चरणों में विश्व की प्रतिष्ठा हाथ जोड़ कर खड़ी हो जाती है। उसे कहीं ढिंढोरा नहीं पीटना पड़ता। कहीं विज्ञापन नहीं करना पड़ता। वह स्वयं भले ही प्रतिष्ठा से सौ कोस दूर भागना चाहे पर वह उसे छोड़ कर नहीं जाती। एक सद्गुणी व्यक्ति के पीछे प्रतिष्ठा-देवी छाया की तरह दिन रात चक्कर काटा करती है।

पर्वत की दुर्गम घाटी में एक फूल खिलता है। सुगन्ध बिखरती है। आसपास का वायुमण्डल महक उठता है। वह कहीं अपने लिये पुकार करने नहीं जाता कि मेरी सुगन्ध के आओ। पर सुगन्ध के कद्रदाँ भौंरे अपने आप ही उसके पास पहुँचते हैं।

हाँ, तो मनुष्य भी फूल की तरह यदि समाज को अपने सद् गुणों की सुगन्ध से महका देता है तो, प्रतिष्ठा करने वाले सज्जनों की भीड़ अपने आप उसे घेर लेगी। उसे केवल काम करते रहना चाहिए। फल की ओर आँखें उठाने में महत्त्व नहीं। कर्तव्य निष्ठ व्यक्ति ही उच्चपद का सच्चा अधिकारी होता है।

हमारी चरितनायिका ने अपने जीवन में चुपचाप काम किया है। उन्होंने कभी प्रतिष्ठा का मोह नहीं रक्खा। परन्तु समाज इतना कृतघ्न नहीं है जो उनके कार्यों को भुलादे। वह गुणी के गुणों की कद्र किये बिना नहीं रहता। चरितनायिका की कर्त्तव्य-शक्ति ज्यों ही फैली, त्यों ही प्रतिष्ठा-सेवी उनके पीछे अपने आप चक्कर काटने लगी।

विक्रम सं० १९७८ के ज्येष्ठमास के प्रारम्भ में श्रीमती वयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी महासती श्री स्नेहकुमारीजी के शरीर में अस्वस्थता बढ़ने लगी। ब्यावर श्रीसंघ उनकी पवित्र सेवा का लाभ उठा रहा था। वृद्ध होते हुए भी महासतीजी अपनी तपश्चर्या की ज्योति जला रही थीं। एकाएक महासतीजी म० का शारीरिक बल कम होने लगा। नेत्रों की ज्योति क्षीण होती जा रही थी। बुद्धिमती वृद्ध प्रवर्तिनीजी ने विचार किया—"मेरा शरीर काफी वृद्ध हो चला है। जीवन का क्या भरोसा है? प्राणी मात्र का जीवन क्षणभंगुर है। कोई भी अपने को चिरस्थायी नहीं कह सकता। मृत्यु किस समय आकर गला दबायेगी, यह हम जैसे अल्पज्ञ जान भी नहीं सकते। ऐसी दशा में क्षण भर का भी

भरोसा नहीं करना चाहिए, फिर भी स्वास्थ्य, युवावस्था आदि देखकर हम थोड़ा सा अनुमान लगा ले सकते हैं कि अभी कुछ दिन संसार में टिके रहेंगे। पर स्वास्थ्य गिर जाने या वृद्धावस्था के आ धमकने पर तो हर-एक व्यक्ति को तैयार हो जाना चाहिए। उसे अपना सारा उत्तरदायित्व दूसरों को सौंप कर तथा सारे सम्बन्धों से नाता तोड़ कर परलोक विदा होने के लिये तत्पर रहना चाहिए।"

"ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्मिलित उन्नति के लिये भगवान् महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना की है। चतुर्विध संघ में श्रमण और श्रमणी प्रधान हैं। जो लघुकर्मा जीव संसार से विरक्त होकर अपना सारा जीवन धर्माराधन में लगा देना चाहते हैं, वे पंच महाव्रतों का पालन शुद्ध रूप से करने के लिए हमारे साथ रहते हैं। साधुओं पर नेतृत्व करने के लिये, उनके ज्ञानादि गुणों का विकास करने के लिये आचार्य चुने जाते हैं और साध्वियों पर नेतृत्व करने के लिए प्रवर्तिनी चुनी जाती है। उसी पर चातुर्वर्ण्य-संघ के हित का सारा भार होता है। अब मेरा भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं अपने ही हाथों से किसी योग्य व्यक्ति के सुयोग्य कन्धों पर प्रवर्तिनी पद का भार डाल कर मुक्त हो जाऊँ और निश्चिन्त होकर परलोक-यात्रा करूँ।"

श्रीमती वयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी ने अपने सम्प्रदाय की समस्त साध्वियों पर एक सरसरी निगाह डाली। क्या आप बता सकते हैं कि वृद्ध प्रवर्तिनीजी की नजर किस पर जाकर ठहरेगी? वह विश्वासपात्र कौन व्यक्ति है, जो प्रवर्तिनी-पद को सम्भाल सके?

वह व्यक्ति और कोई नहीं, हमारी चरितनायिका श्रीमती आनन्दकुमारीजी ही हैं। परन्तु थोड़ी देर ठहरिये। मैं आपको किसी दूसरी ओर लेजाना चाहता हूँ। प्रवर्तिनी-पद भी कोई

पर्वत की दुर्गम घाटी में एक फूल खिलता है। सुगन्ध बिखरती है। आसपास का वायुमण्डल महक उठता है। पर कहीं अपने लिये पुकार करने नहीं जाता कि मेरी सुगन्ध आओ। पर सुगन्ध के कदरदाँ भौंरे अपने आप ही उसके पास पहुँचते हैं।

हाँ, तो मनुष्य भी फूल की तरह यदि समाज को अपने सद्गुणों की सुगन्ध से महका देता है तो, प्रतिष्ठा करने वाले सज्जनों की भीड़ अपने आप उसे घेर लेगी। उसे केवल काम करते रहना चाहिए। फल की ओर आँखें उठाने में महत्त्व नहीं। कर्मण्य निष्ठ व्यक्ति ही उच्चपद का सच्चा अधिकारी होता है।

हमारी चरित्रनायिका ने अपने जीवन में चुपचाप काम किया है। उन्होंने कभी प्रतिष्ठा का मोह नहीं रक्खा। परन्तु समाज इतना कृतघ्न नहीं है जो उसके कार्यों को भुलादे। वह गुणी के गुणों की कद्र किए बिना नहीं रहता। चरित्रनायिका की कर्तव्य-शक्ति ज्यों ही फैली, त्यों ही प्रतिष्ठा-देवी उनके पीछे अपने आप चक्कर काटने लगी।

विक्रम सं० १९७८ के ज्येष्ठमास के प्रारम्भ में श्रीमती वयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी महासती श्री मेघकुमारीजी के शरीर में अस्वस्थता बढ़ने लगी। ब्यावर श्रीसंघ उनकी पवित्र सेवा का लाभ उठा रहा था। वृद्ध होते हुए भी महासतीजी अपनी तप आर्यों की ज्योति जला रही थीं। एकाएक महासतीजी म० का शारीरिक बल कम होने लगा। नेत्रों की ज्योति क्षीण होती जा रही थी। बुद्धिमती वृद्ध प्रवर्तिनीजी ने विचार किया—"मेरा शरीर काफी वृद्ध हो चला है। जीवन का क्या भरोसा है? प्राणी मात्र का जीवन क्षणभंगुर है। कोई भी अपने को चिरस्थायी नहीं कह सकता। मृत्यु किस समय आकर गला दबावेगी, यह हम जैसे अल्पज्ञ जान भी नहीं सकते। ऐसी दशा में क्षण भर का भी

भरोसा नहीं करना चाहिए, फिर भी स्वास्थ्य, युवावस्था आदि देखकर हम थोड़ा सा अनुमान लगा ले सकते हैं कि अभी कुछ दिन संसार में टिके रहेंगे। पर स्वास्थ्य गिर जाने या वृद्धावस्था के आ धमकने पर तो हर-एक व्यक्ति को तैयार हो जाना चाहिए। उसे अपना सारा उत्तरदायित्व दूसरों को सौंप कर तथा सारे सम्बन्धों से नाता तोड़ कर परलोक विदा होने के लिये तत्पर रहना चाहिए।"

"ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्मिलित उन्नति के लिये भगवान् महावीर ने चतुर्विध-संघ की स्थापना की है। चतुर्विध संघ में श्रमण और श्रमणी प्रधान हैं। जो लघुकर्मा जीव संसार से विरक्त होकर अपना सारा जीवन धर्माराधन में लगा देना चाहते हैं, वे पंच महाव्रतों का पालन शुद्ध रूप से करने के लिए हमारे साथ रहते हैं। साधुओं पर नेतृत्व करने के लिये, उनके ज्ञानादि गुणों का विकास करने के लिए आचार्य चुने जाते हैं और साध्वियों पर नेतृत्व करने के लिये प्रवर्तिनी चुनी जाती है। उसी पर चातुर्वर्ण्य-संघ के हित का सारा भार होता है। अब मेरा भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं अपने ही हाथों से किसी योग्य व्यक्ति के सुयोग्य कन्धों पर प्रवर्तिनी पद का भार डाल कर मुक्त हो जाऊँ और निश्चिन्त होकर परलोक-यात्रा करूँ।"

श्रीमती पयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी ने अपने सम्प्रदाय की समस्त साध्वियों पर एक सरसरी निगाह डाली। क्या आप बता सकते हैं कि वृद्ध प्रवर्तिनीजी की नजर किन पर आकर ठहरेगी? वह विश्वासपात्र कौन व्यक्ति है, जो प्रवर्तिनी-पद को सम्भाल सके?

वह व्यक्ति और कोई नहीं, हमारी चरितनायिका श्रीमती आनन्दकुमारीजी ही हैं। परन्तु थोड़ी देर ठहरिये। मैं आपको किसी दूसरी ओर लेजाना चाहता हूँ। प्रवर्तिनी-पद भी कोई

व्याख्यान में विराजते समय आपकी सौम्य-मूर्ति देखते ही बनती थी। मुख से निकलने वाले वचन इतने मधुर और शान्तिप्रद होते थे, मानो अमृत बरस रहा हो। जिसने एक बार आपकी दिव्य छवि निरखली, उसका क्रोध तो दूर से ही हाथ जोड़ कर चला जाता। सोजत के फालग्वर क मपदूष क समय आपने जनता पर धर्मधीरता की धाक जमा दी थी।

श्रीमती वयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी ने उपर्युक्त गुणों स आकर्षित होकर हमारी चरितनायिका पर ही दृष्टि ठहराई और उन्हें प्रवर्तिनी-पद देने का संकल्प कर लिया।

दिक्षा लेने के बाद सरल भाव से बड़ी आनन्दकुमारीजी म० पू० प्रवर्तिनीजी श्री रत्नकुमारीजी और तत्पश्चात् मेंयकुमारीजी आदि महासतियों की सेवा में अपने आपको समर्पण कर देना और संघ की निरन्तर सेवा करते हुए उच्च संयममय जीवन बिताना ही चरितनायिका का उद्देश्य था। वस्तुतः अपने गुणों से ही आप पूजा की पात्र बनी हुई थीं।

श्रीमती पू० प्रवर्तिनीजी ने पास में रहने वाली साध्वियों के सामने अपने विचार रक्खे। कहा—"मैं आनन्दकुमारीजी को अपनी उत्तराधिकारिणी बनाना चाहती हूँ, आप सब की क्या राय है ?"

हीरांजी, सोनाजी, पानाजी, राधाजी, सुगनकुमारीजी (ब्यावर वाले) धुमाजी आदि उपस्थित सभी साध्वियों ने एक स्वर से प्रवर्तिनीजी की बात का हार्दिक समर्थन किया। सभी साध्वियाँ चरितनायिका के उत्तमोत्तम गुणों से परिचित थीं। उस समय रतलाम व ब्यावर संघ के उपस्थित अग्रगण्य व्यक्तियों के सामने भी प्रवर्तिनीजी ने अपने विचार प्रस्तुत किये। सभी श्रावकों ने प्रवर्तिनीजी के चुनाव का हृदय से अभिनन्दन किया। धर्म-राज्य को चलाने वाली ऐसी सुयोग्य-नेत्री को पाकर किसे

अपार आनन्द न होता ? सब की अनुकूल सम्मति पाकर प्रव र्तिनीजी के हर्ष का पार न रहा।

किन्तु, जिस समय चरितनायिका को प्रवर्तिनी-पद दिये जाने का संकल्प हो रहा था, उस समय वे अजमेर के आस पास ब्यावर आदि क्षेत्रों में विचरण कर रही थीं। उनकी कीर्ति भी मानो साथ ही परिभ्रमण कर रही थी।

अब की बार प्रवर्तिनीजी ने अपने सांसारिक पक्ष के भतीजे रतलाम निवासी श्री बालचन्दजी श्रीश्रीमाल से पूछा— "आनन्दकुमारीजी इस समय कहाँ हैं ? उन्हें मेरी अस्वस्थता की सूचना दे दो। मालूम होता है उन्हें पता नहीं लगा, अन्यथा वह शीघ्र ही बिना बुलाए यहाँ पहुँच जातीं।"

हमारी चरितनायिका जब नजदीक के क्षेत्रों में विचरतीं तो बड़ी आनन्दकुमारीजी म० या दूसरी साध्वियों के साथ स्वयं ही साल भर में कम से कम एक चक्कर प्रवर्तिनीजी म० के पास लगा जाती थीं। आपका विराट्-हृदय निमन्त्रण के फेर में नहीं पड़ता था, फिर अब तो अस्वस्थता की स्थिति थी। इस समय वे कैसे रुकी रह सकती थीं ? आप कर्तव्य के लिये कमर बाँधे हरदम तैयार रहती थीं।

उसी समय श्री बालचन्दजी श्रीश्रीमाल मांगलिक सुनकर ब्यावर की ओर चल पड़े। वे सीधे चरितनायिका की सेवा में उपस्थित हुए, और आप की सेवा में अर्ज की—प्रवर्तिनीजी म० की आज्ञा है कि आप शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से विहार करके ब्यावर पहुँच जाय। प्रवर्तिनीजी म० के शरीर में अस्वस्थता रहती है, इसलिए आपको यह सूचना भेजी है।

सूचना मिलने की देर थी। विहार करते देर न हुई। प्रव र्तिनीजी म० अस्वस्थ हों, और याद करती हों, फिर भला किसी प्रकार का विलम्ब हो सकता है ? कभी नहीं। मार्ग के क्षेत्रों में

कहीं भी अधिक न ठहर कर आप सीधे ब्यावर पहुँचीं।

इधर प्रवर्तिनीजी और उधर परिव्राजिका, दोनों की प्रसन्नता का पार न था। दोनों का संगम ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गंगा और यमुना मिली हों। कुछ समय तक सन्नाटा छाया रहा। पश्चात् परिव्राजिका ने वन्दनादि करके स्वास्थ्य का वृत्तान्त पूछा और निवेदन किया—"मेरे योग्य क्या सेवा है? जो कुछ सेवा हो, फरमाइये, मैं निःसंकोच भाव से करने को तैयार हूँ।" वृद्ध प्रवर्तिनीजी न जरा रुकते हुए कहा—"आनन्द कुमारीजी! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। मेरा शरीर इस समय काफी अस्वस्थ है। वृद्धावस्था भी है। कुछ पता नहीं किस समय क्या दशा हो? मानव जीवन क्षणभंगुर है, इसका विश्वास ही क्या? मैंने साधना के क्षेत्र में लम्बा जीवन बिताया है। मैं चाहती हूँ कि सम्प्रदाय की बागडोर किसी योग्य हाथों में सौंप दूँ और निश्चिन्त होकर अपनी आत्म-साधना करूँ। अतः मैंने अपनी उत्तराधिकारिणी बनाने के लिये तुम्हें चुना है। तुम मुझे सब तरह से योग्य दिखती हो। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरी बात मानकर अपनी स्वीकृति मुझे दे दोगी। बस, अभी तो तुम्हारे लिये यही सेवा है।"

यह बात सुनते ही परिव्राजिका का चेहरा गम्भीर बन गया। जैसे कोई परेशानी आ पड़ी हो। परिव्राजिका ने यह कल्पना ही नहीं की थी कि एकदम इतनी बड़ी सेवा–सारे संघ का भार मुझे सौंपा जायगा। आपने सोचा था—शायद कोई छोटा बड़ा सेवा का काम होगा, वह फरमाएँगी।

महान् व्यक्ति अपने सामर्थ्य को बराबर तोलते हैं और जितना सामर्थ्य होता है उससे भी कम मानकर चलते हैं। इससे उनके सामर्थ्य का सतत विकास होता जाता है।

श्रीमती परिव्राजिका प्रवर्तिनी-पद पर नियुक्त किये जाने

का विचार सुनकर अपनी शक्ति के भरोसे से सम्प्रदाय का भार बोझने लगीं। साधारण व्यक्ति होता तो पद का नाम सुन कर फूला न समाता। मगर चरितनायिका इसे बड़ा भार समझने लगीं। उन्होंने अपने विशाल सम्प्रदाय पर नजर दौड़ाई और कहा—"अन्नदाता! मैं तो आपकी एक क्षुद्र शिष्या हूँ। यह पद बड़ा महत्त्वपूर्ण है, मैं अपने को अभी इस पद के योग्य नहीं पा रही हूँ। मुझ से अधिक अनुभव, योग्यता, शास्त्रीयज्ञान तथा उम्रवाली साध्वियाँ इस सम्प्रदाय में विद्यमान हैं। फिर जिस भार को वहन करने में उन्हें असमर्थ समझा गया, क्या मैं उसे वहन कर सकूँगी। मेरा काम तो संघ की सेवा करना और सब से छोटी बन कर रहना है ? अत यह पद आप और किसी योग्य महासतीजी को दें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरी कम जोर आत्मा अभी इस गुरुतर भार को कैसे उठा सकेगी ?"

श्रीमती वयोवृद्धा प्रवर्तिनीजी ने कहा—"मैंने तुम्हें योग्य समझ कर ही इस पद को देने का विचार किया है। तुम सरीखी प्रतिभाशालिनी, तेजस्विनी, विनयमूर्ति और धीरवीर महासती इस भार को सम्भाल कर अधिकाधिक विकास करेगी, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। मैं समझती हूँ, तुम्हारी ओजस्विनी वाणी, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व इन सब कार्यों को करने में समर्थ है। मैंने सब बातें सोच कर ही तुम्हें प्रवर्तिनी-पद के लिये चुना है। आशा है तुम मेरी इस आज्ञा का शिरोधार्य करोगी।"

उस समय ब्यावर में मुनिश्री हीरालालजी महाराज भी विराजमान थे, उन्होंने भी आपको प्रवर्तिनी पद देने के लिए काफी प्रयत्न किया, और यह पद स्वीकार करने के लिए बाध्य भी किया। त्यागमूर्ति श्रीमती सोनाजी आर्या का भी आपको प्रवर्तिनी पद दिलाने में मुख्य हाथ रहा था। चरितनायिका जिस समय प्रवर्तिनी-पद लेने के लिये मानाकानी कर रही थीं, और

इस गुरुतर भार को उठाने से हिचकिचा रही थीं; उस समय सोनाजी आर्या ने उठ कर आपकी पीठ थपथपाई और विश्वास दिलाया कि 'आप इस पद को ग्रहण करने में किसी तरह का संकोच न करें। आपको किसी प्रकार की उलझन में नहीं पड़ना होगा। सम्प्रदाय में अगर कोई उलझन पैदा हुई तो मैं उसे सुलझाने में पूर्णतः सहायता करूँगी।' सोनाजी आर्या की इस साहसपूर्ण उक्ति से चरितनायिका में थोड़ी-सी दृढ़ता आई। पर आप मन ही मन समझ रही थीं कि परिस्थितियों से परिचित हुए बिना पूर्ण स्वीकृति दे देना मेरे लिये उचित नहीं है।

हाँ, प्रवर्तिनी महाराज की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है, मगर मुझे अपनी शक्ति को भी तो देखना चाहिए। कहावत है— *'ते तो पांव पसारिये जेती लाम्बी सौर।'* इस पद का सम्बन्ध सिर्फ मेरे साथ ही नहीं, अपितु सारे संघ के साथ है। अतः जब तक मैं सभी साध्वियों का, संघ का रुख न जान लूँ, तब तक कैसे निर्णय दे दूँ ?" इस तरह चरितनायिका चुप हो गई और गहरे विचार में डूब गई।

यह देख कर वृद्ध-प्रवर्तिनीश्री उठीं और चरितनायिका को एक ओर ले जाकर समझाया और बोलीं—"अब तुम्हें किसी प्रकार की आनाकानी न करते हुए यह पद ग्रहण कर लेना चाहिये।"

श्री श्रद्धेय पू० प्रवर्तिनीजी का प्रेमपूर्ण आग्रह, उपस्थित संघ की विनम्र प्रार्थना और साध्वियों का आश्वासन देख कर आखिरकार आपको प्रवर्तिनी-पद स्वीकार करना ही पड़ा।

संसार का यह स्वाभाविक नियम है कि सच्चे हृदय से ठुकराई हुई निधि पुनः पुनः लौट कर त्यागनेवाले के पास आती है। इस नियम से चरितनायिका के द्वारा प्रवर्तिनी पद के लिये बार बार इन्कार करने पर भी उन्हीं के गले में यह पद रूप

हार आकर पड़ा ।

चरितनायिका की स्वीकृति पाकर श्रीमती वृद्ध-प्रवर्तिनी को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उसी दिन, संवत् १९७८ ज्येष्ठ शुक्ला ४ रविवार के रोज श्री आनन्दकुमारीजी को प्रवर्तिनी पद की चादर प्रदान करने का दिवस घोषित कर दिया ।

ज्येष्ठ शुक्ला ४ को एक बजे तक का समय प्रवर्तिनी-पद प्रदान करने के लिये शुभ माना गया था । अतः प्रातःकाल से ही दर्शकों की भीड़ जमा होने लगी । रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे हुए विभिन्न-प्रान्त के निवासियों का यह सम्मेलन अपूर्व-सा दिखाई देरहा था । यह ऐसा मालूम पड़ता था मानो जिनशासन का उद्यान रंग बिरंगे फूलों से भरा हो और विकास के यौवन में प्रवेश कर रहा हो । नयावास, (ब्यावर) में श्रीमान् अमरचन्दजी बोमेसरा के मकान के सामनेवाली हवेली में यह समारोह सम्पन्न होना था । ब्यावर और ब्यावर से बाहर अजमेर, सोजत, देवगढ़, उदयपुर, रतलाम और बीकानेर आदि की श्रावक श्राविकाएँ भी काफी संख्या में उपस्थित थीं । एक ही धार्मिक उद्देश्य के लिये इतना उत्साह प्रदर्शित करना इस बात की सूचना देता था कि भारतीय जीवन में धर्म अभी बहुत बड़ी चीज है । भारतीय-जनता धर्म की छत्र-छाया में अपने प्रान्तीय तथा जातीय भेदभाव को भी भुला सकती है ।

धीरे धीरे भीड़ इतनी बढ़ गई कि उपाश्रय में जगह न रही । बाहर सड़क पर शामियाने ताने गए ।

लगभग १०। बजे श्रद्धेय वृद्ध प्रवर्तिनीजी, व चरितनायिका अन्य साध्वियों के सहित बाहर पधारीं । श्रावक-श्राविकाओं ने खड़े होकर आपका अभिनन्दन किया और भक्ति भावपूर्वक वन्दना की । थोड़ी देर बाद ही वृद्ध-प्रवर्तिनीजी म० तथा सब साध्वियों ने मिलकर नवकार मंत्र का पाठ किया और मंगला

मरण के बाद साध्वी श्री सोनाजी ने 'नन्दीसूत्र' का स्वाध्याय किया। तदनन्तर श्रीमती यशोकुवरा प्रवर्तिनीजी ने चरितनायिका को सम्बोधित करके अपना संदेश देना प्रारम्भ किया। आपने कहा—

'आनन्दकुमारीजी ! आज से १५ साल पहले वैराग्य मूर्ति प्रवर्तिनी श्री रतनकुमारीजी ने इस भार को संभालने के लिए मुझे चुनी थी। संवत् १९९२ फाल्गुन शुक्ला ३ को उनके दिवंगत होने के बाद यह सारा भार मुझ पर आपड़ा। मेरे शरीर की अस्वस्थता के कारण मैंने ब्यावर में स्थिरवास किया। शरीर के अस्वस्थ रहते हुए भी आज तक मैंने यथाशक्ति इस भार को निभाया है। अचानक ही कई दिनों से मेरे शरीर में व्याधि बढ़ रही है और मैं अत्यधिक अशक्त होगई हूँ। इस व्याधि ने मुझे अपनी उत्तराधिकारिणी चुनने की सूचना दे दी है। जिस प्रकार स्वर्गीया प्रवर्तिनीजी म० ने मुझे यह उत्तरदायित्व सौंपा था उसी प्रकार मेरा भी यह कर्तव्य होजाता है कि मैं भी किसी योग्य साध्वी के हाथों में यह उत्तरदायित्व सौंप दूँ और निश्चिन्त होकर जीवन की अन्तिम साधना करूँ। आपका स्मरण आते ही मुझे प्रसन्नता और निश्चिन्तता होगई। मैंने सोचा— आप सरीखी दृढधर्मिणी, धैर्यवती और कठोर संयमी प्रवर्तिनी को पाकर स्व० प्रवर्तिनी श्रीरंगूजी म० की यह सम्प्रदाय अधिकाधिक विकसित होगी। मुझे पता हुए है कि आप मेरी तथा संघ की इच्छा को मान देकर सवीजी से यहाँ आगई हैं। अतः अब इस भार को संभालिए और मुझे निश्चित कर के श्रीसंघ का हर्ष बढ़ाइये।

अन्त में मेरा यही कहना है कि परमप्रतापशालिनी स्व० श्रीरंगूजी महाराज की यह सम्प्रदाय आप जैसी बुद्धिमती प्रवर्तिनी को पाकर दिन-प्रतिदिन ज्ञान, दर्शन और चारित्र में वृद्धि

करे। पूर्ववर्तिनी प्रवर्तिनियों ने जिस प्रकार संयम के स्तर को कायम रक्खा है, आप उसे ऊँचा उठाने का प्रयत्न करें। आपकी प्रवृत्ति इस प्रकार की हो जिससे श्रावक श्राविकाओं में धर्म-श्रद्धा वृद्धिगत हो। वे सदा सत्य के पक्षपाती बनें। सच्चे साधु साध्वियों को मानें और सच्चे धर्म पर चलें। आशा है आपके कारण अहिंसाधर्म का महत्त्व बढ़ेगा और उन्मार्गगामी भोले भाले जीव सन्मार्ग पर आरूढ़ होंगे।

यही सब बातें सोच कर मैंने आपको 'प्रवर्तिनी पद' के लिये चुना है। आज का दिन चादर प्रदान दिवस है। यह दिन जीवन में चिरस्मरणीय रहेगा क्योंकि आज के दिन संघ को परमसौभाग्य से आप जैसी योग्य नेत्री मिलेगी। 'अत प्रवर्तिनी पद की स्वीकृति के प्रतीक रूप इस पछेवड़ी को धारण कीजिए।"

यह कह कर वृद्ध प्रवर्तिनीजी ने स्वयं धारण की हुई पछेवड़ी उतारी और संघ के जयनाद के साथ नवीन-प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी को ओढ़ा दी। उस समय उपस्थित ३० ३२ साध्वियों ने भी अपनी स्वीकृति प्रदर्शित करने के लिये चादर ओढ़ाने में हाथ लगाया। सारी सभा हर्ष-ध्वनि से गूँज उठी।

इसके बाद नवीन-प्रवर्तिनीजी ने वृद्ध प्रवर्तिनीजी तथा ज्येष्ठ साध्वियों को वन्दना की। दूसरी साध्वियों ने क्रमश चरित नायिका को वन्दना की। तदनंतर सभी श्रावक और श्राविकाओं ने सविधि वन्दन किया। वृ० प्रवर्तिनीजी ने नवीन प्रवर्तिनी को अपने समीप बिठाया और संघ को लक्ष्य करते हुए कहा—

"संघ का परम सौभाग्य है कि ऐसी योग्य साध्वी उसे प्रवर्तिनी के रूप में मिली है। आज से जो भी संघ-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्य करना हो वह इन प्रवर्तिनीजी की आज्ञा से करें और सभी साध्वी-समुदाय इनकी छत्र-छाया में रह कर अपने ज्ञान दर्शन-चारित्र को बढ़ावे।"

इस वक्तव्य के पश्चात् समस्त उपस्थित साध्वी मण्डली ने चरितनायिका का अभिनन्दन किया और उनकी आज्ञा में रहने का विश्वास दिलाया। इसके बाद विभिन्न प्रान्तों क संघों की ओर स प्रमुख श्रावकों ने हर्ष प्रगट किया और नवीन-प्रवर्तिनीजी की आज्ञा पालन करने का वचन दिया।

उसी अवसर पर नवीन प्रवर्तिनीजी श्री आनन्दकुमारीजी ने नम्रता-पूर्वक उस पद को स्वीकार करते हुए निम्न आशय का वक्तव्य दिया—

"श्रद्धेय प्रवर्तिनीजी महाराज तथा श्रीसंघ न मुझ जैसी साधारण-सेविका के निर्बल कंधों पर गुरुतर भार डाला है, उस सफलता के साथ वहन करना साधारण कार्य नहीं है। खासतौर से मेरे जैसी थोड़ी शक्तिवाली साध्वी क लिए तो विशाल सम्प्रदाय क भार को सम्भालना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। फिर भी मुझ पर पूजनीया प्रवर्तिनीजी महाराज की बड़ी कृपा है। उन्होंने मुझे इस महत्त्वपूर्ण पद को लेने के लिए बड़ी प्रेरणा दी है और मुझे आश्वासन दिलाया है कि तुम इस पद को संभालने के योग्य हो। आप लोगों ने भी जिस प्रकार मेरा उत्साह बढ़ाया है उससे जान पड़ता है कि मुझ पर संघ का अत्यंत प्रेम है। और वह मुझे यह भार उठाने में सहायता देगा। साध्वी-मण्डली क हार्दिक सहयोग के बिना तो काम चलना ही कठिन है। अतः उनसे भी सहयोग की आशा करती हूं। इसी आशा और विश्वास क बल पर मैं पूजनीय प्रवर्तिनीजी म० तथा संघ की आज्ञा शिरोधार्य करती हूं।

व्यवहार में पदवी सम्मान की वस्तु माना जा सकती है पर धार्मिक क्षेत्र में वह उत्तरदायित्व की चीज है। बड़ों का पद बड़े ही पूरी तौर से सम्भाल सकते हैं। मैं तो इस पद को फूलों का नहीं, कांटों का ताज समझती हूं। मैं अपने को इस पद की

प्राप्ति से ही गौरवशालिनी नहीं समझूँगी, परन्तु इस पद के अनुरूप श्रीसंघ की सेवाकर सकी तो अपने को गौरवान्वित समझूँगी। यह पद नाम के लिए नहीं, काम करने के लिए है। श्रीसंघ की दृष्टि में मैं भले ही प्रवर्तिनी या उच्च पदाधिकारिणी समझी जाऊँ, पर मैं तो अपनी समझ में धर्म की एक अकिञ्चन सेविका बन कर ही रहूँगी।

श्रद्धेय प्रवर्तिनीजी म० का मेरे जीवन के कल्याण में महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। उनकी छत्र छाया में रह कर मैंने काफी अनुभव प्राप्त किया है। अत मैं आपकी दी हुई इस वसीयत को पाकर अहङ्कार में पड़कर अपने कर्त्तव्य को न भूलूँगी। मैं यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मेरा ध्येय जैन-संघ की सेवा, तथा सम्प्रदाय के गौरव की रक्षा ही रहेगा। मैं शासननायक और पूजनीय प्रवर्तिनीजी से यही भिक्षा माँगती हूँ कि मुझ में इस चादर की गौरवरक्षा करने की शक्ति प्राप्त हो।"

तदनन्तर कई सज्जनों ने भाषण दिये और समारोह सम्पन्न हो गया।

इस तरह श्रीमती आनन्दकुमारीजी ने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया और साथ ही अपने पद के अनुरूप कर्त्तव्य का भी पालन किया। आपका जीवन का यही आदर्श रहा कि 'पदवियाँ काम के लिए होती हैं, नाम के लिये नहीं।' बहुत से मनुष्य पद तो प्राप्त कर लेते हैं, पर वे पद उनके लिए बेहोशी के कारण बन जाते हैं। पद-प्राप्ति के पहले उनके जीवन में जितनी जागृति पाई जाती है, उतनी पद प्राप्ति के बाद नहीं रह पाती। परन्तु हमारी चरितनायिका प्रवर्तिनी पद पर पहुँच कर और अधिक जागृति की भूमिका पर पहुँची। आपने संकट की विकट घड़ियों में भी अपने को हिमालय-सा अचल रक्खा है। जब कभी उलझी हुई समस्याएँ आई तो उन्हें सुलझाया है। और विरोधी से विरोधी पक्ष पर भी

आपका प्रभाव पड़ता रहा है।

प्रवर्तिनी-पद का अर्थ है—संघ को चलाने वाली। संघ में धर्म की प्रवृत्ति कराने वाली। आपका काम संघ की गाड़ी को सुरक्षित ढंग से चलाने वाले ड्राइवर की तरह है। साध्वी-संघ रूपी गाड़ी में कहीं खराबी हो जाय, कहीं अटक जाय तो उसे दुरुस्त करके चलाना आपका कार्य है। आपने अपनी पूर्ववर्तिनी प्रवर्तिनियों का गौरव अक्षुण्ण बनाए रक्खा है।

पूर्वप्रवर्तिनियों में सब प्रथम श्रीमती रंगूजी महासती बड़ी कठोर चारित्र वाली हुई थीं। उन्होंने पहले के साध्वी संघ की अव्यवस्था और भिन्न भिन्न रूप देख कर अपना मार्ग प्रशस्त बनाया था। वे स्वयं निस्पृह थीं। उनमें आत्मकल्याण की ही भावना मुख्य थी। उनकी जन्मभूमि थी—मालवान्तर्गत नीमच शहर। आपको बाल्यकाल से धर्म पर अत्यधिक प्रेम था। योग्य वय में पिताजी ने आपका विवाह 'धम्मोतर' में एक सुयोग्य वर के साथ कर दिया। आपके भाग्य में सौभाग्य का सुख बदा न था। अतः छोटी उम्र में ही पति का देहान्त हो गया। तब आप धर्म की ओर विशेष रूप से झुकीं और उसी की उपासना में लग गईं।

आपके शरीर का सौन्दर्य अनुपम था। यौवन के सिंह द्वार पर पहुँची हुई थीं। आपके सौन्दर्य का पता 'धम्मोतर' के रूपलोलुप ठाकुर को लगा। ठाकुर ने अपनी वासना की पूर्ति करने की ठानी और आप पर पहरा लगवा दिया। कितने ही भले आदमियों ने ठाकुर को मना भी किया, पर वह कब मानने लगा! उसने कोई उपाय न देख कर आपको बलात् पकड़ मंगाने के लिए भाड़ैत लोगों को छोड़ा। वे लोग घर के चारों ओर पहरा लगा कर बैठे और सोचा। घर से बाहर निकलते ही पकड़ लेंगे। पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि शीलवती की देवता

रक्षा करते हैं।

उन दुष्टों की कार्यवाही का पता सतीजी को लग गया। आपने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे प्राण भी क्यों न चले जाँय पर अपना शील भ्रष्ट न होने दूंगी। धारिणी, पद्मिनी आदि भी तो मेरे ही समान अबलाएँ थीं? उन्हें काम लोलुपों ने कितना कष्ट दिया था? वे अपने धर्म से एक इंच भी न हटीं तो मैं कैसे हट जाऊंगी? यह नहीं हो सकता! चाहे सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय होने लगे, पर मैं अपने धर्म से कभी च्युत नहीं हो सकती। चारों ओर रूप के लुटेरे बैठे हैं, मुझे इनसे कैसे पार होना चाहिये? एक बात सूझी। पिछली खिड़की से कूद कर जंगल की शरण लेना ही श्रेयस्कर होगा, वहाँ से फिर पीहर चली जाऊँगी। यही विचार दृढ़ हो गया। विचारों के दृढ़ होते ही एकदम खिड़की से कूद पड़ती हैं। कोई भय नहीं! कोई बाधा नहीं। कितनी साहसिन थीं वह? दैवयोग से आपके पैर एक ऊँट पर पड़े, और शरीर को किसी तरह की आँच न आई। पास ही खड़े ऊँटवाले ने तसल्ली दी—"बहन! डरो मत। मैं तुम्हें निर्विघ्नतया तुम्हारे पीहर पहुँचा देता हूँ।" सतीजी नवकार मन्त्र जपती हुई वहाँ से रवाना हुई। कामान्ध ठाकुर की एक न चली और सतीजी सकुशल नीमच पहुंच गई। दरवाजा आते ही ऊँटवाला ऐसा गायब हुआ कि पता ही नहीं चला कि किसने पहुँचाया है। घर आई। तमाम वृत्तान्त कह सुनाया। सभी तारीफ करने लगे। कहा—"यह तुम्हारे शील धर्म का ही प्रताप है।" वैराग्य जागृत हो उठा। आप संसार की क्षणभंगुर वासनाओं से मुक्त होने के लिये तिलमिलाने लगीं। संयोगवश महा-प्रतापी आचार्य श्रीहुक्मीचन्द्रजी महाराज पधार जाते हैं। उनका वैराग्योत्पादक उपदेश जल पाकर वैराग्यांकुर दृढ़तर बन जाता है, और थोड़े ही दिनों में दीक्षा की आज्ञा

प्राप्त करके गार्हस्थ्य के बन्धन से निर्मुक्त हो जाती हैं। उस समय आप श्रीमती मगनजी आर्या की शिष्या बनती हैं।

दीक्षा लेने के बाद थोड़े ही समय में आपने शास्त्रों का अभ्यास कर लिया। और त्याग एवं तपश्चर्या के द्वारा अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाने लगीं। आपने अपना साध्वी जीवन काल अधिकतर तपश्चर्या में ही बिताया। एक बार दो साल के लिए आपने सिर्फ ५ साल ही द्रव्य रक्खे थे। वे पांचद्रव्य थे— पानी, आटा, हर्रे, आँवला और हल्दी। आप तपस्या के पारणे में सिर्फ आटा पानी में घोल कर पी जातीं। घोर तपस्या करने व शरीर की ओर लापरवाही की वजह से आप को जलन्धर हो गया।

सम्प्रदाय में सर्वगुण सम्पन्न समझ कर आपके बार-बार इन्कार करने पर भी संघ ने प्रवर्तिनी पद प्रदान किया। उन्हीं के नाम से यह सम्प्रदाय चल रहा है। यह साध्वी मण्डली उन्हीं की तपस्या का प्रसाद है।

श्रीमती प्रवर्तिनी श्रीरंगूजी म० के स्वर्गवास के बाद सं० १९४० में श्रीमती राजकुमारीजी को प्रवर्तिनी-पद दिया गया। आपकी जन्मभूमि 'फलोदा' था। आप ऐसी भाग्यशालिनी थीं कि पहले आपके पति देव श्री रतनचन्दजी और आइ देखी ने दीक्षा ली, तत्पश्चात आपने अपने तीन धर्मिष्ठ पुत्रों को दीक्षा दिलवाई। फिर स० १९२० में आपने स्वयं संयम की कठोर राह अङ्गीकार की। आपने तीन पुत्रों के नाम थे—जवाहरलालजी हीरालालजी और नन्दलालजी। आप श्री महासती रंगूजी म० की पौत्री शिष्या थीं। आपने दीक्षा लेकर त्याग और वैराग्य के द्वारा अपना जन्म सफल कर लिया। आपने ८८ वर्ष तक संयम का पालन किया। आप बड़ी प्रभावशालिनी और तपो-मूर्ति साध्वी थीं। अतः श्रीमती रंगूजी के द्वारा दिये गए प्रवर्तिनी

पद को भार सम्माने में सफल हुई।

तत्पश्चात् श्रीमती रत्नकुमारीजी आर्या को सं० १९४८ में प्रवर्तिनी-पद से विभूषित किया गया। आपकी जन्मभूमि 'माटखेड़ी' थी। आपके पिताजी का नाम था 'सुखलालजी और माताजी का नाम था-तुलसीबाई। आपकी ससुराल नीमच शहर में 'कोठीफोड़ों' के यहाँ थी। आपके हृदय में बचपन से ही धर्म के गहरे संस्कार पड़ गये थे और चढ़ते यौवन में १८ वर्ष की अवस्था में आप सांसारिक सुखों को लात मार कर संयम के पुनीत पथ पर अग्रसर हुई।

आपकी त्याग भावना इतनी प्रबल थी कि २६ वर्ष की उम्र में आपने चारों विगयों के त्याग कर दिये। आप सांसारिक पक्ष से जैन दिवाकर चौथमलजी म० की मौसी होती थीं। आप ही की प्रबल प्रेरणा से वैरागी चौथमलजी को आज्ञा मिली थी। आपने अपने अन्तिम समय में अनशन (संथारा) कर लिया था। १८ दिन का संथारा आया था। सं १९६३ में आपने शरीर विसर्जन किया।

इसके बाद प्रेमकुमारीजी आर्या को सं० १९६३ में ब्यावर में ही प्रवर्तिनी पद के प्रतीक स्वरूप चादर भेजी गई। आपकी जन्मभूमि आवरा थी। पिताजी का नाम लखमीचन्दजी और माता का नाम नगीनाबाई था। आपका ससुराल बदनावर था। आपने १५-१८ वर्ष की उम्र में ही इस संसार के बंधनों को तोड़कर श्रीमती रंगूजी म० के पास संयम का मार्ग अङ्गीकार किया। आपका शास्त्रीयज्ञान विशाल था। ज्ञान की गम्भीरता को प्राप्त करने के साथ-साथ आपका लक्ष्य जीवदया पर भी अधिक था। शरीर के प्रति निर्ममत्व अधिक था। बीमारी की हालत में भी कई बार आप गौचरी के लिए पधार जातीं।

इस तरह पूज्य प्रवर्तिनियों ने सम्प्रदाय का गौरव पूर्णत-

नहीं बीता कि मार आपड़ता है। इस गुरुतर भार को लेकर कोकिला-सी होती हुई जैसे-तैसे ब्यावर शहर में प्रवेश करती हैं। उपाश्रय में महासतीजी म० का निर्जीव शरीर पड़ा था। चेहरे पर विषाद की कोई रेखा नहीं दिख रही थी। चिरशान्ति की गोद में सोई हुई उनकी मूर्ति बड़ी मनोहर लग रही थी। उन्हें जीवन का मोह और मृत्यु का शोक नहीं था। मोह तो उसे होता है जो संसार की वासनाओं में उलझा रहता है, मोह-माया के गठ बन्धन में जकड़ा रहता है। जिस व्यक्ति का जीवन मोह और माया से परे होता है, वह मर कर भी अमर होता है। संसार उसके जीवन से युग-युग तक प्रकाश लेता रहता है।

ऐसी ही व्यक्ति महासती श्री वृद्ध प्रवर्तिनीजी थीं, उनके जीवन में उपर्युक्त आदर्श—महापुरुषों की जीवन-पद्धति चमकती थी।

वृद्ध-प्रवर्तिनीजी की शवयात्रा ब्यावर के बाजारों में से होकर निकली। लोगों के दिल मुर्झाए हुए थे। गगनभेदी जय कारों से ब्यावर गूंज रहा था। ठीक समय चिता में अग्नि लगा कर अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न की गई। इस प्रकार जनता एक जीवन-संग्राम की अमर विजयनी के स्थूल शरीर का दाह संस्कार कर वापिस लौट रही थी। उपाश्रय में आकर सब लोगों ने नवीन प्रवर्तिनीजी के मुख से मांगलिक श्रवण किया और अपनी सब वेदना प्रगट की। सब लोगों ने कहा—

"श्रीवृद्ध प्रवर्तिनीजी के निधन से जैनसमाज की जो महान् क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है। उनका जन्म, शरीर, प्रव्रज्या, प्रवर्तिनी पद, यह सब अखिल जन-समूह के कल्याण के लिए था। आपका चरित्र अलौकिक था। गुणों की भंडार थीं। पर क्या कर सकते हैं? कालराज के सामने किसी की नहीं चल सकती है। वह आता है तो सारी आशारेखाओं पर पानी

फेर देता है।

तथापि हमारे सौभाग्य से, हमें उन्हीं के समान ही अनुपम-ज्योति, विलक्षण प्रतिभाशालिनी, अपार साहसिन, आप जैसी प्रवर्तिनी मिली हैं। यह भी हमारा अच्छा भाग्य था कि आप ऐसे मौके पर यहाँ पधार गई। आपके पधारने से यह गद्दी रिक्त न रही। आप से हम लोगों की सविनय प्रार्थना है कि जिस तरह श्रीमती रंगूजी महासती के सम्प्रदाय का भार प्रवर्तिनी श्री प्रेमकुमारीजी ने सम्भाला और सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाया, उसी तरह आप भी बढ़ाएगीं। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र में अहर्निश वृद्धि होती रहे और आप निरामय तथा दीर्घायुषी होकर जैनधर्म की उदार भावनाओं के प्रचार व संघ-रक्षा के कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।"

इसके बाद नवीन प्रवर्तिनीजी का संक्षिप्त वक्तव्य सुनकर सब लोग विदा हुए।

चरितनायिका ने दूसरे ही दिन ब्यावर से जयतारण की ओर विहार कर दिया। आपको जिस कार्य वश चातुर्मास में ही आना पड़ा था, वह कार्य पूरा हो गया, अब आप यहाँ कैसे ठहर सकती थीं? अतः वापिस जयतारण पधार कर प्रवर्तिनी पद के रूप में प्रथम-चातुर्मास जयतारण में व्यतीत किया। चातुर्मास में काफी उपकार हुआ। अनेक जीवों को अभयदान मिला।

यहाँ से हमारी चरितनायिका पर सम्प्रदाय का गुरुतर उत्तरदायित्व आता है और आप अनेक जीवन के एक नवीन अध्याय में प्रवेश करती हैं।
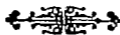
सहिष्णुता की देवी

लेखक के लिये कभी-कभी सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक हो जाता है। सरपट दौड़ना लेखक का काम नहीं है। वह तो मन्थर गति से चलता है। जहाँ आवश्यक होता है वहाँ ठहरता है और कभी कभी पीछे की ओर झाँक भी लेता है। हाँ, तो क्या मैं भी पीछे की ओर झाँक लूँ ?

आप अभी-अभी 'प्रवर्तिनी पद' नामक प्रकरण पढ़ चुके हैं। पर उसके भी पहले प्रकरण-'दीक्षाओं की धूम' में मैंने चरित-नायिका के जीवन की सं० १९८१ तक की घटनाओं का उल्लेख कर दिया है। अब उससे आगे की ओर देखना चाहिये कि चरित नायिका के जीवन को मोड़ किधर मुड़ती है ? उन्हें प्रवर्तिनी-पद के साथ सम्प्रदाय के गौरव की रक्षा और साध्वी-समुदाय की शिक्षा-दीक्षा का कितना ध्यान है ?

सं० १९८१ के माघ शुक्ला ५ को रतलाम से दीक्षा देकर आप क्रमशः मालवा-मेवाड़ के छोटे-बड़े गाँवों को अपने चरण कमलों से पवित्र करती हुई मन्दसौर पधारीं। मन्दसौर की जनता चातक की तरह आपके दर्शनों की प्यासी थी। मन्दसौर में आपकी प्रिय-शिष्या सरदारबाईजी आर्या अचानक अस्वस्थ हो गईं। शरीर में काफी अशक्तता हो गई थी, इस कारण वह विहार नहीं कर सकती थीं। मन्दसौर में कई दिन ठहर कर,

श्रीसरदारबाईजी आर्याजी की सेवा में मूलीबाईजी आर्या आदि ५ ठाणा को छोड़कर आपने निम्बाहेड़ा की ओर विहार किया।

आपके दिल में प्रत्येक साध्वी की बीमारी के अवसर पर सेवा वगैरह करने का काफी ध्यान रहता है। सम्प्रदाय की उच्च पदाधिकारिणी होकर भी आप इतनी दयालु हैं कि कभी-कभी स्वयं अपने हाथों से साध्वियों की छोटी से छोटी सेवा के लिये तैयार हो जाती हैं। प्रवर्तिनी पद पाकर भी आप अपनी शिष्याओं पर हिटलरशाही हुक्म नहीं चलाती, प्रत्युत माता का सा हृदय लेकर चलती हैं।

निम्बाहेड़ा के लिये आपने विहार तो कर दिया था पर आपके हृदय पट पर अपनी शिष्या सरदारजी आर्या की बीमारी का चित्र बार-बार सामने आ रहा था। चित्त में उनकी बीमारी की घटना का बार बार स्मरण हो जाता। किसी तरह से निम्बाहेड़ा पहुँचीं। निम्बाहेड़ा के लोगों को आपका पदार्पण ऐसा मालूम हो रहा था मानो धर्मनौका अपने सारे अवयवों के सहित आ रही हो, उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। आपकी दिव्यमूर्ति, प्रभावशाली व्याख्यान व संघ पर वात्सल्यदृष्टि देख कर निम्बाहेड़ा-संघ ने अत्यन्त आग्रह के साथ चातुर्मास करने की प्रार्थना की। अत्यधिक आग्रह देख कर चरितनायिका ने चातुर्मास की स्वीकृति दे दी। चातुर्मास लगते ही भावण-मास में अचानक श्री सरदारबाईजी आर्या के स्वर्गवासिनी होने के समाचार मिले। सुन कर चरितनायिका के हृदय में थोड़ा-सा आघात पहुँचा। प्रिय शिष्या का वियोग होने पर किसे दुःख न होता ? आखिर उस शोक को किसी तरह दबाया ही था कि सहसा अपनी प्रथम-शिष्या सरलात्मा मूलीबाईजी आर्या को उपेदिक की शिकायत हो गई, उनका चित्त विक्षिप्त हो गया। और वहाँ मन नहीं लग रहा है ऐसे समाचार मन्दसौर से

प्राप्त हुए ।

जिस प्रकार मानव-जीवन क्षणभंगुर है, उसी प्रकार विवश और पराधीन भी है । मनुष्य की कोई ऐसी योजना नहीं है कि जिसे वह पूरा करने का या उसका फल प्राप्त करने का दावा कर सकता हो । भगीरथ प्रयास करने पर भी ऐन मौके पर ज़रा-सी बात किसी भी योजना को क्षण भर में मिट्टी में मिला देती है । विवशता की इस दुनिया में रह कर मनुष्य किस बूते पर गर्व कर सकता है ? उसे क्या पता है कि एक क्षण के बाद क्या होने वाला है ? इसीलिए उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर की वह अमरवाणी रह-रह कर प्राणियों को जागृत रहने का संदेश दे रही है—

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड पक्खी व चरेऽप्पमत्ते ॥

उत्तराध्ययन सूत्र ४ अ० ६।सू०

अर्थात्—अज्ञानी प्राणियों के सोये रहने पर भी सदा जागृत रह कर जीने वाला, विवेकशील, और शीघ्र-बुद्धि वाला मनुष्य जीवन का भरोसा न करे । मुहूर्त (काल) भयङ्कर है, और शरीर निर्बल है । वह काल के एक ही आक्रमण से छिन्न भिन्न हो जाता है । यह जान कर भारण्ड पक्षी के समान मनुष्य प्रतिक्षण अप्रमत्त (सावधान) होकर रहे ।

'साध्वी श्रीमूलीबाईजी का किसे पता था कि इतनी जल्दी उस पर भयानक व्याधि आक्रमण कर बैठेगी ?' जो चरित नायिका की हर समय सेवा में रहने वाली थी, जिसे इस बार ही पृथक् रहने का अवसर मिला, और रोग ने आकर घर दबाया । यह है जीवन की क्षणिकता का ज्वलंत नमूना ।

मन्दसौर में संघ के कई प्रतिष्ठित सज्जनों ने उनका यथा-शक्य उपचार करवाया । अपनी गुरुनी (चरितनायिका) के बिना

दिख सकता न देखकर श्रीयुत चैनमलजी करजूवाले तथा ओंकारलालजी बाफणा ने उन्हें भी प्रवर्तिनीजी (चरितनायिका) को निम्बाहेड़ा से बुला देने को कहा। परन्तु मूलीबाईजी आर्या के हृदय में अटल गुरु भक्ति थी, अत कहा—"गुरुणीजी म० को बुलाने से उन्हें चौमासे में आने में बड़ा कष्ट होगा। चारों तरफ जल ही जल होगा। इतना कष्ट करके वे मेरे लिए पधारेंगी, यह मेरे लिये बड़ी विचारणीय बात है। इससे तो यह ठीक रहेगा कि श्रीरत्नकुमारीजी का 'जीरण' चातुर्मास है, वहाँ से बुला दें।"

श्रावकों से गुरुभक्ता शिष्या का यह करुणा जनक दृश्य न देखा गया और उसी समय निम्बाहेड़ा समाचार भेजे कि "साध्वी श्रीमूलीबाईजी की तबियत अत्यन्त खराब है। उनका चित्त आपके बिना विक्षिप्त हो रहा है। अत आपको चातुर्मास में ही पधारना पड़ेगा।'

भाद्रपद शुक्ला १३ के रोज यह समाचार श्रीमती चरितनायिका को मिले। आपका मातृ-हृदय सुन कर एकदम पसीज गया। आप अपने लिये जितनी कठोर हैं, उतनी ही दूसरों के प्रति कोमल हैं। महान् आत्मा के लक्षणों में सर्व प्रथम यही बात होती है—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'

समाचार सुनते ही चरितनायिका व महताबकुमारीजी आर्या, इन दोनों ने वहाँ से शीघ्र विहार किया। मार्ग में कठिनाइयों का कोई पार न था। रास्ते में दो नदियाँ पड़ती थीं। जिम्बाहेड़ा की नदी और चरदु की नदी। नदियाँ आपका मार्ग रोके खड़ी थीं। भाद्रपद मास था। वर्षा अपना विकट-रूप धारण किए हुए थी। आकाश काली घटाओं से प्राय: घिरा ही रहता था। जिधर देखो उधर जल ही जल। ऐसे समय में क्या किया जाय? पानी इतना बरसा कि ये दोनों क्षुद्रनदियाँ भी

शहर में बड़े २ होशियार डाक्टर हैं। वे इसका इलाज शीघ्र कर सकते हैं।" चरित्रनायिका की सरल प्रकृति ने उन्हें यही उत्तर दिया—"आपका कहना ठीक है। आप अनुभवी हैं, किन्तु जहाँ तक हो सके, साधारण उपचारों से ठीक हो जाय तो डाक्टरों के फन्दे में नहीं फंसना है। अतः जो उपचार चल रहा है, पहले उसी को देख लिया जाय।"

मन्दसौर के एक प्रतिष्ठित श्रावक पन्नालालजी ने आपसे विनम्र शब्दों में कहा—"महासतीजी महाराज! आप के छाले की हालत बड़ी खतरनाक है। कहीं ज्यादा बढ़ गया तो पैर से चलना फिरना भी मुश्किल हो जायगा। मेरे भी पाँव में संघ पाका था, मैंने लापरवाही कर दी और उसे यों ही रहने दिया, निकलवाया नहीं। नतीजा यह हुआ कि मेरे पैरों में गाँठें पड़ गई और पैरों से चलना, फिरना भी बड़ा दूभर हो गया। आपके दर्शनों के लिए आया, इतनी-सी दूर चलने में भी बड़ी दिक्कत पड़ती है। आपका तो जीवन ही निराला है। साधु जीवन में तो पैरों से ही भ्रमण करना पड़ता है। पैर अगर ठप्प हो गया तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। अतः मेरी आपसे यही विनति है कि आप शीघ्रातिशीघ्र डॉक्टरी इलाज करवाइये।" साध्वी श्रीरूपाजी का तो आग्रह पर आग्रह चलता रहा कि आपको डाक्टरी इलाज कराना चाहिये।

मन्दसौर में प्रतापगढ़-निवासी एक अनुभवी सज्जन रहते थे। उन्हें बक्शीजी कहा करते थे। वे इन फोड़े-फुंसियों और नेहरु वालों के विशेषज्ञ थे। श्रीरूपाजी साध्वी ने उन्हें आपका छाला देखने के लिए कहा। वह आए और देखकर नम्रता-पूर्वक कहा—"ओ हो! यह छाला तो काफी बढ़ गया है। अगर और अधिक फैल गया तो सारे पैर को भस्मी कर देगा। फिर तो पैर को काटे बिना और कोई चारा न रहेगा। अभी तो आप

भाइयों के संघट्ट (स्पर्श) या डाक्टरी इलाज के दोषों से डरते हैं, पर यह जख्म ज्यादा खराब हो गया तो फिर हाथ की बात नहीं रहेगी। फिर इससे ज्यादा दोष लगेंगे। अतः आप झटपट इसके विषय में हमें निर्णय दे दीजिये।"

मन्दसौर के अग्रगण्य श्रावकों ने भी आप से इलाज कर वाने के लिये काफी आग्रह किया।

अत्यन्त आग्रह होने पर आपसे न रहा गया। आपने कहा—"मुझे तो जैन-समाज की सेवा करनी है। मैं देखती हूँ कि जब तक शरीर स्वस्थ न हो वहाँ तक आत्मा स्वस्थ नहीं हो सकती। और आत्मा के स्वस्थ हुए बिना संघ की तो क्या, खुद की भी सेवा होनी कठिन है। अतः आप लोगों का आग्रह देख कर मैं अपनी तरफ से छाले के लिए यथोचित इलाज कराने की अनुमति देती हूँ।"

उस समय आपके पाँव की हालत इतनी खराब हो गई थी कि पैरों से खड़ी नहीं हो सकती थीं। हाथों के बल सरक सरक कर चलती थीं। पैरों का भाग नारियल के समान फूल गया था। वह ऐसा लगता था मानो कोई अनीति से धन कमा कर फूल रहा हो। पर अनीति का धन टिकता कितने दिन है? वह यों ही आता है और खर्च होजाता है। इसी प्रकार छाले की गति होने वाली है।

श्रावकगण मन्दसौर के एक नामी डाक्टर को लाए। उन्होंने रोग का इतिहास सुन कर भलीभाँति परीक्षा करके कहा—'यह छाला नहीं है बाला (नेहरू) है। इसका ऑपरेशन करना पड़ेगा। ऑपरेशन बड़ा जोखिमी होता है, उसमें जरा से हिलने डुलने पर काम बिगड़ जायगा। अतः पहले आप को बेहोशी के लिए क्लोरो फॉर्म सुंघाना पड़ेगा।'

चरितनायिका ने कहा—"आपको आम खाने से काम

है या पेड़ गिनने से ? आप तो कुछ करना चाहें, पैर पर कर सकते हैं। मैं जितनी देर कहूँगी उतनी देर तक निश्चल बैठी रह सकूँगी फिर क्लोरोफॉर्म सुँघाने की क्या जरूरत है ?

डाक्टर ने यह कल्पना भी नहीं कि महिलाएँ भी ऐसी बहादुर होती हैं। आपके मुख से वीरता-पूर्ण शब्द सुन कर डॉक्टर दंग रह गया।

ऑपरेशन शुरु हुआ। ऑपरेशन का दृश्य बड़ा द्रवय द्रावक था। ऑपरेशन देखने वालों का हृदय कॉप रहा था, पर चरितनायिका के चेहरे पर चिन्ता का कोई चिह्न तक न था। आपने होश में रहते हुए ऑपरेशन करवाया। आपने अपना वह पाँव डाक्टर के सामने पसार दिया। डाक्टर ने पहले तो एक तेज चाकू लेकर पाँव में चीरा लगाया। फिर जिस संधि में कांटा था वहाँ पर उसे टटोलना शुरू किया। कांटा ऐसा पता निकला कि वह पैर की संधि के पास नसों में फंसा हुआ था। मेहनत करने पर अंगुलियों से चारों ओर सू ढने पर मिला। उसे बाहर निकाला गया। प्राय: १ घंटा उसे निकालने में लगा। दही को मथन करने की तरह सारा मवाद व वाले को निकाला गया था। इस वेदना-जनक अवसर पर भी चरितनायिका निश्चल बैठी रहीं और मुँह से उफ तक नहीं निकाला। मालूम पड़ता था कि शरीर का ममत्व छोड़कर आप आत्म-लोक में रमण कर रहीं हैं। और आत्मरमण में इतनी तन्मय हैं कि शरीर तक का भी भान नहीं है।

चरितनायिका के इस धैर्य, और असीम सहिष्णुता को देखकर डॉक्टर को भी चकित होजाना पड़ा। उसे भी कहना पड़ा कि स्त्री होते हुए इतनी सहन-शीलता और मन की मजबूती रखना आसान बात नहीं है। यह आत्मविश्वास का ही प्रताप है।

चरितनायिका में आत्म-विश्वास कूट कूट कर भरा हुआ है। आत्म शक्ति का चमत्कार उनके जीवन के कण-कण में समाया हुआ है। उनके विचारों में सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि 'बोवी' का निम्नलिखित आदर्श सिद्धान्त ओतप्रोत हो रहा है—

"आत्मविश्वास की कमी ही हमारी बहुत-सी असफलताओं का कारण होती है। शक्ति के विश्वास में ही शक्ति है। वे सब से कमजोर हैं, चाहे कितने ही शक्ति शाली क्यों न हों, जिन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं है।"

श्रावक-गण भी आपका आत्म विश्वास और सहन शीलता देख कर विस्मयभरे शब्दों में कह रहे थे कि "यह आत्म शक्ति का ही प्रताप है। धन्य है ऐसी सहिष्णुता की मूर्ति महा सती को, जिन्होंने इस रुग्ण अवस्था में भी अपने आदर्श चरित्र द्वारा जनता को बोध-पाठ दिया। हमारे तो एक फोटा निकालते समय भी मन में कितने ही ऊँचे-नीचे परिणाम आते हैं। इतनी-सी देर में हम तो झल्लाने लगते हैं। इनकी दृढ़ता बड़ी गजब की है।"

थोड़े दिनों के बाद यह छाला तो ठीक होगया पर अभी दर्द काफी था। इसलिए कई दिनों तक इलाज चलता रहा, फिर जाकर कुछ ठीक हुआ। पाँव के दर्द के कारण आप को मन्दसौर में विराजते हुए १८ मास होगए। १६८१ का आधा चातुर्मास और १६८२ का सारा चातुर्मास मन्दसौर ही बीता। संघ के लोगों की धर्म भावना भी काफी बढ़ी हुई थी। चातुर्मास में कई लोगों ने त्याग प्रत्याख्यान किये। कई मूक जीवों को अभयदान भी मिला था।

मन्दसौर की ही बात है। साध्वियाँ चरितनायिका के लिए वद्यजी के सफाखाने से दवा लेकर आरहीं थीं। इतने में उन्होंने रास्ते में एक कसाई खड़ा देखा। उसके पास कई भेड़ें व

बकरे थे। साध्वियों ने सोचा—"इसे हम कहेंगी तो सुनाई भी न करेगा। प्रवर्तिनीजी म० के पास चल कर कहेंगी, वे किसी को कह कर इन मूक पशुओं को छुड़वा देंगी।" साध्वियों ने आते ही चरितनायिका से कहा। उस समय संयोग से छोटीसादड़ी वाले सेठ छगनलाल भी गोदावत की माताजी बैठी थीं। आपने उनसे इन मूक पशुओं की दया के लिए उपदेश दिया। उसी समय आपका इशारा पाते ही सेठानीजी ने २४ भेड़ बकरियें अमरिये करा दिये। उन्हें कसाई के पञ्जे से मुक्त करवा दिये। वे बिचारे अपनी मूक भाषा में बें बें करते हुए मानो चरितनायिका को आशीर्वाद दे रहे थे कि आप भी हमारी तरह शीघ्र ही रोग के पञ्जे से मुक्त होंगी। यही हुआ, थोड़े दिनों में ही आपके पैर में सुधार होने लगा।

संयोग से सम्वत् १९८७ का चातुर्मास जावरा में व्यतीत करके महामनस्वी युगद्रष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज उपदेश-गंगा बहाते हुए मालव-देश में मन्दसौर-भूमि को पावन करने पधार गए। उस समय चरितनायिका के पैर का दर्द पूरी तौर से मिटा नहीं था। आपको यही विचार होता कि मेरे धर्माचार्य गुरुवर पधारे हैं और मैं दुर्भाग्य से उनका दर्शन भी नहीं कर सकती। क्योंकि पैर के दर्द की वजह से मुझ से चलना फिरना नहीं हो सकता। परन्तु पूज्यश्री ने जब यह सुना तो वे आपको दर्शन देने पधारे और कहा "—आपने तो इस साल महान् कष्ट सहे हैं। इतना कष्ट होने पर भी संयम के प्रति आपकी दृढ़ता देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।"

पूज्यश्री का आप पर महान् अनुग्रह था। आचार्यश्री की शुभ-दृष्टि पाकर चरितनायिका थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गई थीं। अब तो थोड़ा बहुत चल-फिर भी सकती थीं।

रोग से मुक्त होने पर आपने रुग्णावस्था में लगे हुए दोषों

का प्रायश्चित करना उचित समझा। जैन शास्त्र प्रायश्चित से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशुद्धि बतलाते हैं। अन्य दर्शनकारों ने भी प्रायश्चित का विधान किया है। सभी दार्शनिक पाप की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित को अमोघ साधन बतलाते हैं। जैन-दर्शन भी कहता है—पाप के संताप से बचते रहने की इच्छा करना और पाप का त्याग न करना प्रायश्चित नहीं है। प्रायश्चित है—पाप का दण्ड के द्वारा विशोधन करना। मनुष्य को पापों से डरना चाहिए, न कि पाप के परिशोधन रूप दण्ड से।

साधु जीवन का मार्ग कितना कठिन है। संयम की मर्यादा के लिये कितनी सावधानी रखनी पड़ती है? सच्चा साधु या साध्वी अपनी निर्मलता में लेशमात्र भी धब्बा लगना सहन नहीं कर सकता। उनकी आत्मा मलिनता की आशंकामात्र से कराह उठती है। शारीरिक लाचारी की दशा में अगर संयम की किसी मर्यादा का उल्लंघन हो गया हो तो वह उसे छिपाने का प्रयत्न नहीं करता, वरन् सर्वसाधारण के समक्ष खोलकर अपनी वास्तविकता रख देता है। इस प्रकार अपने अन्तःकरण को प्रायश्चित के जल से धोकर वह विशुद्ध बना लेता है।

जैन साधु-साध्वी अपनी सेवा गृहस्थ से नहीं कराते, मगर चरितनायिका को अपनी उत्कट बीमारी के कारण लाचार होकर डॉक्टर की सहायता लेनी पड़ी। चीरफाड़ कराने में कुछ दोष वगैरह भी लगे। अतः आपने उसके प्रायश्चित-स्वरूप ४ महीने का छेद प्रायश्चित्त स्वीकार किया। और इसके समाचार सम्प्रदाय की सभी साध्वियों के पास भिजवाये गये। इस तरह प्रायश्चित्त लेकर चरितनायिका विशुद्ध हुई।

कुछ दिनों बाद आपके पैरों में चलने फिरने की काफी शक्ति आगई थी। अब विहार करना आवश्यक समझा, परन्तु

आपकी प्रथम शिष्या मूलीबाईजी आर्या, और हम्मीरकुँवरजी आर्या बहुत बीमार हो गई थीं। हम्मीरकुँवरजी तो थोड़े ही दिनों में परलोकवासिनी भी हो गई। मूलीबाईजी आर्या को तपेदिक का रोग उग्ररूप धारण कर चुका था। उन्हें ऐसी हालत में छोड़कर जाने को आपका दिल नहीं मानता था। कई बार परिसनायिका स्वयं अपने हाथों से उनकी सेवा-शुश्रूषा करने में जुट जातीं। साध्वियाँ इधर उधर जातीं, या भिक्षाचारी के लिये जातीं तो आप उन्हें दोनों हाथों से उठाकर धूप में बिठा देतीं। उनका शरीर सूखकर काँटा-सा हो गया था, अतः परिसनायिका का विचार उन्हें एकाएक छोड़कर विहार करने का नहीं था; परन्तु स्थानीय श्रावक जोधकरणजी ने आपसे कहा—"आपको एक जगह रहते हुए बहुत दिन हो गए हैं, अतः आपके लिए जलवायु परिवर्तन करना आवश्यक है। स्थान-पलटा किए बिना न मालूम फिर कोई रोग आ खड़ा हो! क्योंकि ये बाले, नेहरु आदि रोग पानी की खराबी से होते हैं।"

साध्वियों ने आपसे विहार करने के लिए आग्रह किया। उन्होंने उक्त साध्वीजी की परिचर्या के लिए आपको विश्वास दिला दिया। श्रावकों तथा कई साध्वियों के आग्रह से आपने विहार करने का विचार कर लिया। कितने ही लोगों ने भक्ति वश आपको ठहरने का अनुरोध भी किया, ठहराने के लिए लोग बहुत देर तक खींचातानी करते रहे। आखिरकार आपने सब को समझा बुझा कर गंगापुर की पगडंडी पर कदम रख ही दिया।

गंगापुर के लोगों ने जब आपके आगमन का समाचार सुना तो हर्ष से पुलकित हो उठे। और आपकी अगवानी के लिये लम्बी दूर तक सामने आए। गंगापुर में आपने ज्ञानगंगा ही बहा दी थी। सब लोगों ने हृदय से आपके व्याख्यानों का

श्रवण किया। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि अचानक ही साध्वीश्री मूलीबाईजी के दिवंगत होने का समाचार मिला। अपनी प्रिय शिष्या का वियोग सुन कर आपके मुखमण्डल पर एक अवसाद की रेखा दौड़ गई। पर मृत्यु और व्याधि के भीषण-संघर्ष से कौन बच सकता है? मृत्यु जीवन में एक अभिनव-जागृति पैदा करने वाली है। वह महान् व्यक्तियों के लिए साधना की परीक्षा का स्वर्ण अवसर होता है। मूलीबाईजी आर्या ने तो अपना जीवन सफल कर लिया। वह जीवित रहीं, तब भी चरितनायिका की शिष्याओं में आज्ञाकारिणी और विनीत शिष्या थीं, और मरण धर्म को प्राप्त करने पर भी परलोक के लिए पाथेय साथ में लेकर चलीं।

गंगापुर से चरितनायिका ने मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया। मारवाड़ में सोजत पधारीं। सोजत में आपके उपदेशों से प्रभावित होकर श्रीमती भेय'कुमारीबाई को वैराग्य का रङ्ग कई महीनों से लग चुका था। उनके कुटुम्बियों की अनुमति मिल जाने पर सं० १९८४ वैशाख शुक्ला ५ के दिन शुभ समय में आपके पवित्र कर-कमलों द्वारा दीक्षा विधि सम्पन्न हुई। वहाँ से पाली आदि प्रसिद्ध क्षेत्रों को पावन करती हुई जोधपुर पधारीं। जोधपुर में बालोतरा के कई भाई आए हुए थे, उन्होंने चरितनायिका के ओजस्वी-व्याख्यान व चरित्रनिष्ठा देखकर अपने यहाँ चातुर्मास करने के लिये जोर शोर से विनति की।

बालोतरा मारवाड़ की निशानी का क्षेत्र है। यहाँ की भाषा, रहन-सहन, चाल-ढाल आदि में गाढ़ मारवाड़ीपन पाया जाता है। यहाँ जैनियों के काफी घर हैं। बालोतरा संघ की चातुर्मास के लिए पुनः पुनः प्रार्थना होने लगी। चरितनायिका के जीवन में बालोतरा की यात्रा नवीन ही थी, फिर भी साहस पूर्वक बालोतरा की ओर विहार किया। बालोतरा का मार्ग

सरल नहीं था, कई गाँव ऐसे आए, जहाँ आपको धोवण-पानी के लिये बड़ी कठिनाई पड़ती। मारवाड़ के एक कोने में रहे हुए इस क्षेत्र में पहले जैन साधु-साध्वियों का विचरण बहुत कम होता था। अतः इधर के लोग साधुओं की चर्या से प्रायः अनभिज्ञ-से थे। इसी कारण रास्ते के गाँवों में कई जगह चरित नायिका के पधारने पर बहनें उसी समय धोवण-पानी तैयार कर देतीं। साधु-साध्वियों के लिए, ऐसा धोवण, जो उन्हीं के लिए बनाया गया हो, अकल्पनीय, अग्राह्य होता है, अतः चरित नायकादि साध्वियाँ उस धोवण को लेने से इनकार कर देतीं। पहर दिन के बाद गाँव में इधर उधर, गृहस्थों के घरों में घूमतीं। कहीं बोरों के पत्तों का पानी मिलता, तो कहीं खाखले का धोवण मिलता। इस तरह अपनी चर्या के अनुसार यात्रा करती हुई चरितनायिका अपनी शिष्यामण्डली सहित बालोतरा पधारीं।

संघ के लोगों ने चरितनायिका को साध्वीमण्डली सहित ठाणे से चातुर्मास के लिये पधारने पर, इस तरह का हर्ष मनाया जैसे किसी दरिद्र को कामधेनु मिल जाने पर होता है। विचारपूर्ण इस देश में चरितनायिका की अमृतमयी वाणी सुन कर बालोतरा के लोग कहने लगे—"यहाँ कितने ही साधु तथा साध्वियों का चातुर्मास हुए हैं, पर ऐसा चौमासा तो हमने अपनी जिन्दगी भर में नहीं देखा।"

बालोतरा-चातुर्मास में चरितनायिका जिस मकान में ठहरी थीं, वह एक यति का उपाश्रय था। प्राचीन समय के यति और आज के यतियों में तो जमीन आसमान का अन्तर हो गया है। पहले के यति लोग ब्रह्मचारी रहते थे और शास्त्रों का लेखन, व अध्ययन अध्यापन करके अपना जीवन-यापन करते थे, परन्तु काल ने पलटा खाया। एक नया तूफान आया। मुगल-काल के समाप्त होते ही यतियों ने अपना रंग बदला और

ब्रह्मचर्य की मर्यादाएँ लुप्त कर दीं, गृहस्थ होकर रहने लगे। समाज भी उन्हें हीन दृष्टि से देखने लगा।

हाँ, तो वह यति चातुर्मास लगने से पहले ही किसी दूसरे गाँव चला गया था। संघ के लोगों को क्या पता था कि वह वापस अपने मकान पर आ धमकेगा, और मकान माँग बैठेगा। संघ के लोगों ने उस यति के आने की कोई आशा न देख कर आपको वहाँ ठहराया था। उस ग्राम में यतिजी का मन न लगने के कारण वह वापिस बालोतरा चले आए। उपाश्रय काफी लम्बा चौड़ा था इसलिए इतनी साध्वियों के लिए कोई तकलीफ नहीं थी, पर यतिजी से आपका यह सुख न देखा गया। उन्होंने आते ही आपको अपने उपाश्रय में ठहरे हुए देख कर कहा—"महाराज, आप तो साध्वियाँ हैं। आप तो चाहे जिस मकान में रह सकती हैं। संघ तो आपके लिये बहुत से मकान खोल सकता है। पर मेरे जैसे के लिए तो यह मकान ही ठीक है। अतः आप किसी दूसरे मकान में यहाँ के लोगों से पूछ कर पधारें।"

यतिजी अकेले जीव थे, उन्हें कोई लम्बी चौड़ी जगह की जरूरत नहीं थी, फिर भी स्थान की ममता थी और आप की कसौटी भी करनी थी। चरितनायिका यतीजी का कथन सुन कर चकित होगई। पर कर क्या सकती थीं। साधु-जीवन है। इसमें किसी पर जबरदस्ती तो भार लादा नहीं जा सकता। किसी से छीन कर या न देने पर भी जबरदस्ती हक जमा लेना तो साधुता के खिलाफ है। अतः आपने कई भाइयों से कहकर दूसरे मकान में अपना डेरा डाला। वह मकान इतना छोटा और तंग था कि उसमें दिन में सूर्य की किरणों का प्रवेश दुष्कर-सा था। मकान में दिन में ही अंधेरा फैल जाता था। पिच्छू तो यहाँ इतने निकलते कि कोई दिन ऐसा न बचता जिस

दिन प्राय: ४-७ भिक्षुओं के दर्शन न होते हों। जो सतियों के लिए उस छोटे से सीलदार मकान में चातुर्मास बिताना बड़ा कठिन हो गया। वह स्थान एक तरह से पशुशाला सा था। डाँस, जुयें और मच्छर बेहद थे। उस मकान की सफाई भी नहीं हो पाती थी। वह स्थान एक ही व्यक्ति का था फिर भी उसने पञ्चों को सम्भला दिया था। जो पञ्चायती है वह किसी का भी नहीं होता। ऐसी स्थिति में इस मकान की भी सफाई कौन करता ? भारतीय जनता में सार्वजनिक स्थानों को मैला-कुचैला करने की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में है। और फिर वहाँ अशिक्षित ग्रामीण-जनता ठहरती थी, अतः सफाई का काम ही क्या था ?

चार महीने चातुर्मास के बिताने हैं, ठहरने को साधारण सा स्थान ! डाँस-मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना ! हे साधु-साध्वियों ! तुम्हारा मार्ग तुम्हें ही शोभा देता है ! मुनि चर्या कितनी कठोर है ?

रात को प्रतिदिन मच्छरों की सेनाएँ उमड़ कर टूट पड़तीं और साध्वियों के कोमल शरीर में इंजेक्शन लगाकर स्वादु रक्त चूस लेतीं। परिणाम यह हुआ कि एक साध्वीजी केशरजी को छोड़ कर, बाकी आठ ही साध्वियों को मलेरिया ज्वर ने आ घेरा। रात्रि के समय विश्रान्ति लेना बड़ा असम्भव सा होगया। बुखार ने चातुर्मास समाप्ति तक पीछा ही नहीं छोड़ा। सब के नाक में दम कर दिया। इधर बुखार है उधर भिक्षा लाना, सेवा भी करना इत्यादि सब काम साध्वियों को आपस में करने पड़ते थे। फिर भी गाँव के संघ के पास कोई शिकायत नहीं, कोई उलाहना नहीं ! साधु-जीवन में ऐसे समय पर चुप रहना और संघ के सामने कुछ भी न कहना कितनी ऊँची बातें हैं ? संघ के लोगों पर आपकी चर्या का काफी प्रभाव पड़ा। आपकी चरित्रनिष्ठा और साधुता देख कर उन्हें भी कहना

पड़ा—हमने इतनी साध्वियाँ देखीं पर आप में तो विलक्षण ही चमत्कार देखा। मकान का कोई प्रबन्ध नहीं, ज्वर का आक्रमण और हमारी ओर से सेवा की कमी होने पर भी आपने कभी किसी को भलाबुरा नहीं कहा। चरित्रनायिका ने तो सभी साध्वियों से कह दिया—"हमें जैसे तैसे चातुर्मास बिताना है। इन्हें हमारे दुःख-दर्द कहने से कोई मिटने वाले नहीं। अतः हमें इस परिषह को पूर्णतः सहन करना चाहिए। साध्वियो! यहीं आकर हमारी कसौटी होती है।" सभी साध्वियों ने शान्तिपूर्वक व्यवहार रक्खा। बुखार के आने के कारण स० १६८४ की चातुर्मास-समाप्ति के बाद भी कई दिनों तक विहार नहीं हुआ। चरित्रनायिका ने सोचा—जैसे-तैसे ही अब यहाँ से विहार कर देना चाहिए। बुखार ने अपनी जड़ जमा ली है, यहाँ से विहार किये बिना इससे पिण्ड छूटना मुश्किल है। चरित्र नायिका व सभी साध्वियों ने साहस करके शरीर में कमजोरी होने पर भी धीरे धीरे जोधपुर की ओर विहार कर दिया। जोधपुर में आने पर कुछ दिनों तक बाह्य-उपचार करने पर बुखार से पिण्ड छूटा, और सुख-पूर्वक दिन व्यतीत होने लगे।

स्थली-प्रान्त में

जोधपुर से विहार करके परिव्राजिका ने क्रमशः बीकानेर की भूमि में पदार्पण किया। बीकानेर एक समय यतियों का दुर्ग बना हुआ था। बीकानेर के धनी-लोग यतियों के सहारे अपने जैनधर्म को चला रहे थे। पर सब दिन एक से नहीं होते। काल ने विशाल उलटफेर कर दिये। एक दिन यतियों की बीकानेर में तूती बोलती थी और यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र के द्वारा धनाढ्य लोगों पर जादू की लकड़ी फेरी जा रही थी। यह परिस्थिति एकदम पलट गई। इसमें मुख्य कारण था—स्थानकवासी जैन समाज के निस्पृह आचार्य जयमलजी म० का बीकानेर में पदार्पण। उन्हें बीकानेर में प्रवेश करने में कम कष्टों का सामना नहीं करना पड़ा। पर वे फक्कड़ व्यक्ति थे। उन्होंने अपना डेरा श्मशान की छतरियों में जाकर डाल दिया। अन्त में तो सत्य की ही विजय होती है। आचार्यश्री के चारित्र की प्रखर किरणें वहाँ के प्रसिद्ध जैन दीवान की माता पर पड़ीं। उसने दर्शन करके शहर में पधारने की विनति की। पर शहर में जाना कोई हँसी खेल नहीं था। यतियों ने राजा की ओर से भी प्रतिबन्ध लगवा रक्खा था। आखिरकार दीवान की माता ने अपने पुत्र से कह सुनकर सरकार के द्वारा वह प्रतिबन्ध हटवाया। आचार्य जयमलजी म० ने बीकानेर नगर में प्रवेश किया और तब से

यतियों का प्रभाव कम पड़ गया, चारित्रधाम का ही यहाँ अब सच्चा प्रभाव है।

बीकानेर में कई जैन मन्त्री हो चुके हैं। यहाँ श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दोनों के कुल मिलाकर करीब १८०० घर होंगे। यहाँ के लोग जितने धन में बढ़े हुए हैं उतने धर्म की भावनाओं में भी बढ़े हुए हैं।

भक्ति में असीम शक्ति है। भक्त के हृदय की प्रबल भावना भक्ति-पात्र को आकर्षित किए बिना नहीं रहती। बीकानेर की भूमि में भी प्रवर्तिनीजी का नया ही पधारना हुआ था। संघ के लोगों ने अत्यन्त भक्तिभाव पूर्वक आपका स्वागत किया। आपकी भव्य और आकर्षक मूर्ति देख कर जनता आह्लादित हो रही थी। बीकानेर के पार्श्ववर्ती क्षेत्र भीनासर में आपके व्याख्यान प्रभावशाली होते थे। जनता बीकानेर से आपका मर्म स्पर्शी व्याख्यान सुनने उमड़ पड़ती थी। बीकानेर के जैन-संघ में आपकी कीर्ति फैलते देर न लगी। संघ के लोगों में एक नवीन-चेतना लहराने लगी। और उसी के फल-स्वरूप उन्होंने बीकानेर चौमासा करने की आग्रह भरी विनती की। अपने यहाँ सहज ही आइ हुई धर्मनौका को देख कर कौन छोड़ सकता था ? तदनुसार आपने संवत् १६८५ का चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति देदी। आपकी स्वीकृति संघ के लिए अत्यन्त उत्साह और आनन्ददायिनी सिद्ध हुई। संघ में उल्लास का वातावरण फैल गया।

बीकानेर तपोभूमि भी है। यहाँ अगर सूर्य तप देता है तो संघ में भी तपस्या होती है। उस साल भी गर्मी इतनी जोर की पड़ी कि १० बजे बाद नंगे पैरों चलना बड़ा दुष्कर कार्य था। चरितनायिका का शरीर बहुत कोमल है ही, बीकानेर की प्रसादी उन्हें भी मिल गई। बीकानेर की ग्रीष्म ऋतु की प्रसादी है-पसीने

से फोड़े, फुंसियाँ होना। गौर शरीर पर फुंसियाँ ऐसी सुशोभित होती थीं, मानो सोने के थाल में मोती जड़े हों।

बीकानेर में श्रीयुत सेठ भैरोंदानजी सेठिया बड़े उदार व्यक्ति हैं। आपके मन में इतनी सरलता है कि छोटा-सा छोटा साधारण व्यक्ति आपके पास आता है तो आप उससे अच्छी तरह मिलते हैं, और उससे सुख-दुःख की बात सुनते हैं। लेखक के ऊपर तो उनका महान उपकार है। यह तो उन्हीं की पारमार्थिक-संस्था सेठिया विद्यालय में अध्ययन करके धर्म की ओर सन्मुख हो सका है। सेठियाजी की पवित्र छत्र-छाया में रहकर लेखक ने सम्यक्त्व का बीज पाया है, जो आगे जाकर साधु-पद को प्राप्त करा सका है। सेठियाजी की इतनी उदारता है कि चाहे कोई भी जैन साधु या साध्वी विद्याभिलाषी हो, उनके पढ़ाने के लिये वे अपने विद्यालय की ओर से अध्यापक भेज देते हैं।

चरितनायिका भी विद्याभिलाषिणी चार शिष्याएँ—नगीनाकुमारीजी, राजकुमारीजी, सुगुनकुमारीजी और मोहनकुमारीजी उस समय लघुकौमुदी पढ़ रही थीं। उन्हें पढ़ाने के लिए सेठियाजी ने सुन्दर-व्यवस्था कर दी थी।

स्थानकवासी सम्प्रदाय में पहले संस्कृत भाषा का पठन पाठन बहुत कम होता था। व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पाण्डित्य प्राप्त करने की ओर किसी की रुचि नहीं थी। यही नहीं, कई पुराने विचारों के लोग संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे। नवीन युग के क्रांतिकारी आचार्य जवाहरलालजी महाराज को यह घातक कुरूढ़ि सहन न हुई। गलत-संस्कारों के नीचे दबा रहना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। आप स्थानकवासी समाज में समर्थ विद्वान् देखना चाहते थे। इसलिए सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्य मुनि श्री घासीलालजी म० और वर्तमान आचार्य पूज्यश्री

गणशीलालजी म० को संस्कृत भाषा विद्वानों के द्वारा पढ़ाकर अद्वितीय विद्वान् बनाए। वे अकसर कहा करते थे—'अध्ययन और अध्यापन कोई सावद्य-कार्य नहीं है। मर्यादा में रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाय तो अपढ़ रहने की अपेक्षा बहुत कम दोष है। फिर प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। शास्त्रों में ज्ञान की महिमा का बखान निष्कारण नहीं किया गया है। ज्ञान के अभाव में साधुता की भी शोभा नहीं है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

"अन्नाणी किं काही किं वा नाही य सेयपावगं"

अर्थात्—अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा? वह भले बुरे को—कल्याण, अकल्याण को, धर्म, अधर्म को क्या खाक समझेगा?

आप स्मरण रक्खें—नवीनयुग जो हमारे व आपके सामने आया है उसकी विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिए ज्ञान की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

चरितनायिका आचार्यश्री के इन विचारों को सुन चुकी थीं, और आपने आचार्यश्री के इन प्रगतिशील विचारों का स्वागत एवं समर्थन भी किया। संस्कृत भाषा के अध्ययन के विषय में जो मिथ्याविश्वास था, चरितनायिका ने दृढ़ता के साथ उसे उखाड़ फैंका और अपनी शिष्याओं में संस्कृत पठन पाठन की परिपाटी प्रारम्भ करदी। यही कारण है कि मारवाड़ मालवा में विचरण करने वाली आपकी सम्प्रदाय की साध्वियों ने स्थानकवासी समाज में काफी गौरव बढ़ाया है। शिक्षा के साथ-साथ चारित्रनिष्ठा कायम रखने का सौभाग्य भी इस सम्प्रदाय की साध्वी समाज को है।

बीकानेर का चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ। बीकानेर

चातुर्मास के बाद का विहार का दृश्य बड़ा ही भव्य था। सड़कों पर बहुत दूर तक जनता दीख रही थी। आपने बीकानेर से गंगाशहर, भीनासर, उदरामसर, होते हुए देशनोक में पदार्पण किया। देशनोक की जनता आपके दर्शनों के लिए बड़ी उत्सुक थी। उसने आपका बड़ा स्वागत किया। इधर थली-प्रदेश में पर्यटन करने और यहाँ की बहनों में धर्मजागृति पैदा करने के लिये विनतियाँ आरही थीं। क्रान्तिकारी आचार्यश्री जवाहरलालजी म० व वर्तमान आचार्यश्री गणेशलालजी म० आदि २६ सन्तों से थली की ओर सं०१६८४ की मार्गशीर्ष शुक्ला २ को प्रस्थान करके वहाँ पहुँच चुके थे। पूज्यश्री का चातुर्मास चूरु नगर में हुआ था। दोनों पूज्यश्री ने विविध कठिनाइयाँ झेल कर थली का मार्ग साध्वियों के लिए साफ कर रखा था। पूज्य श्री ने पहला चौमासा सरदारशहर करके यहाँ के तेरापन्थी भाइयों की नाड़ी की गति-विधि पहचान ली थी, अतः उन्होंने समझा अब यहाँ सतियाँ पधारें तो उन्हें इतना कष्ट नहीं होगा।

पूज्यश्री ने चरितनायिका के पास समाचार भिजवाये कि "मेरा चातुर्मास चूरु तय हो चुका है और आप भी साध्वी मण्डली सहित पधारना चाहें तो यहाँ की परिस्थिति का अनुभव हो सकता है।"

देशनोक से ही चरितनायिका ने रत्नकुमारीजी आर्या ठाणा ४ को सरदारशहर (थली) की ओर विहार करवा दिया था। सरदारशहर वहाँ से लगभग ५०-६० कोस है। रास्ते में एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जहाँ स्थानकवासी जैनों के घर हों। अनजाने देश में भी साध्वियाँ बड़ी हिम्मत के साथ विहार कर रही थीं। सरदारशहर से करीब ४ कोस पहले सवाई ग्राम में जाते जाते श्रीरत्नकुमारीजी आर्या की तबियत अचानक बिगड़ गई। उनका चित्त विक्षिप्त-सा होगया था।

परितनायिका को जब यह खबर लगी कि एक साध्वीजी का चित्त खराब हो गया है, आपने उनकी सम्भाल करने के लिए स्वयं विहार किया।

थली तेरहपन्थियों की रंगस्थली है। वह उनका अभेद्य दुर्ग है। चरितनायिका बखूबी जानतीं थीं कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध कठिनाइयों को निमन्त्रण देना होगा, फिर भी जन कल्याण की कामना से प्रेरित होकर आपने स्थली में प्रवेश करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चरितनायिका की इस स्थली-यात्रा की कठिनाइयों की कल्पना उन्हें नहीं हो सकती, जिन्होंने कभी इस रेगिस्तान के दर्शन नहीं किये हैं। चारों ओर दूर-दूर तक बिछी हुई बालुका राशि शीतकाल के प्रातःकाल में ओलों की तरह ठंडी पड़ जाती है। शीतकाल में प्रातःकाल विहार करते समय भूमि ऐसी लगती है मानो पैर में बिच्छू ने काट खाया हो। कभी मध्यम और कभी प्रबल वेग से बहने वाली हवा के ठंडे ठंडे झौंके सीधे कलेजे तक पहुंच कर प्राणों को स्पन्दनहीन बनाने के लिए प्रयत्न-शील रहते हैं। मार्ग में कोई ऐसा सघन वृक्ष नहीं, जिसकी आड़ में पथिक क्षणभर सन्तोष की सांस ले-सके। सर्वत्र अप्रतिहत वायु और अपरिमित बालुका पुञ्ज उस मरुभूमि के पथिक का स्वागत करते हैं।

ग्रीष्म-ऋतु के मध्याह्न में मरुभूमि मानों अपना रूप ही पलट लेती है। सूर्य की प्रचण्ड किरणें बालुका को इतनी उष्ण बना देती हैं कि यात्री का चलना दूभर होजाता है। यात्री की सही-परीक्षा इस मरुभूमि में आने पर ही होती है। रास्ते में भी कठिनाइयों का पार नहीं था। मरुभूमि के ग्रामीण-किसान फिर भी जैन-साध्वियों को देख कर उन्हें आहार-पानी बहराते थे, कहीं तिरस्कार की कड़वी घूंटें भी मिलतीं।

इस तरह चरितनायिका रास्ते की कठिनाइयों का सामना

करती हुई शीघ्रातिशीघ्र सरदार शहर पहुँचीं।

सरदारशहर तेरहपन्थियों का सब से बड़ा केन्द्र है। यहाँ ओसवालों के करीब १२०० घर हैं। अधिकांश घर तेरह पन्थियों के हैं। पाठक यह न समझें कि वहाँ सभी तेरहपन्थी ही बसते हैं। लंका में सभी रावण नहीं थे। कुछ लोग वहाँ सरल हृदय भी थे। आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज से करीब ४० भाइयों ने जैनधर्म की सच्ची-श्रद्धा ग्रहण करली थी। सरदारशहर के अग्रवाल माहेश्वरी, ब्राह्मण, सुनार, दर्जी आदि जैनेतर भाई भी आचार्यश्री के काफी भक्त हो चुके थे। अतः सरदार शहर में चरितनायिका का आगमन होने पर उन लोगों ने बड़ा स्वागत किया और आपके व्याख्यान में भी काफी उपस्थिति होने लगी।

सरदारशहर में चरितनायिका ने उक्त महासतीजी की, जो रुग्णावस्था में थीं, काफी परिचर्या की और उपचार करना प्रारम्भ किया। सरदारशहर में आप ज्यादा दिन नहीं ठहरीं, क्योंकि आपका विचार आचार्यश्री के दर्शन करने का था, अतः इन आर्याजी को साथ में लेकर वहाँ से विहार करती हुई चुरु पधारीं। चूरु में कई बीकानेर के श्रावक आए हुए थे। उन लोगों ने उक्त साध्वी की रुग्णावस्था देखकर आपसे कहा—'आप इन्हें लेकर वापिस बीकानेर पधार जाइये, यहाँ स्वजो-प्रदेश है, यहाँ उपचार का योग मिले, न मिले, आपको बड़ी कठिनता उठानी पड़ेगी।'

चरितनायिका को यह बात सुन कर बड़ी दुविधा में पड़ जाना पड़ा। इधर उनके मन में पूज्यश्री के साथ चातुर्मास करने और उनके अमूल्य अनुभवों को ग्रहण करने का स्वर्ण-संकल्प था। उधर इन रुग्ण आर्याजी की परिचर्या की व्यवस्था का भी सवाल था। चूरु में स्थानकवासी मान्यता वाले थोड़े ही घर थे।

पर वे भी कोठारी थे। अतः बड़ी उदारता और श्रद्धा से आहार पानी आदि देते थे। वे स्वयं कोट्यधीश थे और चूरू में उनकी धाक थी। तेरापंथी ओसवालों में भी कई घर पूज्यश्री के पधारने से सुलभ हो गये थे। और माहेश्वरी, अग्रवाल, सुनार आदि तो बड़ी भक्ति रखते थे। चरितनायिका ने देखा बीकानेर जाने से भी क्या होगा ? कर्म तो चाहे कहीं भी चली जाँय तो छोड़ने वाला नहीं। यहाँ सभी तरह से औषधि आदि की सुविधा है ही, फिर क्यों यह सुनहरा अवसर हाथ से गँवाया जाय। इन सतियों की सेवा में कितनी ही सतियों को छोड़ कर मैं आसपास के क्षेत्रों में थोड़े दिन पर्यटन कर लूँगी। चरितनायिका ने बीकानेर वाले श्रावकों से कहा—"मेरा विचार अब स्थली-प्रान्त में विचरने और यहाँ के रहन सहन का अनुभव करने का हो रहा है। पूज्यश्री की भी परम कृपा है और यह चौमासा पूज्यश्री के साथ हो कर लूँगी। यहाँ कोई असुविधा नहीं है।' बीकानेर के लोगों ने फिर कुछ नहीं कहा।

चूरू में फाल्गुन कृष्णा ६ को गंगाशहर-निवासी वैरागी रेखचन्दजी तथा तेरापन्थ-सम्प्रदाय को छोड़ कर आए हुए हम्मीरमलजी की दीक्षा होने वाली थी। उस अवसर चरित नायिका भी २० साध्वियों सहित वहाँ पधारी थीं। आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के पवित्र कर-कमलों द्वारा दीक्षा सम्पन्न हुई। चूरू में आपका शेषकाल का कल्प पूरा हो गया था। अतः वहाँ का कल्प निकालने के लिए चरितनायिका ने सरदारशहर की ओर विहार कर दिया। चूरू से सुजानगढ़, लाडनू आदि स्पर्श करती हुई चरितनायिका विचरण कर रही थीं।

गर्मी के दिन थे। ऊपर तो आसमान से सूर्य का प्रचण्ड

ताप लगा रहा है और नीचे तवे की तरह तपी हुई रेतीली ज़मीन दोनों ओर का यह दुःसह ताप चरितनायिका की परीक्षा ले रहा था। बस्तियों के मार्ग भी बड़े विकट होते हैं। छायादार सघन वृक्ष तो बहुत कम आते हैं। इधर आपने सुबह ही एक गाँव से विहार किया और आगे के गाँव में पहुँच रही थीं। चलते-चलते दस ग्यारह करीब बज गये। पास में पानी खतम हो गया था। चरितनायिका को बड़े ज़ोर की प्यास लगी। बड़ा साहस रखने पर भी शरीर तो आखिर शरीर ही है! वह क्यों मानने लगा। पिपासा ने काफ़ी प्रगति कर ली! कण्ठ सूख रहे थे। साथ में ही आपकी शिष्याएँ चल रही थीं, उन्होंने आपकी यह हालत देखी। वे भी घबरा गईं। दो साध्वियों—मैनकुमारीजी और श्रेयकुमारीजी यह देख कर बड़े साहस पूर्वक वहाँ से विहार करके अगले गाँव पहुँचीं। रास्ते की तप्त बालुका और धूप की उन्होंने कोई परवाह नहीं की। गुरु भक्ति ऐसी ही होती है। भक्ति बदले की भावना नहीं चाहती है। वह तो अपने उपास्य की सेवा और पूजा ही करना जानती है। दोनों साहसिक साध्वियाँ गाँव में घूमघाम कर उतारा करके कुछ धोवण-पानी और थोड़ी-सी छाछ वगैरह लेकर आपके सामने आ रही थीं। चरितनायिका ने दोनों सतियों को आती हुई देख कर बड़ी आशा भरी नज़रों से देखा। कुछ जी में जी आया। साध्वियों के पैरों में छाले पड़ चुके थे। आपने उनको हाथ से बैठ जाने का इशारा किया। वे बैठीं और आपको धोवण-पानी पिलाया। चरितनायिका ने धोवण-पानी पीकर बड़े संतोष का अनुभव किया और कहा— "आज तुम दोनों ने महान् निर्जरा की है। तुम दोनों पानी लेकर न आतीं तो शायद ये प्राणपखेरू न रहते। तुमने मुझे अत्यन्त शान्ति पहुँचाई है।" फिर कुछ विश्रान्ति लेकर सभी साध्वियाँ उस गाँव में पहुँचीं।

चरितनायिका ने तेरहपन्थियों की अटपटी मान्यताओं का कुछ-कुछ अध्ययन कर लिया था। तेरहपन्थियों की यह मान्यता थी कि "किसी प्यासे गृहस्थ को पानी पिलाना तथा भूखे को भोजन देना एकान्त पाप है।" चरितनायिका को इस मान्यता में गहरी-भूल और अन्धश्रद्धा नजर आगई। आपने स्वयं अनुभव कर लिया कि प्यासे के प्राण बचाना कितना पुण्य का कार्य है। तेरहपन्थियों की इस अन्धश्रद्धा पर आपको तरस आने लगी। भावरोग से पीड़ित इन भाइयों पर चरित नायिका को करुणा आती थी। आपका हृदय दया दान के विरोधी भाइयों की अज्ञता देख कर पसीज जाता था।

हाँ, तो यहाँ से विहार करती हुई आप सरदार शहर, रतनगढ़, सुजानगढ़, राजलदेसर, बीदासर आदि स्थानों में दया-दान का प्रचार करती हुई, चातुर्मास करने के लिए चूरु पधारीं।

पूज्यश्री के साथ चरितनायिका का चूरु चातुर्मास होने पर जनता को दोहरा लाभ मिला। इधर दया-दान विरोधी मान्यता वाले भाइयों म पूज्यश्री का प्रचार चल रहा था और वे उन्हें धर्म की सभी राह पर लाने का प्रयत्न कर रहे थे, इधर चरितनायिका दया-दान विरोध रूप अज्ञान स भ्रान्त मस्तिष्क वाली बहनों में सद्धर्म का प्रचार कर रही थीं। चातुर्मास में अधिकांश तेरहपन्थियों का व्यवहार विपरीत ही रहा, क्योंकि तेरहपन्थी साधुओं ने अपने भक्त भाई बहनों को इस बात की प्रतिज्ञाएँ दिला दी थीं कि "स्थानकवासी (ढूंढिया) साधु साध्वियों को आहार पानी नहीं देना" यही कारण था कि चरितनायिका या अन्य साध्वियाँ जब कभी तेरहपन्थियों के घरों में गोचरी जातीं तो वे जान बूझ कर असूझती हो जातीं

और आहार-पानी देने के लिए टालमटोल करने लगतीं। अन्त में कोई उपाय न देखतीं तो यही बहाना कर लेतीं कि मेरे तो अभी काँटा लग रहा है अथवा मैंने तो अभी कच्चा पानी पिया ही है' इत्यादि। आहारपानी आदि की असुविधाएं चरित नायिका के लिये नगण्य थीं।

स्थली-प्रान्त म ही पूज्यश्री के सन्त साधुधर्म के अनुसार भिक्षा लाने के लिए सहज ही तेरापंथी घरों में चले जाते। मगर कई एक पाषाण हृदय गृहस्थों ने सन्तों के पात्र में पाषाण रख दिये। इस प्रकार की और भी जघन्य चेष्टाएँ की गईं। जिनका उल्लेख करने में मनुष्यता भी शर्मिन्दा हो जाती है। इन भाइयों न अपनी चेष्टाओं से जाहिर कर दिया कि हम वचन से ही दया दान के विरोधी नहीं, अपितु व्यवहार में भी दया-दान के कट्टर दुश्मन हैं।

चूरू-चातुर्मास में कई बहनें आपके पास आतीं और छोटे छोटे चटपटे ढंग के प्रश्नोत्तर करतीं, पर आप उन्हें प्रसन्नता पूर्वक उत्तर देतीं। आप अपने मस्तिष्क का सन्तुलन न खोतीं, और तेरहपंथियों की कपोलकल्पित मान्यताओं का इस ढंग स उत्तर देतीं कि व दंग रह जातीं। अज्ञानी जीव की बाल-दशा ज्ञानी जनों के लिए विषाद का कारण बन जाती है। अतएव तेरहपंथियों की ओर से जो जो बाधाएँ आपके पथ में उपस्थित की गई आप उनका परिहार करती गई। उनकी बाधाएं आपको विच लित न कर सकीं। जैसे अन्धकार के बिना सूर्य का महत्व समझ में नहीं आता, उसी तरह खलजनों के बिना सन्त-पुरुषों का मूल्य समझ में नहीं आता। चरितनायिका क विषय में यह उक्ति पूरी उतरती हुई नजर आती है। आपक प्रति असभ्यव्यवहार असभ्यशब्दावली का प्रयोग विरोधियों की ओर से किया गया,

पर आप उसे परिषह समझ कर समभाव से सह रहीं थीं। परिणाम यह हुआ कि स्थली-प्रान्त की सरल हृदय जनता ने आप की महिमा का मूल्याङ्कन कर लिया। वे स्थानकवासी साधु साध्वियों की ओर आकर्षित होने लगे।

चातुर्मास में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि चरितनायिका जिस सम्प्रदाय का नेतृत्व कर रही हैं, उसी सम्प्रदाय में पहले शिष्याएँ अलग अलग अपनी अपनी निश्राय में करने की परिपाटी थी। पर चरितनायिका क्रान्तदर्शी आचार्य जवाहरलालजी महाराज से एकता का महत्त्व सुन-समझ चुकी थीं। पृथक् पृथक् शिष्याएँ होने से संघ का अनुशासन व्यवस्थित नहीं रहता, और संघ की शक्ति तितर बितर हो जाती है। सब का अपना अपना पृथक् गुट बनाने का ध्येय बन जाता है। अतः हमारी चरितनायिका ने प्रवर्तिनीजी की हैसियत से, आचार्य श्री व सभी प्रधान-साध्वियों की सलाह लेकर उस परिपाटी में रद्दोबदल कर दिया कि—"भविष्य में सम्प्रदाय में जो भी साध्वी दीक्षित हो, वह सब तात्कालीन प्रवर्तिनी की निश्राय में गिनी जायगी। हाँ वह नवदीक्षिता अपनी मर्जी के अनुसार जिसके द्वारा उपदिष्ट हो, उस साध्वी के साथ रह सकती है।"

यह परिवर्तन चरितनायिका के जीवन में कितना क्रान्तिकारी है? एकता के लिए कितना स्तुत्य प्रयास है? चरितनायिका का यह नियम बनाने में अपना निजी कोई स्वार्थ नहीं था। उन्हें भविष्य में उससे संघ हित प्रतीत हुआ था। संघ के कल्याण से प्रेरित होकर ही आपने यह प्रशंसनीय कदम बढ़ाया था। अतः वहाँ उपस्थित सभी साध्वियों ने इसे एकमत से स्वीकृत किया। उसी समय सम्प्रदाय की अग्रेसर सतियों के पास इस नियम की सूचना भेज दी गई।

पूज्य श्री ने इस नियम को सुन कर बड़ा हर्ष प्रगट किया। आचार्यश्री की चातुर्मास भर में चरितनायिका पर कृपा-दृष्टि बनी रही। पूज्यश्री आपकी शान्तमूर्ति, प्रसन्नता ज्ञान ध्यान तल्लीनता आदि से बड़े प्रसन्न हुए। चातुर्मास समाप्त हुआ। यह चातुर्मास चरितनायिका के जीवन में एक महत्वपूर्ण चातुर्मास था। सारा चातुर्मास धर्म चर्चा का केन्द्र बना रहा। चूरु की जनता के लिये यह भूलने की चीज नहीं है।

प्रिय-शिष्या का वियोग

चूरू के सफल चातुर्मास के पश्चात् चरितनायिका साध्वी मंडली सहित रतनगढ़, सुजानगढ़ और लाडनूं आदि क्षेत्रों में अपनी अमृत वाणी बरसाती हुई पादू पधारीं। वहाँ कुछ दिन ठहर कर अजमेर पधारीं। अजमेर का संघ आपके व्यक्तित्व से काफी परिचित था ही। यहाँ खूब ही धर्मोद्योत रहा। आपके साथ में पूर्वोक्त रुग्ण साध्वी श्री रतनकुमारीजी भी थीं। उनका भी यहाँ काफी इलाज कराया गया।

अजमेर से चलकर किशनगढ़, मदनगंज, परासौली, साथ दूदा आदि क्षेत्रों में धर्म की वंशी बजाती हुई चरितनायिका जयपुर पहुँचीं। जयपुर संघ आपके दर्शन पाकर हर्षविभोर हो उठा। जयपुर-संघ पर आपके व्यक्तित्व की छाप अंकित थी। वहाँ आप करीब दो मास तक विराजित रहीं। भाइयों और बहनों में काफी धर्म ध्यान, दया, पौषध आदि हुए। विहार करते समय जनता बड़ी व्याकुलता अनुभव कर रही थी। सभी श्रावकों ने आग्रह किया कि आप कम से कम गनगौर के त्योहार तक यहाँ विराज जाँय। पर आपको वापिस अजमेर लौटना था। वहाँ पर कुछ साध्वियाँ रुग्णसाध्वी की सेवा में ठहरी हुई थीं अतः उनकी देखभाल भी करना था। जयपुर से ठीकर्या मेहता ... आदि क्षेत्रों को चरण-कमलों से पावन करती हुई

पधार रही थीं। जयपुर का रास्ता है तो सड़क का, फिर भी बड़ा विकट है। रास्ते में क्या क्या कठिनाइयाँ आती हैं इसका वर्णन पहले के प्रकरण में आ चुका है। इसी कारण को लेकर चरितनायिका ने जयपुर से अजमेर के विहार में दो टुकड़ियाँ बना ली थीं। एक टुकड़ी आगे चल रही थीं। पिछली टुकड़ी में चरितनायिका चल रही थीं। आगे की टुकड़ी में एक साध्वीजी आनन्दकुमारीजी को अचानक ही ठिकर्या गाँव में बुखार ने आ घेरा। तो भी हिम्मत नहीं हारी और धीरे धीरे चलती हुई वहाँ से दो कोस की दूरी पर स्थित 'सावड़दा' नामक ग्राम में पहुँची। रास्ते की कठिनाइयों का तो मैंने जिक्र ही छोड़ दिया है इसके लिये पाठकों को ज्यादा इधर उधर के घटनाचक्रों में ही उलझाए रखना उचित न होगा।

हाँ, तो सावड़दा में जैनियों का एक भी घर न था। दूसरे लोगों को न तो जैन साधु-साध्वियों के भिक्षाचारी के नियमों का पता था और न जैन मुनियों के विषय में कोई जानकारी थी। अतएव वहाँ आहार-पानी मिलना बड़ा कठिन कार्य था। उस समय दस साध्वियाँ थीं। फिर भी वे साहस करके वहाँ ग्रामीण भाइयों के यहाँ आहार पानी तलाश करने के लिए घूमने लगीं। अपरिचित होने के कारण उन लोगों ने तिरस्कार करना शुरू किया। कहने लगे—"आई है वेचारी रोटी लेने को। तुम लोगों से काम नहीं होता, इसलिए माँगने चली हो।"

कहीं भद्दी गालियाँ भी उपहार में मिलतीं। साध्वियों ने कई बहनों को समझाया—"हमारी गुरुनीजी बहुत भाग्यशालिनी हैं। बड़ी शान्तमूर्ति हैं। हम लोग अपने पास पैसा-टका नहीं रखतीं। ये साध्वियाँ सभी ऊँचे घराने की हैं। और कई लखपति और करोड़पति इनके चरणों में झुकते हैं। तुम अपना अहोभाग्य समझो कि ऐसी महान् आत्मा तुम्हारे गाँव में पधारी

है। हमारे साथ की एक साध्वीजी को बुखार हो गया है इसलिए यहाँ ठहर गई हैं।" इसके बाद साध्वियों ने लोगों को जैन-साधु साध्वी की चर्या थोड़े शब्दों में समझाई।

साध्वियों की बातें सुनकर कई लोगों का दिल पसीज गया। कुछ लोगों ने आहार पानी भी दिया। जितना मिलता उतना ही लेकर संतोष-पूर्वक दिन व्यतीत किये। साध्वियों को यहाँ कभी भरपेट आहार नहीं मिला था। इधर आहार-पानी की समस्या थी। उधर बीमारी की समस्या भी कठिन से कठिन तर होती जा रही थी। चरितनायिका व साध्वियों ने मिल कर सोचा—चाँदकुमारीजी के शरीर में ज्वर ने बड़ा तीव्र रूप ले लिया है। चिकित्सा के साधन तो इस गांव में हैं ही कहाँ। यहाँ से ६ कोस की दूरी पर पराशौली गाँव है, वहाँ जैनियों के करीब १० घर हैं, इन्हें बाँस की झोली में बिठाकर वहाँ उठा ले चले तो ठीक रहेगा। इस स्थान पर तो निर्वाह होना कठिन है।

गाँव वालों से पूछताछ कर बाँस लाकर झोली बनाई, और उसमें चाँदकुमारीजी आर्या को बिठाकर उठाने लगीं। ग्रामवालों से भी कहा—"भाई, हमारी साथिन यह साध्वी बहुत बीमार होगई हैं, अतः हम आसपास के किसी गाँव में बीमारी तक ठहरने और उपचार की सुविधा हुई तो ठहरेंगी। अगर हम से इन्हें ले जाया न गया तो हम वापिस तुम्हारे गाँव आसकती हैं।"

पर गाँववाले लोगों का उत्तर अनोखा ही था। उन लोगों ने कहा—"इन्हें रुग्णावस्था में क्यों लेजाती हो? यह मर जायगी तो हम ही उसे जला देंगे।" कितने ही लोगों ने ले जाने से इन्कार कर दिया। कहा—"ऐसी खतरनाक हालत में ले जाकर तुम हमारे गाँव की कहीं बदनामी कराओगे। यहीं मन्दिर खोल देते हैं, वहाँ उतर जाओ।" सभी साध्वियों ने यह सुनकर उन्हें वापिस मन्दिर में ठहराया। चाँदकुमारीजी आर्या को बुखार

बढ़ता गया। छाती में दर्द होने लगा और बुखार ने बढ़ते-२ डबल न्यूमोनिया का रूप ले लिया। स्थिति काबू में नहीं आरही थी। अब क्या किया जाय ? सभी साध्वियों के मुख पर विषाद छा गया। ग्राम में बीमार साध्वी के लिये दूध भी बड़ी कठिनता से नसीब होता था। पाव भर दूध के लिये कितने ही चक्कर काटे तथा अपशब्दों और कटुवाक्यों की बौछार सही। दूध के सिवाय और कोई चीज बीमार साध्वी स खाई नहीं जाती थी।

साध्वियों के साथ में एक भाई था। वह अजमेर आया। साध्वीजी की बीमारी की सूचना दी। अजमेर के सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा व अन्य सज्जनों ने विचार करके एक लारी में २४ भाइयों व एक डाक्टर को साथकरके भेजा। डॉक्टर ने साध्वीजी की तबियत देखकर उन्हें दवा वगैरह दी और सब वापिस लौट गये। सभी साध्वियाँ रुग्ण साध्वी की सेवा में लगी हुई थीं। आठ दिन ग्राम में ठहरे हो चुके थे। आठवें दिन बीमारी काबू में न रही। तमाम साध्वी की मुखाकृति बदल गई। चेहरे पर भावी मृत्यु की अस्पष्ट-छाया पड़ी दिखाई देने लगी। जीवित रहने की आशा क्षीण होगई। प्रवर्तिनीजी ने उनके परिणामों को स्थिर रखने के लिये अन्तिम उपदेश देना आरम्भ कर दिया। साध्वीजी चाँदबाई ने संथारा करने की इच्छा प्रकट की। प्रवर्तिनीजी ने उपस्थित साध्वियों की राय लेकर संथारा करा दिया। उसी दिन चैत्र शु० ११ सं० १९८७ के शाम को ४ बजे चाँदबाईजी आर्या ने अपनी ऐहिकलीला समाप्त की।

गाँव के लोगों ने अजमेर से महासती की सेवा में आए हुए दर्शनार्थियों की भीड़ और उनकी सेवाभक्ति देखी तो वे चकित हो गए। उन लोगों पर भी आपकी त्याग तपस्या और दिनचर्या का बड़ा प्रभाव पड़ गया था। वे लोग अफसोस करने लगे—"देखो ! हम इन बनियों (साध्वियों) की राहदीकोग कितनी

भक्ति करते हैं। इनको अच्छी से अच्छी चीज देते हैं। हम तो इन्हें कुछ भी नहीं समझते थे।" मिश्रीमलजी लोढ़ा ने यहाँ एक बहन को अपनी धर्मबहन बनाली थी। उन लोगों ने अब तो भावुकता में आकर आप से कहा—"हमारे लायक कोई काम काज हो तो हमें कह देना, हम सभी व्यवस्था कर देंगे।"

चाँदकुमारीजी के इस आकस्मिक निधन से सभी साध्वियों के हृदय में एक गहरी ठेस पहुँची। चरितनायिका तो अपनी प्रिय और नवयुवती शिष्या के अचानक स्वर्गवास से गहरे सोच में पड़ गई। चांदकुमारीजी साध्वी को अभी दीक्षित हुए १० ही साल हुए थे। प्रकृति की बड़ी विनीत थीं। शरीर सम्पत्ति भी अच्छी थी। चरितनायिका की बड़ी आज्ञाकारिणी थी। छोटी बड़ी सभी साध्वियों का वह सम्मान करती थीं। एक अनुपम रत्न के चले जाने पर किसे विषाद न होता? चांदकुमारीजी की ज्ञान पिपासा इतनी थी कि अन्तिम समय भी कुछ न कुछ पठन पाठन करने की इच्छा मन में उमड़ती रहती। हन्त! निर्दयकाल ऐसे रत्न को भला, क्यों न छीनता? जो प्रिय और आकर्षक चीज होती है उसे तो काल झटपट झपटकर नष्ट करना ही जानता है।

अस्तु, उसी दिन अजमेर खबर पहुँच गई। श्रावकगण अजमेर से एक लारी में दाहसंस्कार का सारा समान भर लाये।

दूसरे दिन शवयात्रा निकाली गई। शवयात्रा के समय करीब ६००–७०० मनुष्य इकट्ठे हो गए। गांव के ठाकुर साहब व उनकी माताजी की अब काफी भक्ति हो गयी थी। सच्चे त्याग का असर पड़े बिना नहीं रहता। ठाकुर साहब के यहाँ पीपल और चन्दन की लकड़ियाँ काटी हुई तैयार पड़ी थीं। वे दाह-संस्कार के लिये उन्हें देने को तैयार हो गए। सब लोगों ने बड़े समारोह के साथ साध्वीजी की अन्त्येष्टिक्रिया की और लौट

कर आये।

मांगलिक वगैरह सुन कर उन लोगों ने आपसे शीघ्र ही अजमेर पधारने की विनती की। सब लोग अजमेर लौट गये। चरित्रनायिका और साध्वी मण्डली ने वह रात्रि सावडदा ग्राम में ही बिताई। प्रातःकाल विहार कर दिया।

अब मावड़दा के लोगों की भक्ति का क्या पूछना? गाँव के सभी लोग चरित्रनायिका के भक्त हो चले थे। उन लोगों ने कहा— 'हमें तो पता ही नहीं था कि जैन-साध्वियों में इतना त्याग होता है? आपका प्रभाव तो बड़े-बड़े लोगों पर है। आप चाहतीं तो उनसे भी आहार-पानी की व्यवस्था करवा सकती थीं, पर आपकी तो कठिन-चर्या ठहरी कि अपने लिये सेवा में आये हुए के पास से नहीं लेतीं। आपने हमारे गाँव में बड़ा कष्ट उठाया। धन्य है आपको! हमारा अहोभाग्य है कि आपने यहाँ विराज कर हमारे गाँव को सावड़दाशहर बना दिया!"

सावड़दा से चल कर चरित्रनायिका अजमेर आईं। अजमेर में आने पर लोगों ने काफी सेवा की और चातुर्मास के लिये आग्रह किया। आपकी इच्छा ब्यावर की ओर एक बार जाकर साध्वी-संघ की व्यवस्था करने की थी। अतः उस समय चातुर्मास की विनति पर विनति होने पर भी स्वीकार न की अजमेर में थोड़े ही दिन ठहर कर विहार कर दिया। भला, ऐसी भाग्यशालिनी और शान्तमूर्ति प्रवर्तिनीजी को अजमेर-संघ चौमासे के बिना कैसे छोड़ सकता था? तीन-तीन चौमासे जिस नगर में बिता कर अटूट प्रेम भाव और त्याग की छाप जिन पर आपने अंकित की है। भला, उन्हें यह संघ यों ही जाने दे सकता है?

चरित्रनायिका अजमेर से मोहनपुरा स्टेशन पधारी होंगी। मगर अजमेर वालों ने पीछा नहीं छोड़ा? उन्होंने बड़ी धीरभूप

की ओर आग्रहपूर्ण प्रार्थना करके आपका चातुर्मास अजमेर में स्वीकार करा ही लिया।

उधर चरितनायिका की सच्ची सहायिका और संयम-पथ पर अग्रसर करने वाली, सांसारिक पक्ष की बहन फूलकुँवरबाई को पता लगा कि प्रवर्तिनीजी अजमेर आगई हैं, तो वह भी अपने यहाँ चातुर्मास कराने की उमंग से सोजत से शीघ्र ही पहुँची।

फूलकुँवरबाई ने चरितनायिका के सामने अपना अन्तरङ्ग भाव सुनाया — चातुर्मास सोजत में करने की प्रार्थना की। चरितनायिका ने कहा—"इस साल के चातुर्मास के लिए तो मैं वचन दे चुकी हूँ। अब यह चातुर्मास तो यथासमाधि अजमेर ही करना होगा। आपकी विनति ध्यान में जरूर रक्खी जायगी।"

फूलकुँवरबाई ने अजमेरवालों से चातुर्मास माँगने के लिए भी पूछा, परन्तु चरितनायिका ने ऐसा करने से मना कर दिया। कहा—"तुम्हारे यहाँ तो बहुत से चौमासे किराए हैं, बड़ी दौड़धूप करने के बाद इनके यहाँ की विनति मानी गई है अतः इस चातुर्मास के लिए तो तुम अपनी विनति स्थगित रहने दो।"

फूलकुँवरबाई बड़ी आशाएँ लेकर आई थीं, परन्तु उनकी मन की मन में ही रह गई। संवत् १६८७ का चातुर्मास अजमेर ही हुआ।

चातुर्मास में धर्म ध्यान काफी हुआ। आपका चातुर्मास होने से कई बहनों को धर्म का बोध मिला। कई नवयुवक लोग जो धर्म से प्रेम नहीं रखते थे, आपके दर्शन कर धर्म सन्मुख हुए। चौमासे में तपस्याएँ भी प्रचुरमात्रा में हुई। साध्वियों में निम्नलिखित तपस्याएँ हुई —

दाय के स्थानकवासी जैनों में २८ पण्डितसाधु विद्यमान थे और संघ भी इतना विशाल था कि संवत्सरी के दिन उपाश्रय में करीब १८०० पौषध हुआ करते थे।

कोटा में आपके पदार्पण से संघ में नूतन-जागरण पैदा होगया। बहुत दिनों से उन्हें साधु साध्वियों के दर्शन नहीं हुए थे। यहाँ आपके दया विषय पर बड़े प्रभावशाली व्याख्यान होते थे। आपके उपदेशों से प्रेरित होकर मंडाणा-ग्राम-निवासी श्री गेन्दालालजी रॉका ने कितने ही मूक प्राणियों को अभय दान दिया।

कोटा से चलकर आप बूँदी पधारीं। यहाँ भी काफी धर्मोद्योत हुआ। वहाँ से रामपुरा पधारीं। रामपुरा में कई शास्त्रज्ञ श्रावक थे। उन्होंने आपकी चरित्र-शीलता और शास्त्रों पर व्याख्या देने की शैली देख कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। रामपुरा से छोटे-छोटे ग्रामों में अहिंसा का संदेश सुनाती हुई, माटखेड़ी पधारीं। माटखेड़ी में ठकुरानीजी ने आपसे धर्म व्याख्या सुनी, उन्हें बड़ी रुचिकर लगी। और आपकी शान्त आकृति, व वत्सलता वगैरह देख कर ठकुरानीजी के हृदय में प्रेमाङ्कुर पैदा होगया। उन्होंने आपसे जैनधर्म की बहुत-सी बातें पूछीं और जैनधर्म के प्रति अपनी श्रद्धा भी व्यक्त की।

यहाँ से मणासा आदि क्षेत्रों को पावन करती हुई चरित्रनायिका जावरा पधारीं। जावरा संघ में धर्म-श्रद्धा गहरी थी। यहाँ का संघ चरित्रनायिका के मधुर-व्याख्यानों का रस पी चुका था। अतः चातुर्मास की विनति की। चरित्रनायिका ने उनकी आग्रहपूर्ण विनति मान कर सं० १९८८ का चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति दे दी।

जावरा में आप के व्याख्यानों में दया पर खूब जोरों से व्याख्या चल रही थी। आपने अपने उपदेशों में कहा—

मानव-जीवन अमूल्य है। मानव-जीवन पाकर जो इसे मौज-शौक में गँवा देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं है। मानव जीवन पाकर जो गरीबों की सेवा करता है दीन दुःखी की रक्षा करता है, वही अपने जीवन को सफल बना सकता है। मानव-जीवन में सर्वश्रेष्ठ गुण दया है। जैनधर्म की जड़ ही दया है। सभी तीर्थंकरों ने दया-धर्म की स्थापना की है। मेघकुमार ने हाथी के भव में खरगोश की दया की थी, इस कारण उसे मनुष्य भव मिला। यह है दया-देवी की देन।

आज लोग काली, भवानी, शीतला आदि कई देवियों के स्थान पर फेरी लगाते फिरते हैं। पर उन्हें सोचना चाहिए कि अगर वे देवी या जगदम्बा हैं, तो अपने पुत्रों की बलि क्यों लेती हैं?—पशुओं को अपने नाम से क्यों कटवाती हैं जो-देवी जगत् की माता है उसके लिए तो मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि समस्त छोटे-बड़े प्राणी पुत्र की भाँति प्रिय हैं। जो जैन धर्म को मानने वाला है वह इन हत्याकारिणी देवियों के दरवाजे नहीं चढ़ सकता। वह तो उस दयादेवी की उपासना करता है जो अत्यन्त सौम्य, आह्लादकारी और करुणामय है। दुःखियों का मन ही दयादेवी का मन्दिर है। वह किसी ईंट या चूने के कारागार में कैद नहीं है। जड़ पदार्थों में उसका वास नहीं है, वह जीते-जागते प्राणियों में निवास करती है। दया का दर्शन करना हो तो गरीब, और मूक प्राणियों को देखो—नेत्रों से ही नहीं हृदय से भी। क्या आप इन बिचारे मूक प्राणियों पर दया करेंगे? आप दयाधर्मी कहलाते हैं, अतः अपने नाम की कुछ लज्जा रक्खें। आपके यहाँ महीने में कितनी बार दयाव्रत का पालन होता है?

'महाराज, कभी-कभी होता है।'—लोगों ने कहा। अब दया का पालन जरूर करेंगे।

चरितनायिका के इन व्याख्यानों का श्रोताओं पर साधा असर पड़ता था। उन लोगों ने महीने में कम से कम एक दो बार दया व्रत करने की प्रतिज्ञा भी लेली। चरितनायिका के स्वयं के हृदय में दया-मैत्री का पूर्ण निवास है। दया तो सम्यक्त्व का खास गुण है यह भला क्यों न हो? चरितनायिका छोटे-छोटे प्राणियों को दुःखी देखती हैं, या किसी को कष्ट में देखती हैं, तो आपका हृदय उसके दुःख मिटाने के लिये विह्वल होजाता है।

जावरा की ही बात है। चरितनायिका एक दिन साथ पोल-दरवाजे से होकर शौच के लिए बाहर पधार रही थीं। सहसा चरितनायिका ने कई मुसलमान भाइयों का एक साँप सताते हुए देखा। वे लोग क्रूर प्रकृति के थे। बीच बीच में साँप से खेल रहे थे। उसे निहत्था समझकर लकड़ी से मारने लगे। वह बिचारा मूक-भाव से यह सब सह रहा था और किसी दयालु की प्रतीक्षा कर रहा था। वह अपना मुख ऊँचा करके मानो किसी को आह्वान कर रहा था। चरितनायिका ने यह हाल देखते ही उन मुसलमान भाइयों को समझाया—"अरे भाई, तुम लोग क्यों इस साँप के पीछे पड़े हो? यह बिना सताये किसी को काटता नहीं। फिर भी तुम इस लट्ठी से मार रहे हो। क्या इसे तक लीफ नहीं होती है? तुम्हारे शरीर में अगर कोई ज़रा-सा काँटा चुभो देता है तो तुम क्रोध से भभक उठते हो। जैसा तुम्हारा जीव है वैसा ही इसका है। जैसा तुम्हें पीटने पर दुःख होता है—वैसा ही इसे होता है, छोड़ दो इसे! बिचारे की जान बचाओ!"

मुसलमान भाई यह बात कब मानने वाले थे? उन्हें तो साँप को सताने में बड़ा आनन्द आरहा था। उनके कलुषित हृदय पर महासतीजी के उपदेश के छींटों का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उलटे क्रोध में आकर बड़बड़ाने लगे। बोले—"अगर ऐसी दयापली हो, तो ले जाओ इसे। यह अभी काट खाता है कि

नहीं, हम देख लेंगे।"

चरितनायिका का दिल दयार्द्र होगया। साँप के प्रति हृदय में बड़ी आत्मीयता जाग उठी। झट आपने अपनी झोली खोलकर कहा—'लाओ, इसमें छोड़ दो।'

मुसलमान बन्धुओं ने झोली में छोड़दिया। वह तुरन्त झोली में ऐसे बैठ गया, मानो उसे दयामाता की गोद मिली हो। आपने झोली इस ढंग से पकड़ ली कि सर्पदेव अन्दर कुछ फूंफाँद न कर सके। सब लोग देख कर चकित हो रहे थे। क्रूर भाइयों ने भी देखा—यह तो कोई देवी ही है। इनका दिल बड़ा रहमदिल है। आप वहाँ से सीधे जङ्गल की ओर साथियों सहित चल दीं।

सर्प का मुंह उन क्रूर मुसलमान भाइयों ने कुचल-सा दिया था अतः वह पात्र में सीधा-सा बैठा रहा कोई फूंफाँद नहीं की। उसने देखा कि यहाँ तो मेरी रक्षा की जारही है, बस वह शान्त होकर बैठा रहा।

सर्प जैसे छोटे प्राणियों में भी कितना विज्ञान होता है? कहते हैं, साँप बिना सताए किसी को नहीं मारता। आपके हृदय में सर्प देवता के प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं था। इसका प्रभाव साँप पर भी पड़ा। आपने जंगल में ऐसा एकान्त स्थान देखा, जहाँ लोगों का आवागमन अधिक नहीं था, वहाँ लेजाकर झोली खोल दी। सर्प पात्र का मुंह खुला देखकर सर-सर करता हुए निकल गया। उसने जाते समय एक बार आपकी ओर दृष्टि डाली, मानो वह आपको मूक आशीर्वाद दे रहा था, सर्प ने आपको कोई हानि नहीं पहुँचाई।

यह है सच्ची दयावृत्ति का नमूना! अहिंसक व्यक्ति के

३८

सच्ची-सहायिका का प्रत्युपकार

आवरा-चातुर्मास बड़ी शान्ति पूर्वक सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के बाद आपने मेवाड़ की ओर प्रयाण किया। छोटी सादड़ी पहुँची। वहाँ की धर्मिष्ठा बहिनों ने आपका बड़ा स्वागत किया। सेठ छगनलालजी गोदावत की मामाजी ने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर ४१ बकरों को अभयदान दिलाया। दूसरी बार सं० १९८६ में अपनी सुपुत्री के जन्म के अवसर पर १०१ बकरे अमरिये करवाये। कई बहनों ने त्याग-प्रत्याख्यान किये। वहाँ से आप चित्तौड़ पधारीं। चित्तौड़ में कई मूक पशुओं को जीवन-दान मिला। चित्तौड़ से कपासन में पदार्पण किया। वहाँ उस समय वयोवृद्ध श्री प्यारचन्दजी महाराज विराजित थे। उनकी सेवा का कुछ दिन लाभ उठाया। कपासन में ही उदयपुर-संघ के लोग आपको चातुर्मास की विनति करने आए। उदयपुर-संघ कई वर्षों से आपका चौमासा कराने को लालायित था। बड़ी दौड़धूप के बाद उन्हें स्वीकृति मिली। कपासन से विहार करके चरितनायिका मेवाड़ के छोटे छोटे गाँवों में भावुक हृदय ग्रामीणों को धर्म का अमृत-पान कराती हुई उदयपुर पहुँची। उदयपुर में ही वयोवृद्ध श्री चाँदमलजी म० का चातुर्मास था।

चातुर्मास क्या हुआ, एक तरह से दया का सागर-सा बन

गया था। उदयपुर का संघ बड़ा विशाल है। सारे चौमासे भर में कोई भी दिन खाली न जाता था, जिस दिन किसी भाई या बहन के दया या पौषध न हो। चातुर्मास में आपकी सांसारिक पक्ष की बहिन फूलकुँवरबाई दर्शन करने के लिये आई। फूलकुँवरबाई की ओर से सोजत चातुर्मास की विनति पहले से ही जारी थी। उस समय संयोग से अजमेर का चातुर्मास स्वीकार हो चुका था, अतः सोजत नहीं हुआ। इस समय फूलकुँवरबाई ने फिर भविष्य में सोजत चातुर्मास के लिए विनति की। आपने इतना ही कहा—"अवसर आने पर देखा जायगा, अभी मैं कुछ नहीं कह सकती।" इतनी सी बात के सुनने से फूलकुँवरबाई के मन में आशा की क्षीणरेखा प्रस्फुटित हो गई। उन्हें आशा बंध गई कि अब तो सोजत पधारेंगी ही। चातुर्मास में चरितनायिका की संक्षिप्त-वाणी सुनकर फूलकुँवरबाई को भी संसार के प्रपंचों से कुछ २ विरक्ति हो चली थी। मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता का सच्चा रहस्य फूलकुँवरबाई ने समझा। और चरितनायिका की दयावृत्ति का भी उनके दिल पर काफी असर पड़ा। फूलकुँवरबाई ने उसी दिन आपके सामने ही १६ बकरों के नाक में कड़ी पहना कर अमरिये किये। फूलकुँवरबाई अपने भगिनी प्रेम को भूली नहीं थीं। उसने चरितनायिका से गद्गद् होते हुए बड़े नम्र शब्दों में विनति की और मांगलिक-श्रवण कर उदयपुर से सोजत लौटी। उदयपुर चौमासे में साध्वियों में काफी तपस्याएँ हुई।

सं० १९८६ का चौमासा सानन्द व्यतीत हुआ। चातुर्मास के बाद चरितनायिका अपनी शिष्या-मण्डली सहित मेवाड़ और मारवाड़ के ग्रामों को धर्म-जल से हरा भरा करती हुई ब्यावर पधारीं। ब्यावर आने पर आपको पता लगा कि क्रान्तिकारी आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज जोधपुर चातुर्मास व्यतीत करके विहार करते हुए ब्यावर पधारने वाले हैं। आपके

मन में पुण्य श्लोक आचार्यश्री के दर्शन की उत्कण्ठा थी। पर साथ ही आपने सोचा कि आचार्यश्री के पधारने में तो अभी देर लगेगी, तब तक यहाँ रह कर क्या करूंगी ? आपने सुना था कि सोजत में वख्तावरमलजी स्याटिया प्रमुख श्रावक हैं। वे १०० के करीब थोकड़ों के जानकार हैं। मेघकुमारीजी साध्वीश्री के सांसारिक श्वसुर लगते हैं। उनसे भी कुछ थोकड़ों का ज्ञान हासिल कर लिया जायगा, और फूलकु वरबाई को भी दर्शन हो जायेंगे। एक पंथ दो काज, हो जायेंगे। ऐसा सोच कर दूसरे ही दिन ब्यावर से सोजत की ओर विहार कर दिया। सोजत-संघ आपका आगमन सुन कर हर्षित हो रहा। झुंड के झुंड नर नारी आपका स्वागत करने के लिए सामने पहुँचे। आपको पधारे देखकर सोजत-संघ ने सोचा—'हमारा अहोभाग्य है कि घर बैठे ही गंगा आ गई है।'

सोजत पधारने पर आपको मालूम पड़ा कि फूलकु वर बाई अस्वस्थ हैं। लोगों ने कहा—उन्हें आपके दर्शनों की बहुत अभिलाषा है, उन्हें दर्शन देकर प्यास मिटाइये। चरितनायिका को पता ही नहीं था कि फूलकु वरबाई बीमार हैं।

"जिसने मेरी जीवन दिशा पलटी है, जो मेरे सुख दुख में जन्म से लेकर दीक्षा तक सहायिका रही है, जिसने मेरा रुख जैनधर्म जैसे पवित्र-धर्म की ओर मोड़ा है, जिसने मुझे संयम की पगडंडी प्राप्त कराने में भरसक प्रयत्न किया है, उस भगिनी का उपकार मैं कैसे भूल सकती हूँ ? ऐसी भाग्यशालिनी बहिन के उपकार का बदला किस प्रकार चुकाया जा सकता है।" चरितनायिका के मन में रह-रह कर यह बात झुलती रही। फूलकु वर बाई को दर्शन देने के लिए आपके कदम बढ़ रहे थे, पर मन के कदम और ही कहीं पर पड़ते थे, मन में दूसरा ही संकल्प चल रहा था। मन में विचार हो रहा था—"फूलकु वरबाई ने अभी

उदयपुर आई तब भी, तथा और भी कई बार यह कहा था—"देखो, बहनमहाराज आप तो इस असार संसार के प्रपञ्च से निकल कर साधुत्व को अङ्गीकार करके परम उच्च पद—प्रवर्तिनी पद को प्राप्त कर चुकी हैं। पर मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि अभी तक संसार के प्रपञ्च में ही फँस रही हूँ। मैंने तो दूसरी बहनों को संसार से निकालने की सहायता दी, पर मैं स्वयं इस कीचड़ में पड़ी हूँ। आप जैसी महा भाग्यशालिनी बहन को मैंने संयम के मार्ग पर चढ़ाया, इसमें मैंने कोई विशिष्ट-कार्य नहीं किया है। मैंने तो अपना बहन का कर्त्तव्य निभाया है। अगर मैं कुछ भी सहायता न देती, तो भी आपकी आत्मा में ऐसी शक्ति थी कि आप स्वयं इस जजाल से निकल जातीं। आप यहीं फँसी न रहतीं। मैं तो निमित्त-मात्र बनी हूँ। परन्तु मेरी आपसे प्रार्थना है, इस बहिन को भी दया करके कुछ सहायता दें। मेरी आत्मा में जो अज्ञानान्धकार है, उसे मिटावें। मुझे परलोक के लिए कुछ न कुछ पाथेय पल्ले बँधावें।

बहन की यह पुकार बारबार आपके हृदय में गूँज रही थी। उनके अन्तिम वाक्य कुछ न 'कुछ पाथेय पल्ले बँधावें' बार बार कानों से टकरा रहे थे।

फूलकुँवरबाई का घर नजदीक आगया था। आपने ज्यों ही बहन के घर में प्रवेश किया, शय्या पर बैठी हुई रुग्ण बहन एकदम उठी और दर्शन करके बड़ी प्रसन्न हुई। बहन की आँखों से हर्षाश्रु टपक पड़े। दोनों बहनों का मिलन ऐसा मालूम होता था मानो गंगा और गंगोत्तरी नदियाँ मिली हों। गंगोत्तरी से ही गंगा निकली है, उसी तरह गृहस्थ-बहन के पास से ही आप निकली हैं और गंगा की तरह पवित्र संयम-जल से जगत् के अधर्मी जीवों को तारने वाली हैं। चरितनायिका ने फूलकुँवर

बाई से थोड़ी सी बातचीत की, कई त्याग व प्रत्याख्यान कराए और मांगलिक सुना कर रवाना होने लगीं। तभी समय फूल कुँवरबाई ने मानो किसी विस्मृत बात को याद करते हुए कहा— 'देखिये, बहन महाराज, मेरे जीवन का अब कोई भरोसा नहीं है। आज तो मैं आप से अच्छी तरह बातें कर रही हूँ, आपके दर्शन कर रही हूँ कल का क्या पता है ? अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे प्रतिदिन दर्शन दे दिया करें। आपको कष्ट तो होगा ही, पर मैं समझती हूँ आपके पवित्र-दर्शन को पाकर मैं भी कुछ सबल बन जाऊँगी।'

चरितनायिका को क्या पता था कि बहन के इस वाक्य में क्या रहस्य छिपा हुआ है ? बहन के ये शब्द भविष्य की ओर मूकसंकेत कर रहे थे। चरितनायिका ने फूलकुँवरबाई को आश्वासन देते हुए कहा— 'हाँ आपकी बात का मुझे बहुत ख्याल रहता है। अवसर मिला तो मैं अवश्य दर्शन देने आया करूँगी। आप किसी बात की चिन्ता न करें। आपने जो धर्म की बाड़ी सींची थी, जिस बेल को सींच कर बढ़ाया था, उसे आप फली-फूली देख रही हैं। आपने जो सभी सहायता दी है वह मेरे हृदय पट पर अमिट छाप डाले हुए है, भुलाई नहीं जा सकती। आप शान्ति रक्खें, मैं अब जारही हूँ।''

चरितनायिका यों कह कर उपाश्रय पधारीं। उधर फूल कुँवरबाई की तबियत दिनोंदिन बदतर होती जारही थी। रोग अपना उग्ररूप धारण कर चुका था। परिवार के सभी लोग फूलकुँवरबाई की सेवा शुश्रूषा में एकनिष्ठा से लगे हुए थे। फूल कुँवर बाई बड़ी भाग्यशालिनी थीं। अन्तिम समय में चरितना यिका का अनायास सोजत पर्दुपना कितने सुन्दर भाव का द्योतक है ? भाग्यशाली आत्मा को एक-से-एक सुन्दर अवसर

प्राप्त होते हैं जिसे पाकर वह अपने जीवन और मरण में अभीष्ट सफलता प्राप्त कर सकता है।

हाँ तो, चरितनायिका की सांसारिक बहन—फूलकुँवरबाई को यह सुनहरा अवसर मिला। आप प्रतिदिन दर्शन देने जातीं। छह दिन होगए थे। किसे मालूम था कि इतनी जल्दी ही यह भगिनी मिलन का दृश्य लुप्त हो जायगा ? छठे दिन अचानक ही चेहरे की आकृति बदल गई। मृत्यु के भावी लक्षण स्पष्ट-से दिख रहे थे। थोड़ी ही देर में चरितनायिका दर्शन देने पधारीं। फूल कुँवरबाई ने उसी समय अनशन (संथारा) कराने को कहा। चरितनायिका ने देखा अब इनकी इच्छा को रोकना व्यर्थ है। उसी समय संथारा करा दिया।

चरितनायिका ने संथारा करा कर फूलकुँवरबाई को संक्षिप्त उपदेश देना उचित समझा। आपने कहा—'देखो, बहन! अब बड़ी शान्ति रखने की आवश्यकता है। अब तुम्हें किसी भी प्रकार का भय या शोक नहीं होना चाहिए। मृत्यु का भय तो उसे होता है, जिसका जीवन पाप वासना में ही बीता हो, जिसने अपने जीवन में धर्म कमाई नहीं की हो। तुमने तो अपना जीवन धर्म के रंग में रंग लिया था। जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है। जो फूल खिलता है, वह अवश्य मुरझाता है। जो सूर्य उदय होता है, वह अवश्य अस्त होता है। जन्म लेकर, मरे नहीं, यह सर्वथा असम्भव है। यह घड़ी हर्गिज नहीं, टाली जा सकती। स्वर्ग हो, नरक हो, मनुष्य लोक हो या पशु पक्षी की दुनिया हो, सर्वत्र मृत्यु का अखण्ड साम्राज्य है। तुम्हें इसे एक महोत्सव समझना चाहिए। और अहोभाग्य समझना चाहिए कि ऐसी शुभ घड़ी तुम्हें अनशन करने को मिली है।"

चरितनायिका के शब्दों को फूलकुँवरबाई बड़े ध्यान से सुनती रहीं और हाथ जोड़ बैठी रहीं। चरितनायिका दर्शन देकर

सुधार और सत्प्रवृत्तियाँ

साधक जीवन की महत्ता अपने आपको पूज्य महापुरुषों का विश्वासपात्र बनाने में है। साधना की सफलता का रहस्य अपने जीवन को अधिकाधिक व्यापक रूप में विश्वस्त बनाने में है। साधना की सफलता के सिंहद्वार पर पहुँचने वाले व्यक्ति अपने महान् व्यक्तियों का विश्वास प्राप्त करते हैं, उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। यह सब कार्य सच्चा साधक ही कर सकता है। जिस साधक में दुर्बलता होगी वह ऐसा न बन सकेगा।

चरितनायिका के जीवन में प्रारम्भ से ही सच्चता रही है। उनका प्रामाणिक जीवन देखकर बड़े बड़े आचार्य दंग रह गये हैं। यही कारण है कि आपने पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज जैसे महान् सुधारक की भी विश्वासपात्र बन गई हैं। उन्हें भी आपके द्वारा सम्प्रदाय सञ्चालन, परिग्रनिष्ठा व उचित सर्वांग सुधार के कार्य में भाग लेने की ओर से विश्वास था। चरितनायिका ने सोजत से विहार कर दिया। इधर पूज्यश्री देहली से जोधपुर चौमासा व्यतीत करके ब्यावर पधार गये थे। आचार्यश्री के दर्शन पाकर चरितनायिका की प्रसन्नता का पार न रहा।

ब्यावर की जनता का क्या पूछना! उसके हृदय की उमंगों

हृदय में समाती नहीं थी। उत्साह की उत्ताल तरंगें जनता के मान सरोवर में हिलोरें ले रही थीं। इस का पार नहीं था। उसका कारण था—एक ओर साधु संघ के संचालक ममतामय पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का ब्यावर में पदार्पण। दूसरी ओर साध्वी-संघ की संचालिका धर्मनायिका श्रीमती प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी म० का पदार्पण। ७५ साधुओं, और ४० साध्वियों का यह समागम ऐसा जान पड़ता था मानो जैनधर्म मुनिवेष धारण करके सजीव हो रहा हो। चारों ओर साधु साध्वियाँ से ब्यावर नगर स्वत मा बन रहा था।

अजमेर में साधु सम्मेलन होने का निश्चय हो चुका था। आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज थोड़े ही दिन पहले सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर, और सम्मेलन के लिए अजमेर जाने का निर्णय करके पधारे थे। आचार्यश्री ने अपनी ओर से पाँच प्रतिनिधि सम्मेलन में साम्प्रदायिक विषयों पर विचार करने के लिये निर्वाचित किये थे। किन्तु मुनिराजों ने पूज्यश्री के बिना सम्मेलन में सम्मिलित होना उचित न समझा। पूज्यश्री ने मुनि राजों का आग्रह देखकर फरमाया— 'आप सबका मुझ पर पूर्ण विश्वास है,और सम्मेलन में सम्मिलित होने का आग्रह करते हैं तो फिर यह उचित होगा कि मैं अकेला ही सम्मेलन में जाऊँ।"

पूज्यश्री के इस कथन का सब साधुओं ने अनुमोदन किया। आचार्यश्री ने उसी समय श्रीमती रंगूजी म० की सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी (चरितनायिका) तथा मौजूदा सभी सतियों से इस विषय में परामर्श किया। पूज्यश्री ने कहा— 'अजमेर में जो साधु-सम्मेलन होने वाला है, उसमें साम्प्रदायिक नियमों व साधु साध्वियों के आचार-विचार के मतभेद को दूर करने के लिये शास्त्रीयढंग से विचार किया जायगा। और बहुमत से आवश्यक परिवर्तन, व सुधार भी किया जायगा। अगर उसमें

कोई ऐसा भी सुधार हो, जिससे अपने मान्य नियमों में ठेस पहुँचती हो तो वह भी बहुमत से स्वीकृत हो चुकने पर मान्य करना होगा। क्या आप सब साध्वियों को अपनी सम्प्रदाय की ओर से प्रतिनिधि रूप से निर्वाचित मेरे द्वारा किया जाने वाला सुधार मान्य होगा ?"

चरितनायिका ने अपने सम्प्रदाय की सभी साध्वियों की ओर से पूज्यश्री के इस विचार का समर्थन किया और वहीं पर एक प्रतिनिधि पत्र लिखा गया, उसमें उपस्थित सभी मुनिराजों के हस्ताक्षर के साथ-साथ चरितनायिका व उपस्थित साध्वियों ने हस्ताक्षर किये। यह पत्र सं० १९८९ का माघ शुक्ला ६ शनिवार को लिखा गया था।

इसके बाद चरितनायिका व आचार्यश्री दोनों में सम्मेलन तथा समाज सुधार सम्बन्धी बातें-चीतें हुई। चरितनायिका ने पूज्यश्री से पूछा—"अगर सम्मेलन में कभी साध्वियों के संबंध में विचार विमर्श करने की आवश्यकता हो तो हम भी अजमेर विहार करके पहुँच सकती हैं। आचार्यश्री ने कहा—"नहीं, वहाँ आप लोगों का कुछ काम नहीं है। आपकी ओर से मैं प्रतिनिधि निर्वाचित होकर जा रहा हूँ। वहाँ काफी भीड़ भड़क्का होगा, उसमें परस्पर संघट्ट वगैरह का दोष लगेगा। अतः वहाँ आपके पधारने की आवश्यकता नहीं है।"

चरितनायिका ने आचार्यश्री की बात को 'तथास्तु' कह कर शिरोधार्य किया। चरितनायिका ने कई बार पूज्यश्री से कई शास्त्रीय प्रश्न पूछे। उसका पूज्यश्री ने बड़े मार्मिक ढंग से समाधान किया। पूज्यश्री ने चरितनायिका का ज्ञानपिपासा और सेवा-भक्ति देख कर बड़ा संतोष प्रगट किया। वहाँ से पूज्यश्री अन्यत्र विहार कर गये।

चरितनायिका के ब्यावर निवास के समय अजमेर

निवासी मिश्रीमलजी लोढ़ा की भतीजी रसालबाई की अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण दीक्षा लेने की इच्छा जागृत हुई। वह चरितनायिका के चरण-कमलों में उपस्थित हुई। चरितनायिका इस परिवार से परिचित थी। अतः रसालबाई को योग्य पात्र समझकर अपने कुटुम्बियों सुसरालवालों से आज्ञा प्राप्त करने के लिये कहा। उन्होंने रसालबाई को कुछ प्रयत्न के बाद आज्ञापत्र लिख दिया। दीक्षा के लिए चैत्र कृष्णा ३ का मुहूर्त निकला। रसालबाई के सुसरालवालों ने फाल्गुन मास में ब्यावर आकर अपने यहाँ—किशनगढ़ में दीक्षा होने के लिए विनति की। चरितनायिका उनकी विनति मान कर अपनी शिष्यामण्डली सहित किशनगढ़ पधारीं। सं० १९९० चैत्र कृ० ३ को बड़े समारोह के साथ दीक्षा विधि सम्पन्न हुई।

किशनगढ़ से अपनी नवदीक्षिता शिष्या को साथ में लेकर विजयनगर, गुलाबपुरा आदि क्षेत्रों में लोकोत्तर-गंगा बहाती हुई चरितनायिका गंगापुर पहुँची। गंगापुर में आपकी वाणी रूप गंगा से श्रोताओं का कलुषित हृदय भी स्वच्छ होरहा था। सभी लोग आपकी अमृतवाणी का पान करने के लिये आते थे। इधर अजमेर साधु-सम्मेलन की कारवाई पूर्ण होने के पश्चात् आचार्यश्री जवाहरलालजी म० मारवाड़ के बगड़ी, मुसालिया आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए ठाणा २२ से गंगापुर पधार गए। पूज्यश्री के पधारने से जनता को दुगुना लाभ मिल रहा था। यहीं पर रतलाम संघ ने पूज्यश्री व चरितनायिका के चातुर्मास के लिए विनति-पत्र भेजा। पूज्यश्री ने महासतीजी म० को चातुर्मास करने के लिए फरमाया। उसी विनति पत्र में रतलाम-निवासी सेठ वर्धमानजी पितलिया की धर्मपत्नी श्रीमती आनन्दकुँवरबाई ने भी रतलाम चातुर्मास होने से बहनों में विशेष धर्म-जागृति होने का लाभ बतलाया।

चरितनायिका को रतलाम चातुर्मास करना उचित प्रतीत हुआ। अतः चौमासे के लिये रतलाम संघ को स्वीकृति देदी। सब के मन में हर्ष का पार न रहा। सब लोग आपके रतलाम पदार्पण करने की प्रतीक्षा करने लगे। आपने गंगापुर में कई दिन पूज्य श्री की सेवा का लाभ उठा कर मेवाड़ के धर्म प्रिय क्षेत्रों में भ्रमण करना शुरू कर दिया। वहाँ से नीमच, मन्दसौर, जावरा आदि प्रसिद्ध क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए आषाढ़ शु० ११ का रतलाम में पदार्पण किया। रतलाम संघ ने आपका भव्य स्वागत किया। जनता बरसाती नदी की तरह उमड़ पड़ी। सभी लोगों के दिल में आनन्द के फौवारे छूट रहे थे।

चातुर्मास में आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन आपने 'श्रेणिक चरित्र' बांचना शुरू किया। उसी दिन आपकी तबियत अचानक ही बिगड़ गई। आपको ठंड लग कर बुखार आने लगा, लेकिन आपने इस मामूली ज्वर की कोई परवाह नहीं की। समझा, ऐसे ही विचारा भूला-भटका आगया होगा। अपने आप मिट जायगा। पर वह क्यों मिटने लगा? उसे तो लाभ देने के लिये आपका सुकोमल शरीर मिला था। आपने 'श्रेणिक चरित्र' प्रतिदिन के क्रमानुसार चलाए ही रक्खा, बन्द न किया। दो ही चार दिनों में बुखार ने अपना उग्र रूप धारण कर लिया तब आपको विवश होकर 'श्रेणिक चरित्र' बन्द करना ही पड़ा। बुखार के साथ साथ एक दिन एक नई आफत और खड़ी हो गई। आपके शरीर में पसीना बहुत होने लगा और श्वास का दौरा भी बड़े वेग से शुरू होगया। उसके कारण आपके चित्त में घबराहट पड़ने लगी फिर भी आप इतनी साहसिन और सहनशीला निकलीं कि उफ तक न किया। 'रतलाम निवासिनी सेठानीजी श्री आनन्दकुँवरबाई को आपकी इस बीमारी पता चला, तो उन्होंने तत्काल ही सहजी व

बालचन्दजी श्रीश्रीमाल को सूचना दिलवाई। वे लोग आपकी सेवा में आकर खड़े होगए, पर उन्हें पता नहीं चला कि आपकी तबियत कब बिगड़ गई थी। उन्होंने कहा—"आपने किसी भाई द्वारा अपनी तबियत की गड़बड़ी की हम सूचना तक न दिलवाई। सूचना दिलवाती तो उसी समय हम किसी न किसी उपचार का प्रयत्न करते।" आखिर आपको साधारण-सी घरेलू दवा दी गई, जिससे तबियत ठीक होगई।

थोड़े दिनों बाद फिर यह मेहमान आपसे मिलन आए। अबकी बार तो इसने बहुत जोर से हमला किया और बुखार आकर चलटा मोतीझरा बन गया। काफी उपचार किया गया, फिर भी कोई फायदा न हुआ। सेठ वर्द्धमानजी ने अपने विश्वस्त वैद्य श्रीरामविलासजी को बुलाकर आपके रोग का इतिहास बताया। उन्होंने रोग का निदान करके अपनी दवा का प्रयोग करना शुरू किया। वे सिर्फ चाकू के अग्रभाग पर आए उतनी-सी दवा देते थे। उस दवा से आपके शरीर में शान्ति होने लगी। चार मास ही एक जगह बीमारी में पड़े रहने के कारण शरीर की शक्ति क्षीण हो गई थी। अत चातुर्मास उठते ही विहार होना अशक्य था।

इधर रतलाम में ही श्रीमान चाँदमलजी फिरोदिया की सुपुत्री श्री सुगुनकुमारीजी को ससार से विरक्ति हो गई थी। चरितनायिका रतलाम चातुर्मास में बहुत पहले एक बार शेष काल में रतलाम पधारी थीं, उस समय सुगुनकुमारीजी ने आप की सेवा का लाभ उठाया था और साथ ही आपके वैराग्योत्पादक उपदेशों को भी बड़ी भावुकता से सुना करती थीं। सुगुनकुमारीजी की माता बड़ी धर्मशीला बहन थीं, पिताजी भी काफी धर्मनिष्ठ थे। माता-पिता के संस्कार संतान में आना स्वाभाविक ही है। माता पिता सदाचारी और धर्मात्मा हों तो संतति में धर्म

के संस्कार पड़े बिना नहीं रहते। उस समय रतलाम-विराजित श्रीमती प्रवर्तिनी केसरकुमारीजी म० ने भी चरितनायिका को सुगुनकुमारीजी के विषय में यह सूचित किया कि—"आप इस बाई को कुछ उपदेश प्रदान कीजिये। यह होनहार लगती है। इसकी सौम्य आकृति व सदाचारनिष्ठा देखकर मुझे ऐसा लगता है कि यह संयम के मार्ग का ग्रहण करके उसका भलीभाँति निर्वाह करेगी।"

ऐसा ही हुआ। प्रवर्तिनी केसरकुमारीजी की वाणी सत्य सिद्ध हुई। चरितनायिका की उपदेश-वृष्टि होते ही सुगुनकुमारीजी ने चातक की तरह वैराग्यरस का पान किया और इनका विचार दीक्षा ग्रहण कर मानव जीवन सफल बनाने का हो गया। अतः सुगुनकुमारीजी को चरितनायिका के योग से प्रथम से ही धार्मिक संस्कार के कारण वैराग्यांकुर पैदा हो गया।

चरितनायिका का विहार वहाँ से अन्यत्र हो गया था, उस साल चातुर्मास उदयपुर हुआ। सुगुनकुमारीजी अपनी वैराग्यलता को दिनों दिन धर्म-जल से सींच कर बढ़ा रही थी, और आज्ञा की प्रतीक्षा में थीं। उन्होंने उदयपुर चातुर्मास में चरितनायिका के दर्शन किये। चरितनायिका ने पूछा कहो, तुम्हारा क्या विचार है?

सुगुनकुमारीजी—'मेरा तो अब एक ही विचार है, वह यह कि दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना।'

चरितनायिका—'देखो, खूब सोच समझ कर काम करना यह मार्ग वीरों का है, कायरों के लिए नहीं है। और तुम्हारी आज्ञा भी अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। दीक्षा होगी कैसे?'

सुगुनकुमारीजी ने आज्ञा के लिए प्रयत्न करने का कहा, और विश्वास दिलाया कि मेरी भावना जरूर सफल होगी।

वहाँ से रतलाम आने के बाद सुगुनकुमारीजी ने अपने

पिताजी के सामने दीक्षा लेने का विचार प्रगट किया। पिता बड़े सरल हैं। आचार्यश्री के परमभक्त हैं।

एकाएक तीनों पुत्रों के बीच इकलौती पुत्री का दीक्षा लेने का संकल्प सुन कर उनको कुछ धक्का सा पहुँचा। उन्होंने समझाया—"बेटी, अभी तेरी उम्र ही कितनी है? कोमल शरीर है। संयम की कठोर व्रतधारा का सहन करना बड़ा कठिन है। बिना गहरा सोच विचार किये ऐसा करना उचित नहीं है।"

सुगुनकुमारीजी—पिताजी, मैंने खूब सोच लिया है। आप तो आज्ञा दीजिए। पिताजी— 'अच्छा, तेरी प्रबल इच्छा हुई तो मैं अन्तराय नहीं दूंगा, पर तू पहले पञ्जाब वगैरह में जाकर साध्वियों की जाँच पड़ताल तो कर ले। तुझे जिनके पास अपना जीवन बिताना है, उनकी प्रकृति, आचरण आदि से परिचित होना सब से पहले आवश्यक है।"

आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज उस समय देहली चातुर्मास व्यतीत करने पधारे हुए थे। अत सुगुनकुमारीजी देहली में आचार्यश्री के दर्शन करके जालन्धर पहुँची। वहाँ पर साध्वीश्री पार्वतीजी आदि महासतियों के दर्शन किये। एक-दो दिन रहीं। वहाँ इनका मन नहीं लगा। अत वहाँ से सीधे रतलाम पहुँची और पिताजी को सारा वृत्तान्त सुनाया। पिताजी आज्ञा देने में आना-कानी-सी करने लगे तो सुगुनकुमारीजी ने सेठ वर्द्धमानजी तथा अपने काकाजी खेमचन्दजी को पिताजी से आज्ञा दिलाने के लिए कहा।

इसी बीच गंगापुर में ही चरितनायिका का चातुर्मास रतलाम मंजूर हो गया था। करीब डेढ़ साल तक सुगुनकुमारी जी को आज्ञा-ग्रहण करने के लिये रुकना पड़ा। इतने लम्बे समय में आपने रतलाम के धर्मिष्ठ श्रावक श्रीबालचन्दजी से कई शास्त्रों का शब्दार्थ सहित अध्ययन कर लिया और हिन्दी भाषा

क ज्ञान में भी प्रगति की। उस समय सुगुनकुमारीजी १६ वें वर्ष में प्रवेश कर रही थीं।

चरित्रनायिका के रतलाम-चातुर्मास पधारने पर सेठजी व प्रेमचन्दजी दोनों ने वैरागिन सुगुनकुमारीजी के पिताजी से आज्ञा देने की प्रेरणा की। और विश्वास पूर्वक कहा—"भाई साहब, सुगुन दीक्षा लेना चाहती है। हमने इसे बहुत समझा बुझाकर देख लिया। इसके वैराग्य की प्रबलधारा को अब रोका, नहीं जा सकता। अतः अब आपको इसे आज्ञा दे देनी चाहिये। अब रोकना व्यर्थ है। रही आपकी सेवा की बात वह हम सम्भाल लेंगे। आप निश्चिंत रहें।"

यह कहने पर भी चाँदमलजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। इधर चातुर्मास में ही वैरागिन सुगुनकुमारीजी के श्वसुर श्री हजारी मलजी मुणोत को समझा बुझा कर उनसे भी आज्ञा पत्र लिखवा लिया। दीक्षा का मुहूर्त भी कार्तिक शु० पूर्णिमा का निकला।

चरित्रनायिका का शरीर काफी स्वस्थ हो चुका था, अतः आप सब साध्वियों को लेकर धीरे-धीरे दीक्षा स्थल पर पहुँच गई। उस समय रतलाम में भद्र हृदय मुनि श्री खूबचन्दजी म० आदि मुनिगण भी विराजे हुए थे। वे भी नियत-समय पर दीक्षा स्थल पर पधार गए। ठीक समय वैरागिन सुगुनकुमारीजी भी आ गई थीं। अतः सं० १९९० कार्तिक शु० ५ के दिन लगभग २-२॥ बजे शुभ समय में मुनिश्री खूबचन्दजी म० के कर कमलों द्वारा दीक्षा विधि सम्पन्न हुई। चरित्रनायिका का रतलाम चातुर्मास सफल हुआ। उन्हें आज रतलाम संघ की ओर से शिष्या रूप भिक्षा मिली है, वह भी योग्य शिष्या, पढ़ी लिखी और शास्त्रज्ञा सुगुनकुमारीजी आर्या। आज साध्वी-समाज में आप चमक रही हैं। समाज को आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

दीक्षा होने के बाद चरित्रनायिका, नवदीक्षिता आदि

साध्वियों के सहित 'सेठजी की सराय' में पधार गईं। वहाँ से आप रोज करीब २ मील तक साध्वियों को लेकर घूमने जातीं। इस तरह घूमने से आपका शारीरिक स्वास्थ्य काफी सुधर गया। चातुर्मास के बाद एक मास कमजोरी दूर होने में लग ही गया।

रतलाम चातुर्मास में रत्नत्रय की शानदार आराधना हुई। चार ही महीने तपस्या का ठाठ लग गया था। साध्वियों में भी निम्न लिखित तपस्याएँ हुईं —

साध्वीश्री मेहताबकुमारीजी–८ उप० तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री मैनाकुमारीजी–८ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी–५ उप० तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री राजकुमारीजी–८ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री वालबाईजी–५ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।

चातुर्मास में रतलाम संघ के लोगों ने बड़ी सेवा की। श्रीसेठ वर्द्धमानजी तो चरितनायिका से अकसर कहा करते थे— "आप मुझ से कुछ भी न बोलें, न व्याख्यान फरमावें, तो भी आपकी शान्त मुखमुद्रा देखते ही मेरा चित्त प्रसन्न हो उठता है। कोई भी क्रोध से उत्तप्त व्यक्ति यदि आपके चेहरे को देख लेता है, तो उसके मन पर शान्ति छा जाती है। आपकी प्रसन्नता और शान्ति का प्रभाव ही ऐसा है।"

रतलाम में लगभग एक मास तक 'सेठजी की सराय' में ठहर कर आपने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। वहाँ से धूवास, मामली आदि ग्रामों को पावन करती हुई आप जावरा पधार गईं।

जावरा में आपको जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की ओर से सूचना मिली कि अजमेर मुनि-सम्मेलन में पण्डितवर्य मुनिश्री गणेशलालजी म० को फाल्गुन शु० १५ से पहले-पहले युवाचार्य-पद प्रदान करने का निश्चय हुआ है। युवा

क ज्ञान में भी प्रगति की। उस समय सुगुनकुमारीजी १६ वें वर्ष में प्रवेश कर रही थीं।

प्रवर्तिनी के रतलाम-चातुर्मास पधारने पर सेठजी व प्रेमचन्दजी दोनों ने वैरागिन सुगुनकुमारीजी के पिताजी स आज्ञा देने की प्रेरणा की। और विश्वास पूर्वक कहा—"भाई साहब, सुगुन दीक्षा लेना चाहती है। हमने इसे बहुत समझा बुझाकर देख लिया। इसके वैराग्य की प्रबलधारा को अब रोका, नहीं जा सकता। अतः अब आपको इसे आज्ञा दे देनी चाहिये। अब रोकना व्यर्थ है। रही आपकी सेवा की बात वह हम सम्भाल लेंगे। आप निश्चित रहें।"

यह कहने पर भी चाँदमलजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। इधर चातुर्मास में ही वैरागिन सुगुनकुमारीजी के श्वसुर श्री हजारी मलजी मुणोत को समझा बुझा कर उनसे भी आज्ञा पत्र लिखवा लिया। दीक्षा का मुहूर्त भी कार्तिक शु० पूर्णिमा का निकला।

प्रवर्तिनी का शरीर काफी स्वस्थ हो चुका था, अतः आप सब साध्वियों को लेकर धीरे धीरे दीक्षा-स्थल पर पहुँच गई। उस समय रतलाम में मद्र हृदय मुनि श्री सूरजचन्दजी म० आदि मुनिगण भी विराजे हुए थे। वे भी नियत समय पर दीक्षा स्थल पर पधार गए। ठीक समय वैरागिन सुगुनकुमारीजी भी आ गई थीं। अतः सं० १९९० कार्तिक शु० ५ के दिन लगभग ७-३।। बजे शुभ समय में मुनिश्री सूरजचन्दजी म० के कर कमलों द्वारा दीक्षा विधि सम्पन्न हुई। प्रवर्तिनी का रतलाम चातु र्मास सफल हुआ। उन्हें आज रतलाम संघ की ओर से शिष्या रूप भिक्षा मिली है, वह भी योग्य शिष्या, पढ़ी-लिखी और शास्त्रज्ञा सुगुनकुमारीजी आर्या। आज साध्वी-समाज में आप चमक उठी हैं। समाज को आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

दीक्षा होने के बाद प्रवर्तिनी, नव-दीक्षिता आदि

साध्वियों के सहित 'सेठजी की सराय' में पधार गईं। वहाँ से आप रोज करीब २ मील तक साध्वियों को लेकर घूमने जातीं। इस तरह घूमने से आपका शारीरिक स्वास्थ्य काफी सुधर गया। चातुर्मास के बाद एक मास कमजोरी दूर होने में लग ही गया।

रतलाम चातुर्मास में रत्नत्रय की शानदार आराधना हुई। चार ही महीने तपस्या का ठाठ लग गया था। साध्वियों में भी निम्न लिखित तपस्याएँ हुईं —

साध्वीश्री मेहताबकुमारीजी—८ उप० तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री मैनाकुमारीजी—८ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी-५ उप० तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री राजकुमारीजी—८ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।
साध्वीश्री दाखबाईजी—५ उपवास तथा दो मास एकांतर तप।

चातुर्मास में रतलाम संघ के लोगों ने बड़ी सेवा की। श्रीसेठ वर्द्धमानजी तो चरितनायिका से अकसर कहा करते थे— "आप मुझ से कुछ भी न बोलें, न व्याख्यान फरमावें, तो भी आपकी शान्त मुखमुद्रा देखते ही मेरा चित्त प्रसन्न हो उठता है। कोई भी क्रोध से उत्तप्त व्यक्ति यदि आपके चेहरे को देख लेता है, तो उसके मन पर शान्ति छा जाती है। आपकी प्रसन्नता और शान्ति का प्रभाव ही ऐसा है।"

रतलाम में लगभग एक मास तक 'सेठजी की सराय' में ठहर कर आपने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। वहाँ से धूलास, नामली आदि ग्रामों को पावन करती हुई आप जावरा पधार गईं।

जावरा में आपको जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की ओर से सूचना मिली कि अजमेर मुनि-सम्मेलन में पण्डितवर्य मुनिश्री गणेशलालजी म० को फाल्गुन शु० १५ से पहले-पहले युवाचार्य-पद प्रदान करने का निश्चय हुआ है। युवा

दिया—हाँ, एक वृ द्धा (साध्वी) थी तो सही, वह वृक्ष नीचे सी हुई पड़ी थी।

यह बात सुनते ही सतियाँ एकदम घबराने लगीं और शीघ्रत कदम उठाकर चरित्रनायिका के पास आई। उन्होंने आपको आराम में देखा, तब जाकर जी में जी आया। अपने साथ जो धोवन पानी लाई थीं वह पिलाया। चरित्रनायिका के चित्त में अब काफी शान्ति होगई। वहाँ से चल कर आपने आवद्-शहर में प्रवेश किया।

उसी रोज़ पूज्य श्री अपनी शिष्य-मण्डली सहित पधार चुके थे। आते ही चरित्रनायिका ने पूज्यश्री व सभी सन्तों के दर्शन किये। पूज्यश्री को चरित्रनायिका के आगमन में विलम्ब होने का कारण साध्वियों से मालूम पड़ा। उन्होंने अफसोस प्रगट करते हुए कहा— 'आज तो इन भाग्यशालिनी महासतीजी को काफी कष्ट पड़ा। पिपासा-परिषह भी सहा।" चरित्रनायिका ने कहा—आपकी कृपा थी, इसलिये दर्शन होगए। कष्ट तो जीवन में कितनी ही बार आते हैं, उन्हें सहने में ही साधु जीवन की महत्ता है।

पूज्यश्री ने फरमाया—"आपको इतना कष्ट पड़ा, यह सुन कर बड़ा खेद होता है। आपने हमें किसी के द्वारा सूचना भी करा दी होती तो संत धोवण लेकर पहुँच जाते। यह तो महानिर्जरा का काम था। ऐसे विकट प्रसंग पर सेवा लेने में कोई हर्ज नहीं है। भविष्य में भी ऐसा प्रसंग आने पर आप कह लाने में गलती न करना।"

चरित्रनायिका—"जी, आपका फरमाना यथार्थ है। आयन्दा ध्यान रखूँगी।"

पूज्य श्री के दर्शन करके आप स्थान पर पधार गई। आवद में उस समय १० सन्त व २५ साध्वियाँ होगई थीं।

आज युवाचार्य-पद प्रदान दिवस है। लोगों का तांता-सा लग रहा है। दर्शनार्थी श्रावक करीब ७००० की संख्या में, एक विशाल मैदान में जहाँ प्रतिदिन पूज्यश्री का व्याख्यान होता था, एकत्रित हो गए हैं। श्रावक श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं है। समय ११ बजे से १ बजे तक का नियत किया गया। पद-प्रदान के लिए प्रातःकाल एक जुलूस निकाला गया। १०॥ बजे पूज्यश्री तथा सभी सन्त-सतियाँ युवाचार्य श्री के साथ पधारे। मंगलाचरण के बाद पूज्यश्री ने व्याख्यान प्रारम्भ किया। पूज्यश्री के व्याख्यान समाप्त होते ही मुनिश्री बड़े चाँदमलजी महाराज, मुनिश्री हरख चन्दजी महाराज, बड़े पन्नालालजी म० ने पूज्यश्री के व्याख्यान और युवाचार्य-पद देने का समर्थन किया। तदनन्तर प्रवर्तिनीश्री आनन्दकुमारीजी म० तथा प्रवर्तिनीश्री केशरकुमारीजी म० ने भी उक्त बात का अनुमोदन किया।

उसके बाद बाहर से आए हुए सन्देश, तथा शुभकामनाएँ पढ़ी गईं। तदनन्तर विभिन्न श्रीसंघों के प्रधान पुरुषों की ओर से युवाचार्य-पद प्रदान करने का समर्थन किया गया।

चतुर्विध संघ का अनुमोदन हो जाने पर पूज्यश्री ने युवाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज को अपनी चादर उतार कर ओढ़ा दी। सभी उपस्थित सन्तों ने चादर के पल्ले पकड़ कर अपने सहयोग का प्रदर्शन किया।

इसके बाद पूज्यश्री ने छोटा-सा प्रवचन संघ को लक्ष्य करते हुए दिया। प्रवचन समाप्त होने पर युवाचार्य श्री ने अपना वक्तव्य दिया।

इसके बाद कई सन्तों व साध्वियों ने पूज्यश्री व युवाचार्य श्री की स्तुतियाँ गाईं। विभिन्न उद्गार निकाले और धन्यवाद के साथ तीन बजे समारोह सम्पन्न किया गया।

कुछ दिनों बाद पूज्यश्री ने ठाणा १२ से मेवाड़ की ओर

विहार किया। प्रवर्तिनीजी ने वहाँ से छोटी-सादड़ी (मेवाड़) की ओर विहार किया। वहाँ वयोवृद्धा महासती श्रीकृष्णकुँवरजी म० विराजी हुई थीं। वहाँ कई दिन रह कर सेवा की।

वहाँ से क्रमशः मालवा के देशों में विचरण करती हुई चरितनायिका जावरा पधारीं। जावरा-संघ ने अपने यहाँ उपकार की अधिकता बतला कर चातुर्मास के लिए विनति की। आपने अवसर देखकर स्वीकृति दे दी। और सं० १९९१ का चातुर्मास जावरा में आनन्द समाप्त हुआ। चातुर्मास में तपस्या और दया का ठाठ लगा रहा। साध्वियों ने भी तपश्चरण करके जावरा को उथा-वाली पृथ्वियों में, धरा मेरुभूमि साबित कर दिखाई। साध्वियों में निम्नलिखित तपस्याएँ हुईं —

श्रीमती प्रवर्तिनीजी म०-६ का थोक, तेला, बेला तथा १ मास तक एकान्तर तप।

साध्वीश्री सेव कुमारीजी-८ का थोक। दो मास एकांतर तप।

साध्वीश्री महताबकुमारीजी-५ का थोक। दो मास एकांतर तप।

साध्वीश्री दाखबाईजी-६ का थोक। दो मास एकांतर तप।

नवदीक्षिता साध्वीश्री सुगुणकुमारीजी-५ का थोक। और भी कई फुटकर तपस्याएँ हुई।

जावरा चातुर्मास में चरितनायिका के 'संसार की अनित्यता,' बहनों का सुधार, क्षमा, दया, तथा साधु-जीवन आदि विषयों पर बड़े रोचक और मार्मिक व्याख्यान होते थे। इसी चातुर्मास में खाचरौद निवासी श्रीमान् ....जी मेहता की सुपुत्री श्रीमती गुलाबकुमारीजी आपके दर्शनार्थ आई। गुलाबकुमारीजी की माता कस्तूरबाई बड़ी धर्मपरायणा और संस्कारित आत्मा थीं। माताजी के पवित्र संस्कारों के कारण गुलाबकुमारीजी को संसार से वैराग्य पैदा हो गया था। गुलाबकुमारीजी का ससुराल खाचरौद में था। आपका विवाह श्रीयुत

गुलाबचन्दजी मांडोत के सुपुत्र श्री चम्पालालजी के साथ हुआ। दुर्भाग्य से विवाह होने के तीन ही महीने बाद आपके पतिदेव अचानक ही हैजे की बीमारी से चल बसे थे। वैराग्य का निमित्त सस्कारित प्राणी को मिलना होता है तो कहीं से भी मिल जाता है। गुलाबकुमारीजी ने ससार की अनित्यता समझी। इनकी दीक्षा लेने की आन्तरिक अभिलाषा होने पर इनके बहनोई जावरा निवासी श्री गेन्दालालजी नाहर इन्हें चरितनायिका के पास लाए। यहाँ पर वैराग्य-वृक्ष को बढ़ने में अधिकाधिक रस मिलता गया, और गुलाबकुमारीजी के परिणाम चरितनायिका के पास ही दीक्षा लेने के दृढ़ हो गए।

भाग्यशाली आत्मा हर कहीं अपना चमत्कार दिखाती है। चरितनायिका बड़ी भाग्यशालिनी थीं अत: गुलाबकुमारीजी को अपने व्यक्तित्व और प्रेम की शक्ति से आकर्षित कर लिया।

जावरा चातुर्मास सानन्द व्यतीत होने पर चरितनायिका ने वहाँ से खाचरोद की ओर विहार किया। यहाँ पर करीब २ मास तक आपका निवास रहा। वैरागिन गुलाबकुमारीजी ने यहाँ भी सत्संग का लाभ उठाया। ज्ञान ध्यान में वृद्धि की। दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने की प्रतीक्षा में थीं। आज्ञा शीघ्र न होने के कारण रुकना पड़ा। खाचरोद में भी धर्म ध्यान का ठाठ अच्छा रहा। यहाँ से आसपास के ग्रामों में धर्म-देशना करती हुई चरितनायिका फाल्गुन शु० १५ को रतलाम पधारीं। इधर आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज होली के दूसरे दिन जावरा से विहार करके चैत्र कृष्णा ५ को ठाणा १३ से रतलाम पधारे। पूज्यश्री के साथ युवाचार्यश्री, हरखचन्दजी म० आदि सन्त थे। चरितनायिका ने उनके दर्शन कर नेत्र पवित्र किये, और बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।

रतलाम-श्रीसंघ में साधु और साध्वियों को देखकर अपूर्व

उल्लास छारहा था। इधर चैत्र शु० ७ को 'हितेच्छु श्रावक मंडल' की बैठक थी। उसमें कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास होने वाले थे। इधर दो वैरागिनें श्रीमती प्रवर्तिनीजी म० (चरितनायिका) के पास दीक्षा लेने के लिए तैयार थीं। वैरागिनों का नाम था—झमकुबाईजी और सम्पतकुमारीजी।

स्व० पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का जब उदयपुर में चातुर्मास था, उस समय झमकुबाई और उनके पति श्रीवल्लभजी मुणोत दर्शनार्थ आए थे। पूज्यश्री के हृदय को हिला देने वाले व्याख्यान सुन कर झमकुबाई का चित्त संसार के रंगमंच से छोड़ कर संयम के क्रीड़ास्थल में प्रवेश करने का होगया। तीस, पतीस के लगभग उम्र थी। घर में सभी सुख साधन उपलब्ध थे, फिर भी इन सुखों को क्षणिक समझ कर छोड़ने की भावना हो गई। बड़ी कठिनता से पति को समझा बुझा कर उनसे अनुमति प्राप्त की और चरितनायिका के चरणों में दीक्षा लेने को तैयार हुई।

इसी तरह श्री सम्पतकुमारीजी को भी संसार से अपने माता पिता के संस्कारों के कारण वैराग्य पैदा होगया। आप रतलाम निवासी श्रीमान् रिखबचन्दजी शिशोदिया की सुपुत्री हैं। आपकी माता श्री गुलाबबाईजी बड़ी धर्मशीला और सात्विक प्रकृति की महिला हैं। आप पहले रतलाम में स्थानकवासी जैन कन्याओं को धार्मिक शिक्षा देती थीं। आजकल इन्दौर में अध्यापिका हैं। श्रीमती गुलाबबाईजी कुमारीअवस्था में महासतीजी म० के पास धार्मिक अध्ययन करती थीं। उस समय एक बार दीक्षा लेने के परिणाम जागृत होगए थे, पर किन्हीं कारणों से वह मनोरथ सफल न हुआ। विवाह होगया। अब आपकी कन्या—सम्पतकुमारीजी में वे धार्मिक संस्कार उद्बुद्ध होगए। सम्पतकुमारीजी अपनी माता के साथ प्रतिदिन सामायिक,

उक्त दोनों वैरागिनों की दीक्षा का मुहूर्त चैत्र शुक्ला १ सं० १९९२ था। दीक्षा सज्जन बाग के विशाल मैदान में होने वाली थी। आचार्यश्री जवाहरलालजी म०, युवाचार्यश्री गणेशीलालजी म० व संघ दीक्षा के समय पधारे। पूज्यश्री ने दीक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया, क्योंकि उन्होंने वैरागिन राजकुंवाई के पति श्री लख्तमलजी से पहले यह कह दिया था कि अगर तुम इस दीक्षा में आकर सम्मिलित होओगे तो मैं दीक्षा दूंगा, नहीं तो नहीं। लख्तमलजी का दिल दीक्षा में आने के लिए कमजोर था उन्हें दिलगिरी हो आई। अतः पूज्यश्री के आदेश से युवाचार्य श्री ने चतुर्विध-संघ के समक्ष उक्त दोनों वैरागिनों—राजकुंवार और सम्पतकुमारीजी को 'करेमि भंते !' का पाठ उच्चारण करके दीक्षा दी और पश्चात् श्री परिवनायिका के निश्राय उन्हें किया। परिवनायिका ने दोनों नवदीक्षिताओं का लुंचन किया, और साध्वीमंडली सहित अपने स्थान पर पधार गई। साध्वीश्री सम्पतकुमारीजी बड़ी सुशीला, सेवाभाविनी और विद्याभिलाषिणी हैं।

वहाँ से पूज्यश्री मुनि-मण्डली सहित थांदला पधारे। १६ वर्ष बाद यहाँ पूज्यश्री का पदार्पण हुआ था, अतः जनता में अपूर्व उत्साह था। वैरागिन श्रीगुलाबकुमारीजी की दीक्षा होने वाली थी। उनकी आज्ञा के लिये पूज्यश्री ने गेन्दालालजी नाहर तथा उनके ससुरालवालों को काफी समझाया। पश्चात् उन्होंने आज्ञा पत्र लिख दिया। तब थांदला श्रीसंघ की ओर से सेठ हीरालालजी मारोठ्या वगैरह सज्जन परिवनायिका की सेवा में रतलाम पहुँचे और अपने यहाँ पधार कर वैरागिन को दीक्षा देने की प्रार्थना की। परिवनायिका वहाँ से विहार करके थांदला पहुँची।

दीक्षा का मुहूर्त वैशाख कृष्णा ६, सं० १९९१ था। दीक्षा

शहर के एक ओर खुले मैदान में होने वाली थी। नियत समय पूज्यश्री, युवाचार्यश्री व सभी सन्त तथा प्रवर्तिनीजी आदि साध्वियाँ दीक्षा-स्थल पर पधार गई। दीक्षास्थल प्रेक्षक लोगों से ठसाठस भर गया था। पूज्यश्री के द्वारा दीक्षाविधि सम्पन्न हुई। गुलाबकुमारीजी आर्या ने चरित्रनायिका जैसी वैराग्यमूर्ति गुरुनी को पाकर लगभग १६ वर्ष की उम्र में अपने आपको समर्पित कर दिया। आप अध्ययनशीला, सेवाभाविनी और होनहार साध्वी हैं।

पूज्यश्री का विहार यहाँ से महागढ़ की ओर होगया, क्योंकि वहाँ श्री रतनलालजी चौराणी की दीक्षा वैशाख शु० ७ को सम्पन्न होने वाली थी। चरित्रनायिका साध्वी-मण्डली सहित जावरा पधारीं। जावरा में नवदीक्षित शिष्या सम्पत्कुमारीजी के पैर में बबूल का काँटा गड़ जाने के कारण आपको करीब १॥ मास तक वहीं रुकना पड़ा। आचार्यश्री अपने शिष्य-वर्ग सहित तब तक महागढ़ से मन्दसौर पधार चुके थे। चरित्रनायिका ने भी पूज्यश्री के दर्शनों का लाभ उठाने के लिये जावरा से मन्दसौर की ओर प्रस्थान किया।

मन्दसौर में पूज्यश्री के दर्शनों के लिये रामपुरा, कानोड़ और गंगापुर-संघ के श्रावक आए हुए थे। उन्होंने पूज्यश्री से अपने यहाँ किन्हीं सन्त सतियों के चातुर्मास के लिए आग्रह पूर्वक विनति की।

पूज्यश्री की चरित्रनायिका पर प्रारम्भ से ही कृपा-दृष्टि थी। उन्होंने आपसे गंगापुर चातुर्मास के लिये कहा। कानोड़ में श्री नगीनाकुमारीजी आर्या तथा रामपुरा में साध्वीश्री इगामकुमारीजी को चातुर्मास करने के लिए आदेश दिया। चरित्र

नायिका ने पूज्यश्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया। थोड़े दिन पूज्य श्री के सत्संग से लाभ उठा कर गंगापुर की ओर विहार कर दिया। पूज्यश्री का चातुर्मास रतलाम निश्चित हो चुका था, अतः उन्होंने उधर की ओर विहार कर दिया।

रास्ते में कई गाँवों में ज्ञान गंगा बहाती हुई आप सोनाणा गाँव पधारीं। गंगापुर की भावुक जनता यहीं पर आपके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। चातुर्मास की सफलता के चिह्न प्रारंभ में ही दृष्टिगोचर होने लगे। सोनाणा गंगापुर से चार कोस है, फिर भी गंगापुर के लोगों का उत्साह इतना प्रबल था, कि लोग आपके स्वागतार्थ यहाँ तक पहुंचे। यहाँ से आप कालोला पधारीं वो भी नर-नारियों की कतार की कतार आने लगी। गंगापुर अब निकट ही दिख रहा था। सभी लोगों ने जयघोष के साथ आपको नगर में प्रवेश कराया।

गंगापुर-चौमासे में आपका व्याख्यान बड़ा रोचक होता था। व्याख्यान में आप ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र और श्रेणिक चरित्र सुनाती थीं। कथायें इतनी रोचक शैली से फरमाती कि वह श्रोताओं के हृदय को स्पर्श कर लेती थी। आपकी वाणी का सहयोग पाकर शास्त्रीय कथा में भी नए प्राण आ जाते थे। श्रद्धालु भक्त सुन कर गद्गद् हो जाते थे। धीरे धीरे श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। आपके व्याख्यानों में जैन व जैनेतर सोनार, माहेश्वरी, मोची आदि लोग भी विशाल संख्या में उपस्थित होने लगे। व्याख्यात्री स्वयं पवित्र-पावनी थी ही। आपकी वाणी में तप तपस्या और संयम का ऐसा तेज अन्तर्निहित रहता था कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। आपके उपदेशों का द्वार सब के लिए खुला था। प्रसंगोपात, दया, दान, तपस्या, ब्रह्मचर्य, इत्यादि विषयों पर भी आपके व्याख्यान होते थे। कई

बार आपके व्याख्यान मांस, मदिरा, परस्त्री गमन आदि विषयों पर होते थे। यहाँ के कई मोची भाइयों ने इनका त्याग करके यह सिद्ध कर दिया कि शूद्र कहलाने वाले भाई भी उपेक्षा के पात्र नहीं हैं।

आपने सचोट प्रमाण द्वारा यह सिद्ध कर बताया कि जैनधर्म किसी ऊँची जाति में जन्म लेलेने से ही किसी को ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं करार कर देता। वह तो उसके गुणों और सत्कार्यों के गज से नाप कर ब्राह्मणत्व या क्षत्रियत्व कायम करता है। जैनधर्म तो यहाँ तक कहता है कि चाण्डालकुलोत्पन्न व्यक्ति भी मुनि होकर महान् से महान् धर्म का ब्राह्मणों को उपदेश दे सकता है। मानव जाति एक है। कार्य के अनुसार समाज में यह व्यवस्था हुई है। अतः किसी को जन्म लेने मात्र से ऊँच या नीच मत कहो। जिनकी तुम सेवा लेते हो, उन्हें नीच कह कर, उनसे घृणा करके मत पुकारो।

एक दिन आप ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र बाँच रही थीं। प्रसंगवश धनावह सेठ की कथा कहते समय आपने निम्नआशय का वक्तव्य दिया—

"प्राचीन लोगों में कितना ऐक्य होता था। वे लोग व्यापार करने जाते तो शहर में ढिंढोरा पिटवा देते कि जिसे मेरे साथ चलना है, वह तैयार हो जायें। जिसके पास खर्चा न होगा, उसे खर्चा दिया जायगा। माल खरीदने को रुपये न होंगे तो उस रुपय उधार दिये जायेंगे। कितना प्रेम था ? पर आज के मनुष्यों में 'एक ही ग्राम के निवासी तथा एक ही शाखा के लोगों में भी फूट नजर आती है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। फूट ने आज हिन्दुस्तान को बर्बाद कर दिया है। जहाँ देखो वहाँ फूट ने आसन जमा रक्खा है। प्राचीन समय में जयचन्द और

फरमाती और ज्ञान, ध्यान में तल्लीन रहती थीं। अन्य साध्वियों में भी तपस्याएँ प्रचुरमात्रा में हुई।

चातुर्मास समाप्ति के दिन साढ़ेरा के कई राज्यकर्मचारी आपके व्याख्यान सुनने आए। वे आपकी प्रभावोत्पादक शैली तथा सरलता और चारित्रनिष्ठा से बड़े प्रभावित होकर गए। उन्होंने आपकी प्रशंसा करते हुए कहा—"आप सच्ची भगवती और पूजनीया हैं। हम लोग तो जगत् के प्रपंचों में फंसे हैं। धन्य हो आपको! आप संसार के वैभव को पीठ दिखाकर इस कठोर मार्ग पर चल रही हैं।"

मार्गशीर्ष कृ० १ को आपने यहाँ से विहार किया। गंगापुर के श्रीसंघ का दिल आज आप की विदाई के समय बड़ा दुःखित हो रहा था। फिर भी विहार तो कराना पड़ा। गंगापुर के सभी बाजारों में स जय-जयकार की ध्वनि के साथ आपका विहार कराया गया। भगवान् महावीर के नारों से आकाश गूंज रहा था। उस दिन आपने शहर के बाहर सरकारी स्कूल में निवास किया। यहाँ से लाखोला की ओर विहार किया। करीब १००-१५० व्यक्ति लाखोले तक पहुँचाने आए। यहाँ से आरनी, पोटला, देवरिया, करेड़ा आदि क्षेत्रों को पवित्र करती हुई चरितनायिका देवगढ़ पहुँचीं। देवगढ़ के देव-प्रकृति के पुरुष, और महिलाएँ स्वागतार्थ बहुत दूर तक सामने आए। साध्वीश्री सतीनाकुमारीजी आदि सामने पधारीं। यहाँ कई दिनों तक आपके पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यानों की धूम मची रही। कई लोगों ने त्याग-प्रत्याख्यान किए।

इस तरह चरितनायिका जहाँ भी पैर रखतीं वहाँ मंगल ही मंगल हो जाता। आपका जीवन अधिकाधिक आकर्षक बनता गया। आपकी समाज के प्रति समवरता,

समाज सुधार की प्रबल भावना, गुणियों के कार्य का समर्थन, व प्रेम पूर्ण व्यक्तित्व के द्वारा समाज की कन्याओं को शिक्षा दीक्षा देकर उन्हें उन्नति के मार्ग पर आरूढ़ करना, इत्यादि कार्य इस प्रकरण में आए हैं। उन्हें देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चरितनायिका का आत्मबल कहें चाहे प्रेमबल कहें, कितना बढ़ा चढ़ा है? साधुता की भूमिका पर पदार्पण करने से लगा कर अब तक आपने कितना विकास किया है? पाठक स्वयं निर्णय करें। इस बात का निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

विविध-आचार्यों के दर्शन और सेवा

महान् व्यक्ति अपने जीवन में सत्पुरुषों से मिलते रहते हैं। वे अपने जीवनकाल में विद्यार्थी बन कर रहना पसंद करते हैं। उन्हें जहाँ भी ज्ञान और चरित्र के गुणों का झरना बहता हुआ दिखाई देता है, वहीं उसमें नहाने को तैयार रहते हैं। उनमें गुणियों के प्रति प्रमोद भावना हर समय लहलहाती रहती है। इसीलिए एक कवि ने कहा है—

"सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छायासमन्वितः
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते !"

अर्थात्—यदि सेवा करने का प्रसंग आये तो महान् वृक्ष का सेवन करना (आश्रय लेना) चाहिए, जो फल और छाया से युक्त हो। दैव योग से यदि फल न मिले तो, उसकी छाया को कौन हटा सकता है? छाया तो मिल ही जाती है।

यही बात चरितनायिका के जीवन में पूर्णरूपेण घटित होती है। वे इतनी भाग्यशालिनी और गुणज्ञा हैं कि जिस किसी महापुरुष से मिलती हैं, उनका आश्रय पाकर उनके आशीर्वाद रूप फल, पा लेती हैं। उनके गुण रूप छाया को तो किसी हालत में नहीं छोड़ती।

देवगढ़ से चरितनायिका का विहार हो जाता है। सैकड़ों भक्त-श्रावक व श्राविकाएँ उन्हें कई दूर तक पहुँचाने आते हैं।

वहाँ से आप पिपलिया मिरियारी, सारण आदि में धर्म भेरी बजाती हुई ब्यावर पहुँचती हैं। ब्यावर में प्रवर्तिनीजी म० की कीर्ति पहले ही चक्कर लगा चुकी थी। आपके पधारते ही ब्यावर नगर के भावुक लोगों के हृदय बासों उछल पड़े। जनता ने हृदय से आपका स्वागत किया। यहाँ भी चारों ओर से चातुर्मास बिता कर साध्वियाँ पधार गई थीं। उस समय ब्यावर नगर में आप सहित ३० साध्वियाँ होगई थीं। सबके चित्त में आचार्यश्री के दर्शन करने की लालसा थी। आचार्यश्री काठियावाड़ के प्राङ्गण में पधारने वाले थे, अत ब्यावर में एक बार पधार कर सन्तों की व्यवस्था करना आवश्यक था। इस विचार से पूज्यश्री व युवाचार्यश्री आदि रतलाम चातुर्मास व्यतीत करके चैत्र कृ० १४ को ब्यावर पधारे। ब्यावर में पूज्यश्री और युवाचार्यश्री ऐसे भान पड़ते थे, मानो ब्यावर-नगर-रूप आकाश में सूर्य और चन्द्र दोनों प्रकाशित हो रहे हों। सबने दर्शन कर नेत्रों की तृप्ति की। चरितनायिका ने पूज्यश्री व युवाचार्यश्री की कुछ दिन सेवा की। आप कभी कभी दोपहर में पूज्यश्री से शास्त्रीय प्रश्नोत्तर करके अपनी ज्ञान पिपासा मिटाती थीं। महापुरुषों का समागम बड़ा ही दुर्लभ होता है। पूज्यश्री के हृदय में भी चरितनायिका के प्रति काफी सम्मान था।

इधर पूज्यश्री हस्तिमल्लजी महाराज चैत्र शु० ५ को जेठाणा पधार गए, वे आचार्यश्री से मिलना चाहते थे, अत पूज्यश्री ने जेठाणा की ओर विहार किया। चरितनायिका ने भी जेठाणा में पूज्यश्री की अतिशय सेवा का लाभ उठाया। साथ ही पूज्यश्री हस्तिमल्लजी महा० से भी मिलीं। आपके दर्शन कर चरितनायिका को विशेष आनन्द की अनुभूति हुई। पूज्यश्री जवाहरलालजी म० व पूज्यश्री हस्तिमल्लजी म० दोनों आचार्यों की सेवा का लाभ उठाकर आप अजमेर पधारीं। आचार्य श्री

ब्यावर होकर पाली पधार गये।

अजमेर में भी पंजाब सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री काशीरामजी महाराज विराजते थे। आपने उनके दर्शन किये। परस्पर बड़ा ही सद्व्यवहार रहा। चरितनायिका दोपहर के समय अपनी शिष्यामण्डली सहित पधारतीं। पूज्यश्री से आपने कई शास्त्रीय प्रश्नोत्तर व साम्प्रदायिक-एकता और समाज-सुधार सम्बन्धी बातें कीं।

पूज्यश्री ने आपके सुलझे हुए विचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और कहा—आपकी आकृति पञ्जाब की पार्वती जी महासती से हूबहू मिलती है। आपके विचार आचार्यश्री जवाहरलालजी म० के सम्पर्क के कारण अत्यन्त सुधरे हुए हैं।

अजमेर में पञ्जाब के कई श्रावक-श्राविकाएँ पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए हुए थे। उन्होंने आपकी भव्यमूर्ति के दर्शन किये और बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। चरितनायिका की वात्सल्य-भाव से परिपूरित मूर्ति देख कर उन्होंने कहा—"आप तो हमारे यहाँ की म० पार्वतीजी महासती के समान दिखती हैं। वे भी प्रवर्तिनी थीं, और आप भी प्रवर्तिनी हैं। हमारे पञ्जाब में जरूर पधार कर दर्शन दें।"

चरितनायिका की प्रेमपूरित मूर्ति देख कर आगन्तुक व्यक्ति प्रसन्नता से गद्गद् हो जाते थे।

अजमेर में कुछ दिन ठहर कर आप सीधे ब्यावर पधार गईं। यहाँ सोजत-संघ अपने यहाँ चातुर्मास की विनति के लिए आग्रह कर रहा था। उनकी धर्मनिष्ठा, भक्ति और लगन देखकर आपने चातुर्मास के लिए वचन दे दिया।

ब्यावर से चरितनायिका ने ६ ठाणे सोजत की ओर विहार किया। सोजत की धर्म-प्रिय जनता में अपूर्व उत्साह था

गया। आपका चातुर्मासार्थ सोजत में पदार्पण ऐसा प्रतीत होता था मानो १४ वर्ष का वनवास बिताकर सीता अयोध्या में लौटी हो। आपकी दिव्य वाणी एवं सौम्य-व्यक्तित्व ने जनता पर अमूत पूर्व प्रभाव डाला। चातुर्मास में आपके सांसारिक पक्ष के भतीजे श्रीगुमानमलजी सिंघी ने सेवा का बहुत लाभ उठाया। गुमानमलजी बड़े सौम्य प्रकृति के व्यक्ति हैं। आप सुशील, विवेकी और क्षमावान् हैं। मूर्ति-पूजक सम्प्रदाय की मान्यता रखते हुए भी स्थानकवासी सन्त-सतियों के प्रति भी काफी भक्ति रखते हैं। उनकी नम्रता व सरलता भी प्रशंसनीय है। आपकी भावना अब निवृत्ति की ओर ही विशेष है। चरितनायिका के जीवन-चरित्र लिखे जाने के उपलक्ष में आपने हरी सब्जी खाने का यावज्जीव त्याग ले लिया। समाज-सेवा में भी आप भाग लेते हैं।

इसके अतिरिक्त आपके सांसारिक पक्षीय ससुराल वाले लोगों में से कई व्यक्ति आपसे त्याग-प्रत्याख्यान लेते थे। चातुर्मास में धर्मध्यान में बहुत वृद्धि हुई। चातुर्मास में श्रावक-श्राविकाओं में तपस्याएँ भी काफी हुईं। साध्वियों में भी काफी तपस्याएँ हुईं।

इस तरह सं० १९६३ का सोजत चातुर्मास सानन्द व्यतीत हुआ। चातुर्मास के बाद चरितनायिका सपरिवार बलुन्दा आदि होती हुई बड़लू पधारीं। बड़लू में आपके विराजने से भाइयों और बहनों में एक नई स्फूर्ति एवं नूतन चेतना जागृत हो उठी। सभी लोग एक नव-जीवन का अनुभव करने लगे।

वहाँ से चल कर जोधपुर में पदार्पण किया। जोधपुर के प्रसिद्ध श्रावक सेठ कच्छीरामजी सांड वहीं पर थे। व शास्त्रज्ञ और चारित्रनिष्ठ व्यक्ति थे। उन्होंने आपका आगमन सुना तो

बड़े हर्षित हुए। वे आपके व्याख्यानों में खूब रस लेते तथा दोपहर में शास्त्रीय चर्चा में काफी रस लेते थे। जोधपुर की जनता आपकी सुधास्राविणी वाणी सुनकर आनन्द-सरोवर में गोते लगाने लगी।

बड़े शहरों में आधुनिक युवक व युवतियाँ प्राय: धर्म से विमुख होती हैं। अंग्रेजी फेशन में पड़े हुए लोग तो धर्म को मजाक की चीज समझने लगते हैं। परन्तु चरितनायिका की प्रेरणा ने इस क्षेत्र में भी चमत्कार कर दिखाया।

जोधपुर निवास के समय ही ब्यावर-संघ का प्रतिनिधिमण्डल, अपने यहाँ आगामी चातुर्मास कराने के लिए विनति लेकर पहुँचा। ब्यावर श्रीसंघ पर आपके उपदिष्ट और प्रेममयी भावना की छाप अङ्कित थी। उनका दृढ़ आग्रह देख कर चरितनायिका ने विनति स्वीकार कर ली। और सं० १९९४ का चातुर्मास ब्यावर ही हुआ। ब्यावर चातुर्मास में आप व्याख्यान में उपासकदशांग और सुदर्शनचरित अपनी मधुर वाणी द्वारा फरमाती थीं। श्रोता लोग सुनकर हर्ष विभोर हो उठते थे। उपासकों की जीवनी आप ऐसे सुन्दर ढंग से सुनाती कि श्रोताओं के हृदय को हिला देती। चातुर्मास में ५ साध्वियाँ थीं। तपस्याएँ भी काफी हुईं।

ब्यावर चातुर्मास बिता कर आप ब्यावर होती हुई अजमेर पधारीं। इधर युवाचार्य पण्डितरत्न मुनिश्री गणेशीलाल जी महाराज मेवाड़ और मारवाड़ के क्षेत्रों में पवित्र पावनी वाणी द्वारा भूले भटके लोगों को सन्मार्ग पर लाते हुए अजमेर पधार गये। चरितनायिका ने युवाचार्य श्री के पवित्र दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये। चरितनायिका युवाचार्य श्री के दर्शन पाकर अपने भाग्य की सराहना करने लगीं। अजमेर की जनता

के हर्ष का तो पूछना ही क्या ? यह तो दोनों धर्म धुरन्धरों को देख कर फूला नहीं समाता था। युवाचार्यश्री की वाणी सुन कर चरितनायिका व अजमेर की जनता का हृदय उल्लास से तरंगित हो रहा था। चरितनायिका की हार्दिक अभिलाषा युवाचार्यश्री की कुछ दिन स्थायी रह कर सेवा करने की थी, आपने युवाचार्यश्री से निवेदन किया। युवाचार्यश्री की आप पर अत्यन्त कृपा थी, आपके उदार-चरित्र और सरलता की उन पर गहरी छाप पड़ चुकी थी। युवाचार्यश्री के कन्धों पर पूज्यश्री ने साम्प्रदायिक कार्य का सारा बोझा डाल दिया था। ब्यावर में उस समय कई ठाणापति सन्त विराजित थे। उन्हें उनकी व्यवस्था व देखभाल करना आवश्यक था। अत: उस समय वे ब्यावर पधार गये। चरितनायिका अजमेर विराजी रहीं। पूज्यश्री ने युवाचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर निश्चित कर दिया था। अतः वहाँ से आप अजमेर पधारे। इधर चरितनायिका का यह मनोरथ था कि किसी तरह से जयपुर चौमासा युवाचार्यश्री के साथ हो जाय तो आपकी सेवा का लाभ तथा शास्त्रीयज्ञान की पिपासा निवृत्ति दोनों कार्य सफल हों। युवाचार्यश्री इतने विनीत और आज्ञाकारी थे कि पूज्यश्री की आज्ञा के बिना एक कदम भी नहीं रखते थे। अत: चरितनायिका के उक्त प्रस्ताव को पूज्यश्री के पास सूचित करवाया। पूज्यश्री ने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी। तदनुसार अजमेर से दोनों ने विहार किया। युवाचार्यश्री मुनिमण्डली सहित किशनगढ़ पधारे। चरितनायिका भी एक दिन के अनन्तर किशनगढ़ पहुँची। जयपुर के मार्ग का वर्णन पहले हो चुका है। वहाँ की कठिनाइयाँ अब छिपी नहीं हैं। युवाचार्यश्री महान साहसी थे, उन्हें भी जयपुर के मार्ग ने अपने स्वरूप का दिग्दर्शन करा दिया युवाचार्यश्री कहा करते हैं कि हमें सात गाँवों में फिरने पर भी

पूरा आहार पानी नहीं मिला। महापुरुषों की कसौटी तो बार बार हुआ ही करती है। परिसनायिका को भी कम कष्ट उठाना न पड़ा। आपने किशनगढ़ से ही अपनी तीन टुकड़ियाँ बनाली थीं। सभी १३ साध्वियाँ थी। एक टुकड़ी में ५ साध्वियाँ और बाकी दो में चार-चार साध्वियाँ चल रही थीं। आगे की टुकड़ी में आपकी शिष्याएँ दाखबाइजी आया तथा राजकुमारीजी आर्या आदि चल रही थीं।

जयपुर शहर का संघ आपका आगमन सुन कर स्वागत के लिए काफी दूर तक पहुँचा। आपने जयध्वनि के साथ जयपुर में प्रवेश किया। गुणाचार्य श्री ६ ठाणों सहित पहले पधार चुके थे।

जयपुर में प्रवेश करते ही आपकी दो शिष्याओं—राजकुमारीजी व सुगुनकुमारीजी पर अचानक हैजे ने आक्रमण कर दिया। मंगलाचरण में ही यह विघ्न ! गर्मी काफी जोर से पड़ रही थी। रास्ते की थकान थी, फिर एकदम प्यास लगने से कै और दस्तें होने लगी। साध्वियाँ घबड़ाने लगीं कि "हमने तो प्रवर्तिनी जी म० को बड़े प्रयत्न करके जयपुर पधारने के लिए उत्साहित किया था, पर यहाँ आते ही यह हाल हो गया। अब हमें क्या कहेंगी ? परिसनायिका ने दोनों साध्वियों को ढाढस दिलाते हुए कहा-' घबराओ मत ! घबराने जैसी कोई बात नहीं है। तुम्हारा उपचार किया जायगा। आशा है शीघ्र ही ठीक हो जाओगी। इस पर भी न हुआ तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। तुम्हारे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। यहाँ रह कर शरीर से संयम पालन करोगी तो भी श्रेय है और परलोक में भी शुद्ध भाव से आराधना करने पर सुगति मिलेगी। प्रभु का स्मरण करो।"

थोड़े ही दिनों में दोनों की तबियत सुधर गई।

चातुर्मास में संघ के लोगों की भक्ति बड़ी जोरदार रही। युवाचार्यश्री भी आप पर महती कृपावृष्टि करते थे। युवाचार्य श्री सुबह व्याख्यान में स्थानांग सूत्र और रुक्मिणी-चरित्र फरमाते थे। दोपहर को कभी-कभी धर्म-चर्चा होती, साथ ही सम वायाङ्ग सूत्र सटीक फरमाते थे। चरितनायिका इस बहते हुए ज्ञान के झरने को कैसे छोड़ सकती थीं ? आपने सेवा के साथ ज्ञान का लाभ उठाया। चरितनायिका की विनयशीलता, सेवाभक्ति और ज्ञानपिपासा देख कर युवाचार्यश्री बड़ी प्रसन्नता प्रगट करते। संघ के लोगों ने तो चातुर्मास में तपस्या और धर्म ध्यान की झड़ी लगा दी थी। सन्तों और सतियों में भी काफी तपस्याएँ हुई। सतियों में निम्न लिखित तपस्याएँ हुई—

श्रीमती प्रवर्तिनीजी म०—६, ३, का थोक।
साध्वीश्री मेहतावकुमारीजी—५, का थोक।
„ सुगाजी—५ का थोक।
„ केसरकुमारीजी—३ का थोक।
„ कस्तूरांजी—५ का थोक।
„ नगीनाकुमारीजी—५ का थोक।
„ वालबाईजी—५ का थोक।
„ मेघकुमारीजी—१६, ५, ३, २ का थोक।
„ मैनाकुमारीजी—१३, ५ का थोक।
„ राजकुमारीजी—५ का थोक।
„ सुगुनकुमारीजी—५ का थोक।
„ सम्पतकुमारीजी—५, ४, ३, २, का थोक।
„ गुलाबकुमारीजी—७, २, ७, का थोक।

कई साध्वियों ने दो मास तक एकान्तर तप किया।

चातुर्मास सानन्द सेवा व तपश्चरण में बीता। चातुर्मास व्यतीत होने के बाद प्रायः सभी सतियों का इरादा देहली की

ओर विचरने का था। चरितनायिका एकाएक छोटी-छोटी साध्वियों के उत्साह को भंग नहीं करती। आपकी प्रकृति ऐसी सरल है कि किसी छोटी से छोटी साध्वी का दिल दुःखाना आपको पसन्द नहीं है। हाँ, सद्शिक्षा देनी पड़े तो बात अलग है। आपने युवाचार्य श्री के समक्ष साध्वियों के दूदली की ओर विचरने का विचार प्रदर्शित किया। युवाचार्यजी बड़े दूरदर्शी महापुरुष हैं, उन्होंने सोचा—"प्रवर्तिनीजी स्वयं वृद्ध हैं, इन सब को इतनी दूर ले जाने से कोई विशेष लाभ भी नहीं है। यह जान कर युवाचार्य श्री ने प्रवर्तिनीजी से कहा—"मेरी दृष्टि में आपका उधर जाना ठीक नहीं है।"

चरितनायिका ने चातुर्मास समाप्त करके टोंक की ओर विहार किया। युवाचार्य श्री ने भी टोंक की ओर विहार कर दिया था। टोंक महाप्रतापी आचार्य श्री श्रीलालजी की जन्म भूमि है। दूर से ही दिखती हुई रसियाटेकरी आचार्य श्री के वैराग्य की निशानी है। टोंक के लोगों ने महासतीजी का सहर्ष स्वागत किया। यहाँ कुछ दिन बिताए ही थे कि अचानक आपको बुखार ने आ घेरा। बुखार का वेग दिनोंदिन बढ़ता ही गया। यहाँ के श्रद्धालु श्रावकों ने उपचार कराया, फिर भी ठीक न हुआ। इधर आपकी शिष्या विद्याविशारदिणी गुलाब कुमारीजी एक दिन उत्तराध्ययनसूत्र का अध्ययन कर रही थी। अचानक ही उन की आँखों के सामने काला पर्दा पड़ गया। सभी चीजें काली दिखाई देने लगी। बहुत दिनों तक इलाज करवाने पर ठीक हुआ। थोड़े दिनों बाद दो साध्वियों को छोड़ कर ११ ही साध्वियों को बुखार आने लगा। चरितनायिका के शरीर में भी बहुत दिन तक असमाधि रही। आपके शरीर में कम जोरी इतनी बढ़ गई थी कि थोड़ी सी दूर घूमने पर चक्कर आजाते और बुखार आजाता। शरीर में व्याधि बढ़ गई।

स्वास्थ्य बड़ा प्रयत्न करने पर सुधरा।

वहाँ से विहार करके चरितनायिका बूँदी पधारीं। वहाँ युवाचार्यश्री १४-ठाणे से विराजित थे। उनके दर्शन कर चित्त में बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की। युवाचार्य श्री ने फरमाया—"मैंने आपकी बीमारी का हाल सुना तो चित्त में अत्यन्त खेद हुआ। अब तो आपका स्वास्थ्य ठीक है न ? आपको पधारे देख मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। आपका शरीर अब वृद्ध होचला है अतः पूरी सावधानी रक्खें।"

थोड़े दिनों बाद वहाँ से युवाचार्य श्री का विहार होगया। आपने भी कोटा की ओर प्रस्थान किया। कोटा में उस समय वयोवृद्ध पं० मुनि श्री हरखचन्दजी महाराज विराजते थे। उनके दर्शन किये। उनसे सूत्रकृताङ्गसूत्र के सम्बन्ध में कई प्रश्नोत्तर हुए। हरखचन्दजी महाराज ने आपकी शास्त्रीय-जिज्ञासा देख कर बड़ा हर्ष प्रगट किया। और कहा—"प्रवर्तिनीजी ! मैं तो अब वृद्ध होचला हूँ। मुझ से ज्यादा भ्रमण नहीं हो सकता। मैं तो इस सुदूर देश में बैठा हूँ। आज आप जैसी भाग्यशालिनी महासतीजी से मिलन होगया। मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई है।"

कोटा में संघ की अत्यन्त भक्ति थी। होली चातुर्मास यहीं पर बिताया। लोगों में धर्मध्यान की वृद्धि हुई। कोटा से चरितनायिका ने साध्वी गुलाबकुमारीजी के तकलीफ होने से चार साध्वियों को मालवा की ओर विहार करवा दिया। आपने मानपुरा होकर रामपुरा में पदार्पण किया। यहाँ धर्ममूर्ति वयोवृद्ध मुनि श्री इन्द्रमलजी म० व मुनिश्री पूरणमलजी महा० विराजित थे। उनके दर्शन किये। दोनों ही मुनियों ने आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। परस्पर सद्व्यवहार रहा। दोनों मुनियों के विहार करने पर आपने अपनी अमृतवाणी जनता

को पिलाई। संघ के लोग धर्म की सच्ची प्रभावना देखकर बड़े हर्षित हुए। विहार करते समय चाँदमलजी कवाथत व अपाहर लालजी नाहर आदि ने 'नाहरों के बगीचे' में ठहरने के लिए बड़ा आग्रह किया। चरितनायिका ने मौका देख कर यहाँ एक दो दिन निवास किया। संघ के लोगों की भक्ति का पूछना ही क्या ? सभी लोग मंत्र-मुग्ध होकर व्याख्यान सुनते थे। इस तरह यहाँ की जनता को प्रतिबोधित करके आगे विहार किया।

ठकुरानी को प्रतिबोध

जैनधर्म में जिस क्रियाकाण्ड का वर्णन पाया जाता है, उसका मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के होने पर ही चारित्र मुक्ति या आत्मशुद्धि का निमित्त बनता है। जहाँ सम्यक्त्व नहीं, वहाँ कठोर से कठोर क्रियाकाण्ड भी संसार भ्रमण का ही कारण होता है। सम्यक्त्व से क्रियाकाण्ड सजीव हो जाता है, उसमें प्राण आ जाते हैं। यही नहीं, वरन् गम्भीर से गम्भीर ज्ञान भी सम्यक्त्व के अभाव में मिथ्याज्ञान ही रहता है। अत: सम्यक्त्व मोक्ष महल का पहला सोपान है। मुमुक्षु जीव के मोक्ष मार्ग की भव यहीं से प्रारम्भ होती है। सम्यक्त्व का सीधा-सादा अर्थ है—सच्चाई को ग्रहण करना, दृष्टि बदलना। दृष्टि की निर्मलता धर्म-श्रद्धा से ही पैदा होती है। अतएव धर्म श्रद्धा को अङ्गीकार करना ही व्यवहार से सम्यक्त्व ग्रहण करना कहलाता है।

सम्यक्त्व ग्रहण करते समय, ग्रहण करने वाला यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं आज से वीतराग देवों को ही अपना देव मानूँगा। अहिंसा आदि पाँच महाव्रतधारी साधु-साध्वियों को ही अपना गुरु समझूँगा और वीतराग कथित दयामय धर्म को ही धर्म स्वीकार करूँगा।

आप जानते हैं, जब घर में अन्धकार होता है तब क्या दशा होती है? कितनी कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ता है?

अन्धकार में चोर और सेठ, साँप और रस्सी का विवेक नष्ट हो जाता है। उस समय दीपक का कितना महत्त्व है ? दीपक जलाते ही सर्प और रस्सी, सेठ और चोर स्पष्ट सामने झलक उठते हैं। उस समय कितना आनन्द आता है ? यह तो स्थूल द्रव्य अन्धकार है। पर एक और अन्धकार है जो हमारे हृदय का है। उस का नाम अज्ञान है। यह इससे अनन्त-गुना भयंकर है। यदि वह अन्धकार विद्यमान हो तो हजारों दीपक क्या सूर्य भी उसे नष्ट नहीं कर सकते।

सद्गुरु ही इस अज्ञान को दूर कर सकते हैं। देव, गुरु और धर्म की पहचान भी ये ही करा सकते हैं। हमारे आध्यात्मिक जीवन-मन्दिर के ये प्रकाशमान दीपक हैं। उनकी दिव्य दृष्टि से ही हमें वह प्रकाश मिलता है, जिसे पाकर जीवन की विकट घाटियों को हम पार कर सकते हैं। इस प्रकार के इस गुण को लेकर ही वैयाकरणों ने गुरु शब्द की व्युत्पत्ति की है—'गु' शब्द अन्धकार का वाचक है और 'रु' शब्द उस अन्धकार के विनाश का वाचक है। अतः गुरु वह, जो अन्धकार का नाश करता है। वही जीवन की उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझा सकता है। जिसका जीवन ही शास्त्र हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया पर त्याग और वैराग्य की अमिट छाप हो वही गुरु होने का अधिकारी है। उसकी संगति में जो भी आता है, वह सोना बन जाता है। ऐसे गुरु ही भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर संसार समुद्र से तारते हैं।

हाँ, तो हमारी चरितनायिका के जीवन में हम गुरुत्व की झाँकी देख सकते हैं। वह जहाँ भी गई हैं, त्याग और वैराग्य की रोशनी फैलाई है और उनके हृदय में स्थित अज्ञानान्धकार को दूर किया है।

चरितनायिका का विहार रामपुरा में हो गया है। रास्ते

के गाँवों को पावन करती हुई सं० १९९६ चैत्र मास में भाटखेड़ी पहुँचती हैं। भाटखेड़ी गाँव के लोगों में भी भक्ति गहरी थी। भाटखेड़ी ग्राम की ठकुरानी तो पहले से ही आप की परिचित थीं। उस भाग्यशालिनी ठकुरानी का नाम नवनिधिकुमारी था। ठकुरानी आपकी परम भक्ता थीं। आपको अपने गाँव में पधारी देख, उसने व्याख्यान वगैरह की सारी व्यवस्था कराई। जैसे भीलनी के यहाँ जाकर सीताजी के हर्ष का पार न रहा था उसी प्रकार इस धर्मशीला ठकुरानी के गाँव में पहुँच कर चरितनायिका भी प्रसन्न हो गई। ठकुरानीजी आपको अपनी आराध्यदेवी समझती थीं। श्रीठकुरानीजी बालविधवा थीं। उनका विवाह होने के पहले ही किसी ने भविष्य-वाणी कर दी थी कि इनके पति को घर आते ही साँप काट जायेगा। यही हुआ। विवाह होने के बाद उन्हें इसी डर से हवाई जहाज में लाया गया और बड़ी सावधानी से पालने पर बिठाया गया। दैवयोग से वहीं पर एक सर्प निकला और उन्हें डस लिया। पति के देहान्त के बाद ठकुरानीजी अपना जीवन त्याग और तपस्या में बिता रही थीं। उनके हृदय में प्रत्येक प्राणी के प्रति अत्यन्त करुणाभाव रहता था।

चरितनायिका के इस बार दर्शन होते ही उन्होंने जैनधर्म की श्रद्धा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। आपने उन्हें सम्यक्त्व का बोध पाठ दिया और जैनधर्म का स्वरूप समझाया। जिन्होंने आपकी अमृतमयी वाणी सुन कर सभी बातें शिरोधार्य की। उसी समय अपनी ओर से २५ बकरे अमरिये करवा कर छुड़वा दिये। कई चीजों का त्याग किया। ठकुरानीजी की यह अवश्य इच्छा हो रही थी कि अगर मेरे पैर में यह असमाधि न होती तो मैं आपके ही पास दीक्षा लेकर त्याग और तपस्या का कठोर मार्ग अंगीकार करती। फिर भी मैं अपना जीवन साध्वी का सा

पहले दर्शन किया होगा, मगर याद नहीं है। अब तो आप व दीपकुमारीजी आंखों आंखों में बस रही हैं। भुलाए नहीं जाते हो। दर्शनों की याद आते छटपटाने लगती हूँ। मगर क्या करूँ मों। परदे की त्राज्ञा में बद्ध हूँ।

ऊपर किले (चित्तौड़गढ़) पर विराजित सतियोंजी से चरण वन्दना। व तपस्या की सुख-साता पूछावें। महताबकुँवर जी महाराज साहेबान व सम्पतजी महाराज, राजकुँवरजी म० की बड़ी याद आती है। राजकुँवरजी महाराजजी की दया पालू रखावें। मेरे ख्याल से जयपुर इलाज होवे तो ठीक रहे। ऐसे शान्तस्वभावी प्रेममूर्ति महासतीजी को भगवान् (न) क्यूँ तकलीफ दी ? आज ३०-३१ सत श्री पुण्यपर्व पर्यूषण के सम्बन्ध में खानदेश व मद्रास तक देना है, बाकी पुनः लिखूँगी। श्रीयुत राज महाराज को उदयपुर कई पत्र दिए। पत्र का प्रत्युत्तर ही प्रदान नहीं होता है। दया खती रखावें। वहाँ विराजित जैन भाई बहनों ने तपस्या की हो उन्हें सुख-साता पूछावें। इतना ही लिख पत्र बन्द करती हूँ—

"तुम्हरी भक्ति न छोड़ हूँ तन-मन सिर विक जाय
तुम साहिब म दास हूँ भलों क्यों है दास ॥
हीरा नमैं तो तुमहि को तुमहि सुं मांगु भीख
मैं मगरू तो तुमहि सों, मैं चरनन आधीन ॥
गुरु की मिसत विनती यही, तुमते चार हमार।
सिही तिहें भांति राखियो रहूँ परियो रहूँ दरबार ॥"

विशेष क्या निवदन करूं ? पत्र प्रदान होवें। अत्यन्त तथा बालिया रखावें पत्र में गलती हो (तो) क्षमनीय हो।

चरणरज-नवनिधिकुमारी,
माण्डली।"

उल्लिखित पत्र को पढ़ने पर ठकुरानीजी के हृदय में आप के लिए कितना स्थान था, यह बात छिपी नहीं रह जाती। चरित नायिका ने ठकुरानीजी के जीवन को ज्ञान-ज्योति से जगमगा

पहले दर्शन किया होगा, मगर याद नहीं है। अब तो आप व दीपकुमारीजी आर्या आखों में बस रही हैं। भुलाए नहीं जाते हो। दर्शनों की याद आते छटपटाने लगती हूं। मगर क्या करूं माँ! परदे की शृंखला में बद्ध हूं।

ऊपर किले (चित्तौडगढ़) पर विराजित सतियाँजी से वन्दना। व तपस्या की सुख-साता पूछावें। महताबकुंवर की महाराज साहेबान व सम्पतजी महाराज, रायकुंवरजी म० की बड़ी याद आती है। रायकुंवरजी महाराज की दवा बाबू रखावें। मेरे ख्याल से जयपुर इलाज होवे तो ठीक रहे। ऐसे शान्तस्वभावी प्रेममूर्ति महासतीजी को मालवाम् (न) क्यूं तक-लीफ दी? आज ३०-३१ व्रत की पुण्यपर्व पर्युषण के सम्बन्ध में खानदेश व मद्रास तक देना है, बाकी पुनः लिखूंगी। श्रीयुत राव महाराज को उदयपुर कई पत्र दिए। पत्र का प्रत्युत्तर ही प्रदान नहीं होता है। दया व्रती रखावें। वहाँ विराजित सेन भाई-बहनों ने तपस्या की हो उन्हें सुख-साता पूछावें। इतना ही लिख पत्र बन्द करती हूं—

"तुम्हरी भक्ति न छोड़ हूं तन-मन सिर किन जाय ॥
तुम साहिब मैं दास हूं मलो चम्पो है दास ॥
हीरा नमें तो तुमहि को तुमहि सुं मांगु भीख
मैं भगरू तो तुमहि सो, मैं चरनन आधीन ॥
गुरु की जियत विनती यही, तुमसे चार हमार।
जिही तिहि भांति टरियो रहूँ परियो रहूँ दरबार ॥"

विशेष क्या लिखूं कहूं? पत्र प्रदान होय। अल्प क्षमा बखिया रखावें पत्र में गलती हो (तो) क्षमनीय हो।

चरणरज-नवनिधिकुमारी,
मादकेली।"

उल्लिखित पत्र को पढ़ने पर ठकुरानीजी के हृदय में आप के लिए कितना स्थान था, यह बात छिपी नहीं रह जाती। चरित नायिका ने ठकुरानीजी के जीवन को ज्ञान-ज्योति से जगमगा दिया। वास्तव में आपकी करुणामयी दृष्टि भव्य-जीवों को सन्मार्ग पर लाने में हर समय रहती है। ठकुरानीजी को सत्य के द्वार तक पहुँचाने में आपका ही महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

भाटखेड़ी में कई दिनों तक धर्म का बोध देकर आप महागढ़ पधारीं। महागढ़ संघ आपके दर्शनों का पिपासु था। दर्शन पाकर हर्ष का पार न रहा। यहाँ से मल्हारगढ़, नारायणगढ़, पीपलिया होती हुई नीमच पधारीं। नीमच में चित्तौड़-संघ आपके चातुर्मास की विनति लेकर पहुँचा। उसके दिल में उत्साह की ज्योति जग रही था। अभी तक चित्तौड़ में पहले आपका चातुर्मास नहीं हुआ था, अत उनके आग्रह पर ध्यान देकर आपने से सं० १९९९ के चातुर्मास के लिए चित्तौड़-संघ को अपनी मंजूरी दे दी। ९ ठाणे से चित्तौड़ में आपका पदार्पण हुआ। चित्तौड़ में किला और शहर दो जगह बस्ती होने के कारण ज्यादा उपकार होता देखकर आपने ४ साध्वियाँ किले पर चौमासा करने के लिए भेज दीं और ५ ठाणे से स्वयं शहर में चौमासा किया।

चित्तौड़ चातुर्मास में आप कई दिनों तक सुखविपाकसूत्र और चन्दनबाला चरित्र फरमाती थीं। शास्त्र पर हृदयस्पर्शी विवेचन सुन कर श्रोताओं में सहसा स्फूर्ति आजाती। तत्पश्चात् चन्दनबाला का चरित्र सुनाती थीं। जनता को उस समय ऐसा लगता मानो साक्षात् चन्दनबाला ही बैठी हो! सती चन्दना की शील की दृढ़ता, व कष्टों की कथा सुन कर श्रोता लोगों की आँखों से आँसू बहने लगते। महासती चन्दनबाला का चरित ही ऐसा उदात्त तेजस्वी और आदर्श है, जिस पर कहने वाली हमारी चरितनायिका मिलीं! चन्दनबाला की जीवनी सुनने के लिए

पहले दर्शन किया होगा, मगर याद नहीं है। अब तो आप व दीपककुमारीजी आपकी आंखों में बस रही हैं। मुलाकात नहीं आते हो। दर्शनों की याद आते छटपटाने लगती हूँ! मगर क्या करूं माँ! परदे की शृंखला में बद्ध हूं।

उल्लिखित पत्र को पढ़ने पर ठकुरानीजी के हृदय में आप के लिए कितना स्थान था, यह बात छिपी नहीं रह जाती। चरित नायिका ने ठकुरानीजी के जीवन को ज्ञान-ज्योति से जगमगा दिया। वास्तव में आपकी करुणामयी दृष्टि भव्य-जीवों को सन्मार्ग पर लाने में हर समय रहती है। ठकुरानीजी को सत्य के द्वार तक पहुँचाने में आपका ही महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

माटखेड़ी में कई दिनों तक धर्म का बोध देकर आप महागढ़ पधारीं। महागढ़ संघ आपके दर्शनों का पिपासु था। दर्शन पाकर हर्ष का पार न रहा। यहाँ से मल्हारगढ़, नारायणगढ़, पीपलिया होती हुई नीमच पधारीं। नीमच में चित्तौड़-संघ आपके चातुर्मास की विनति लेकर पहुँचा। उसके दिल में उत्साह की ज्योति जग रही था। अभी तक चित्तौड़ में पहले आपका चातुर्मास नहीं हुआ था, अतः उनके आग्रह पर ध्यान देकर अपने से सं० १९९६ के चातुर्मास के लिए चित्तौड़-संघ को अपनी मँजूरी दे दी। ९ ठाणे से चित्तौड़ में आपका पदार्पण हुआ। चित्तौड़ में किला और शहर दो जगह बस्ती होने के कारण ज्यादा उपकार

आसपास के ग्रामों की जनता भी उमड़ पड़ती थी। थोड़े दिनों के बाद शास्त्र—ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र सुनाने लगीं। बीच-बीच में कभी चित्तौड़ निवासी ओंकारमलजी पोखरणा आपसे प्रासंगिक प्रश्न कर बैठते थे, उसका समाधान इतने सुन्दर ढंग से करतीं कि वह श्रोता लोगों के मनपे हृदय को स्पर्श कर लेता। पर्यूषणों में आपका व्याख्यान बाजार में होता था। जनता ठसाठस भर जाती।

चातुर्मास की समाप्ति हो रही थी। इसी बीच में चित्तौड़ निवासियों ने मिल कर कई दया व पौषध कर डाले। सारा चातुर्मास धर्म भावना का गढ़ बना रहा रहा। चित्तौड़ चातुर्मास समाप्त होते ही चरितनायिका का विचार मारवाड़ की ओर विहार कर पूज्यश्री के दर्शन करने का था।'

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज काठियावाड़ के धर्म निष्ठ क्षेत्रों को अपनी अमृतवाणी का पान कराते हुए मारवाड़ पधार रहे थे। चरितनायिका का पूज्यश्री से मिलन का यह सुन हरा अवसर था, परन्तु कई प्रबल कारणों से आपका यह मनोरथ अपूर्ण ही रहा।

वहाँ से आपने निम्बाहेड़ा, मन्दसौर, आदि क्षेत्रों में विचरते हुए, और सम्प्रदाय की साध्वियों की सारसम्भाल करते हुए रतलाम में सानन्द पदार्पण किया। रतलाम-संघ में प्रसन्नता छागई। सब लोगों ने अत्यन्त भक्ति दिखाई। धर्म-ध्यान का भी ठाठ लग गया।

महान व्यक्तियों का जीवन 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' होता है। वे अपने लाभालाभ की विशेष परवाह नहीं करते। उनका जीवन सब के लिए-समष्टि के कल्याण के लिये अर्पित होता है। चरितनायिका की आन्तरिक-इच्छा आचार्य श्री के दर्शनों की थी। साथ ही आगामी-चातुर्मास यथाशक्य

आचार्यश्री के साथ ही यापन करने की भावना थी। इसीलिए सोच रक्खा था कि मालवा में शीघ्र ही पर्यटन करके मारवाड़ की ओर लौट जाऊँगी। पर मनुष्य के विचारों की दौड़ से भी ज्यादा तेज दौड़ होनहार की है। यह मनुष्य के विचारों को बीच में ही रोक कर खुद दौड़ में आगे बढ़ कर जीत जाता है। दूसरी बात—चरितनायिका की दीर्घदृष्टि संघहित की ओर भी लगी हुई थी, अतः आपने अपने हित को गौण करके भी संघ हित को प्रधानता दी।

रतलाम से विहार कर चरितनायिका खाचरोद पधारीं। खाचरोद में आपके व्याख्यान में काफी जन संख्या होजाती। सेठ हीरालालजी नांदेचा के यहाँ उस समय सुपुत्र हुआ। चरित नायिका ने सेठजी को मूक पशुओं को अभयदान देने के लिए उपदेश दिया।

आपके कहने की ही देर थी। सेठजी ने आपके उपदेश को सफल कर दिखाया और कई जीवों को अभयदान दिलाया। यहाँ दया व पौषध भी खूब हुए। कई लोग तो कह रहे थे—'हमें आपके शेषकाल विराजने से ही चातुर्मास का-सा आनन्द आरहा है।'

यहाँ से बड़ावदा आदि गाँवों में धर्मोद्योत करती हुई नगरी, रिंगनोद, धोद्दर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए जावरा पधारीं। इधर नवयुग-सुधारक आचार्यश्री जवाहरलालजी महा० काठियावाड़ से बगड़ी (मारवाड़) पधार चुके थे। पूज्यश्री की ओर से चरितनायिका के लिए बगड़ी पधारने से पहले ही यह समाचार आए कि—आप पधारें तो चातुर्मास साथ करके सेवा, व ज्ञान-वृद्धि का लाभ उठा सकती हैं। परन्तु चरितनायिका कारणवश पूज्यश्री की सेवा में न पधार सकीं। अतः पूज्यश्री के साथ आपका चातुर्मास न होकर आपकी ही आज्ञानुवर्तिनी

महासतीजी कालीजी म० का ठा० ४ से यहाँ चौमासा हुआ।

चरितनायिका का चातुर्मास जावरा निश्चित हो चुका था। अतः सं० १६६७ का चातुर्मास जावरा ही हुआ। जावरा चातुर्मास में तपस्या व धर्मध्यान प्रचुर-मात्रा में हुआ। यहीं पर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध स्थविर मुनिश्री शान्तिलालजी म० का चातुर्मास था। अतः चरितनायिका ने उनके व्याख्यानों व सेवा का लाभ उठाया। साध्वियों में भी तपश्चर्या का ठाठ लग गया था।

इस तरह जावरा चातुर्मास शान्ति से व्यतीत हुआ।

दर्शनों की अभिलाषा अपूर्ण !

शरीर वृद्ध हो चुका है पर मन जवानों से आगे बढ़ने को तैयार है। यह बिल्कुल तरुण है। मन जब किसी काम को करने के लिए तैयार हो जाता है, तो वृद्ध शरीर में भी तरुणों जैसी स्फूर्ति पैदा कर देता है।

चरितनायिका के शरीर में तो बुढ़ापा प्रवेश कर चुका था, पर मन अभी बूढ़ा नहीं हुआ है, बूढ़ा होते हुए भी आप सब से आगे तेज कदमों से चल रही हैं। और तरुण शिष्या मंडली आपके चरण चिह्नों पर पीछे-पीछे चली आरही हैं। गाँव गाँव में ठहराने के लिये आग्रह होता है, परन्तु क्या कारण है, जो ठहरती ही नहीं हैं, कहीं अधिक विश्रान्ति नहीं ले पातीं, चली ही जारही हैं ?

रतलाम में चरितनायिका की शिष्या साध्वीश्री राजकुमारीजी रुग्ण हैं, उन्हें राजयक्ष्मा रोग ने घेर लिया है। यह सुनकर चरितनायिका को एकाएक उधर की व्यवस्था करनी पड़ी। वह भी करदी गई। कितनी ही साध्वियाँ भी उनकी शुश्रूषा में छोड़ दी गई। बाकी सतियाँ रतलाम में विहार करके आप से मिल गई। अब तो शीघ्रातिशीघ्र मारवाड़ की ओर विहार करना था, प्रतापगढ़ में चार साध्वियों का चातुर्मास था, वे विहार करके चन्मोत्तर पहुँची, और उनमें से साध्वीश्री मगीनाकुमारीजी द्वारा

क्लान्त हो गई। आपने यहाँ की व्यवस्था करने के लिए स्वयं ही उस ओर विहार किया और प्रतापगढ़ होते हुए धम्मोत्तर पहुँची। वहाँ थोड़े दिन उपचार करवाया उनके स्वस्थ होने पर आपने छोटी-मादड़ी आदि मेवाड़ के क्षेत्रों में धर्म जागरण करते हुए मारवाड़ के प्रसिद्ध नगर ब्यावर में पदार्पण किया। आपका पूर्वोक्त संकल्प मन ही मन रह गया।

ब्यावर श्रीसंघ ने आपकी वृद्धावस्था देख कर यहीं स्थिरवास करने का आग्रह किया। ब्यावर के भक्त श्रावक और श्राविकाओं ने आपसे प्रार्थना की—"आप अत्यन्त वृद्ध हो चली हैं। साध्वी-समाज को सम्भालने का बोझ भी काफी रहता है, अब आपके शरीर की शक्ति क्षीण होती जा रही है, अतः हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि आप यहाँ स्थिर निवास कर हमें कृतार्थ करें। श्रीमती वृद्धप्रवर्तिनीजी श्री मेवा कुमारीजी महाराज भी यहीं ब्यावर नगर में विराजीं थीं, उन्होंने ब्यावर को भक्तिशील नगर का रूप दे दिया था, आप भी यहीं विराज कर ब्यावरनगर को विभूषित करें।"

चरितनायिका ने उत्तर दिया—"जब तक मेरे पैरों में विचरण करने की शक्ति है, तब तक तो थोड़ा बहुत विचरने की इच्छा है। फिर जैसा अवसर होगा वैसा देखा जायगा।"

क्या वृद्ध क्या बालक और क्या नवयुवक, सब लोगों के दिल पर चरितनायिका के चरित्र-बल का अद्भुत चमत्कार था। कोई यह नहीं चाहता था कि आप का यहाँ से विहार हो। लोगों का प्रेमाग्रह किसी प्रकार भी कम न हुआ। उन्होंने कहा—"अगर आप स्थिरवास नहीं विराजें तो कम से कम एक चातुर्मास की तो ब्यावर पर कृपा करिये।"

सब लोगों के आग्रह को देखकर चरितनायिका ने ब्यावर चातुर्मास के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। सब लोगों के दिल हरे

हो गये। उन्हें सफलता की किरण दिखाई देने लगी।

सं० १९९८ का चातुर्मास ६ ठाणा से ब्यावर में होगया। यहीं पर वयोवृद्ध मुनिश्री चाँदमलजी महाराज का चातुर्मास था। चरितनायिका ने मुनिश्री के व्याख्यानों व सेवा का लाभ लिया। पर्यूषण के ८ दिवसों में संघ ने दोपहर को आपका व्याख्यान कराया व्याख्यान में उपस्थिति अच्छी होती थी। आपके मुख से धर्मकथा सुनकर ब्यावर की जनता हर्षविभोर हो उठती थी। सबने आपकी अमृतवाणी का पान किया। चातुर्मास में भाई बहनों में काफी दया व पौषध आदि हुए। साध्वियों में भी काफी तपस्याएँ हुई।

इसी तरह और भी कई पंचरंगिये श्राविकाओं में हुई। चातुर्मास में ही मन्दसौर निवासीजी इन्द्रकुमारीजी को कई महीनों से संसार से उदासीनता हो रही थी। आपको आपके पदार्पण के समय चरितनायिका की सत्संगति के प्रभाव से दीक्षा लेने का भाव होगया। उस समय आज्ञा न मिलने पर प्रतीक्षा करनी पड़ी। उन्होंने ब्यावर आकर चरितनायिका की सेवा में दीक्षा के विचार प्रगट किये। चरितनायिका ने उनकी प्रकृति व सघ के लोगों से पूछताछ की। उनकी राय मिलने व संघ के लोगों के अत्यन्त प्रयास से उनके ससुर श्री पुनमचदजी द्वारा आज्ञा ब्यावर में ही आकर दे देने पर आपने दीक्षा के लिये वैरागिन को मंजूरी दी। इस तरह वैरागिन श्री इन्द्रकुमारीजी की दीक्षा सं० १९९८ कार्तिक शु० १३ को आपके द्वारा सम्पन्न हुई। वैरागिन का दीक्षा-महोत्सव ब्यावर-निवासी श्री कस्तूरचन्दजी कोठारी की ओर से समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। दीक्षा के प्रसंग पर बहुत से लोगों ने त्याग-प्रत्याख्यान किये। खेद है कि आप अल्पवय में ही स्वर्गवासिनी होगई।

यहाँ से चरितनायिका ने देवगढ़ की ओर विहार किया। मार्ग में

फूकड़ा की घाटी बड़ी दुर्गम है। वृद्धावस्था व शरीर में शिथिलता होने पर भी आपने साहस करके घाटी पार की। घाटी के उस पार तो दर्शनार्थियों की भीड़ लगी थी। देवगढ़ के दैवी प्रकृति के बहुत से नर-नारी आपकी अगवानी के लिए आए हुए थे। इधर आपकी शिष्या श्री नगीनाकुमारीजी ठाणा ३ से पीपली से आप के पीछे पधारीं। गुरुनी और शिष्याओं का मिलन हुआ। वहाँ से देवगढ़ तक लोगों के आने जाने का तांता लगा रहा। देवगढ़ में आपको बाजार में से होकर, भगवान् महावीर स्वामी तथा पूज्यश्री की जय जय के नारों के सहित प्रवेश करवाया। देवगढ़ के लोगों में धर्मश्रद्धा बड़ी गाढ़ी थी।

देवगढ़ में चौथमलजी गाँधी की पुत्रवधू श्री कुँकुँबाई के हृदय में वैराग्य की ज्योति जग उठी थी। उनके वैराग्य म निमित्त कारण बना—साध्वीजी इन्द्रकुमारीजी की दीक्षा तथा चरित नायिका ब्यावर में साक्षात्कार। कुँकुँबाई ब्यावर में श्री चौथ मलजी म० के दर्शनार्थ आई थी। उस समय दीक्षा का अव लोकन कर, संसार से विरक्त सी होगई। चरितनायिका के देव गढ़ पधारते ही उक्त बहन ने दीक्षा के भाव प्रगट किये। तदनन्तर उनके पिताजी छोगालालजी पोखरणा व संघ के प्रयत्न से उनके ससुर की आज्ञा प्राप्त की और सं० १९९८ मार्गशीर्ष शु० १ को दीक्षाविधि सानन्द सम्पन्न हुई। दीक्षा पर ब्यावर व आसपास के लोग सैकड़ों की संख्या में उपस्थित थे।

देवगढ़ में ही रतलाम से श्रीयुत् चांदमलजी श्रीश्रीमाल के समाचार मिले कि "साध्वीजी राजकुमारीजी म० की तबियत अत्यन्त खराब है। उनकी हार्दिक अभिलाषा आपके दर्शनों की है। कृपा करके जल्दी पधारें और उन्हें अन्तिम समय में दर्शन देकर उनकी इच्छा की पूर्ति करें। आप स्वयं वयोवृद्धा हैं, विहार करने में बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। फिर भी आपका पधारना

अच्छा रहेगा।"

आप रुग्ण साध्वीश्री राजकुमारीजी के पास २ साध्वियाँ सेवा में छोड़ कर आगरा से पधारी थीं। यह समाचार मिलते ही पुनः मालवा की ओर प्रयाण कर दिया। आप किसी की प्रबल भक्ति को ठुकराना नहीं चाहती थीं। यही कारण है कि आप वृद्धावस्था के घेरे में अवरुद्ध होकर भी, कष्टों की भीड़ को परास्त करती हुई रतलाम की ओर चल पड़ीं।

मार्ग में गंगापुर आया। यहाँ पर आप थोड़े दिन ठहरीं, और भगवान् महावीर की वाणी का सिंहनाद करती रहीं। यहाँ से चित्तौड़, नीमच, निम्बाहेड़ा, मन्दसौर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करती हुई रतलाम पधारीं।

रतलाम के लोगों में आपका दर्शन पाकर एक नवीन स्फूर्ति आगई। तत्रविराजित सभी साध्वियाँ आनन्द से पुलकित हो उठीं। रुग्णसाध्वीश्री राजकुमारीजी को तो आपके पधारने और दर्शन देने से हृदय में अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई। रुग्णसाध्वी के हर्षाश्रु बरसने लगे। चरितनायिका ने अपनी शिष्या की रुग्णावस्था और शारीरिक दुर्बलता देखकर मन में बड़ा खेद प्रगट किया और रुग्णसाध्वी को आश्वासन देते हुए कहा—"देखो, राजी, घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। चित्त में शान्ति और धैर्य रक्खो। किसी प्रकार की चिन्ता न करो। ये सभी साध्वियाँ तुम्हारी सेवाशुश्रूषा दिल लगा कर कर रही हैं। मैं भी तुम्हारी बीमारी का हाल सुनकर तुम्हारे पास आगई हूं। तुम्हें किस बात का भय है ? तुमने मनुष्य जन्म पाकर खोया नहीं किन्तु कमाया ही है। तुम्हारे तो दोनों तरफ से फायदा है। यहाँ रहोगी तो संयम का पालन करोगी, अगर परलोक के लिए विदा होना पड़ा तो वहाँ भी चारित्रशील व्यक्ति के लिए कोई दुःख की बात नहीं है।

चरितनायिका की मधुर और प्रेममयी वाणी का रुग्ण साध्वी के हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ा। वह भक्ति से गद्‌गद् हो गई। उन्होंने मन से चिन्ता के भार को दूर फैंक दिया। अब तो हर समय रुग्णसाध्वी के हृदय में अरिहन्त भगवान और गुरुणीजी के नाम की रट लगी रहती। सेवा में उपस्थित राज बाईजी, केसरजी आर्या, तथा सम्पत्‌कुमारीजी आदि साध्वियाँ अहर्निश उन्हें कुछ न कुछ धर्ममय बातें सुनाती रहतीं। चरित नायिका को रतलाम पधारे आठ दिवस होगये थे। नौवें दिन तो रुग्णसाध्वी की अन्तिम घड़ियाँ निकटवर्ती दिखने लगीं। चरितनायिका ने उनकी परिणामधारा उत्कृष्ट देखकर तथा उनके कहने पर सभी साध्वियों के समक्ष, उन्हें चौविहार संथारा (अनशन) करा दिया। उसी दिन रात्रि को ६॥ बजे साध्वीजी ने अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया। अन्तिम समय तक आपके मुख पर शान्ति और तेजस्विता विराजमान रही। अन्तिम समय में भी आपने अनेक श्रावक और श्राविकाओं को त्याग प्रत्याख्यान करवाए। यह साध्वीजी शिक्षित, विनीत और आज्ञाकारिणी थी। दूसरे दिन बड़ी धूमधाम से शवयात्रा निकाली गई और देहसंस्कार किया गया।

रतलाम में कुछ दिन विराज कर चरितनायिका १२ ठाणे से जावरा, मन्दसौर आदि क्षेत्रों में धर्म की पूँजी बिखेरती हुई नीमच पधारीं। यहाँ पर जावद-संघ का प्रतिनिधिमण्डल अपने यहाँ आपके चातुर्मास की विनति करने आ पहुँचा। जावद संघ ने अपने यहाँ की विशेषता और आपकी वृद्धावस्था के लिए शान्तस्थल बतलाते हुए चातुर्मास की स्वीकृति देने के लिए आग्रह ठान लिया। चरितनायिका ने कहा—

"मुझे एक बार पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के दर्शन करने हैं। दुर्भाग्य से पिछली-चातुर्मास का मेरे

लिए सेवा का सुनहरा अवसर, सम्प्रदायिक प्रपंचों के कारण, चला गया। मैं चाहती थी कि मालवे में एक ही चौमासा करके मारवाड़ लौट आऊँगी, पर यह मनोरथ सफल न हुआ। मुझे फिर अपनी रुग्णसाध्वी को दर्शन देने रतलाम आना पड़ा। सुनती हूँ पूज्यश्री की भी तबियत ठीक नहीं है, अत शीघ्र ही पहुँच कर उनके दर्शन करलूँ तो ठीक है" संघ के लोगों ने कहा—'आपका शरीर अब वृद्ध है। आप इस हालत में ऐसे सुदूर देश में शीघ्र ही पहुँच सकें, यह कठिन है। आपके लिए वृद्धावस्था के उपयुक्त जावद शहर शान्त और एकान्त स्थल है। यहाँ कई आचार्य विराजे हैं। कई आचार्यों के पदमहोत्सव का सौभाग्य इसी शहर को मिला है। अत आप इस चौमासे तो यहीं विराजें और आगामी चातुर्मास तक पूज्यश्री के दर्शन करने पधार सकती हैं। हमारी इस तुच्छ विनति को स्वीकार करें।"

लोगों का चरम सीमा पर पहुँचा हुआ आग्रह देख कर चरितनायिका को अन्ततोगत्वा स० १६६६ का चातुर्मास जावद स्वीकार करना ही पड़ा। जावद-संघ का प्रतिनिधिमण्डल हर्षित होकर लौटा।

नीमच से आपन छोटीसादड़ी में पदार्पण किया। यहाँ धर्मध्यान काफी हुआ। यहाँ पर बड़ीसादड़ी के श्रद्धा के भार से झुके हुए कई मुख्य श्रावक आए और आपका चौमासा जावद निश्चित हो जाने के कारण, शेषकाल के लिए पधारने की प्रार्थना की। मेवाड़ी भक्त जब प्रार्थना करने के लिए कमर बाँध कर तैयार होजाते हैं, तो बिना मनवाए पीछे नहीं हटते। वे अनुनय विनय करके मना ही लेते हैं। बड़ीसादड़ीवालों ने भी डट कर प्रार्थनाएँ की और चरितनायिका को बड़ीसादड़ी पधारना ही पड़ा।

बड़ीसादड़ी भी चारों ओर पहाड़ों से घिरा हुआ रम्य स्थल है। यहाँ ठेठ मेवाड़ीपन का नमूना देखने को मिलेगा। वही प्राचीन लोगों की सी सादगी, वही सादा खाना, और खेती बाड़ी या आसामियों को आदान-प्रदान करके आजीविका चलाना। धर्म की श्रद्धा इन लोगों में किसी दर्जे कम नहीं है।

बड़ीसादड़ी में २२ साध्वियाँ एकत्रित होगई थी। व्याख्यान में चरितनायिका अपनी साध्वी-मंडली के बीच बड़ी शोभायमान लगती थी। सामने ही श्रोताओं का जमघट लग जाता। यहाँ भगवान महावीर की अहिंसा पर सिंहनाद होता रहा। आपके सदुपदेश के प्रभाव से एक ही दिन में भाइयों और बहनों में करीब २०० दयाएँ हुई, कई त्याग प्रत्याख्यान, व हरी आदि के स्कन्ध हुए। बड़ीसादड़ी के पचेवृद्ध लोग तो यहाँ तक कहने लगे—'हम तो यह समझ रहे हैं कि महासतीजी म० क्या पधारी हैं, यह तो साक्षात पूज्यश्रीजी म० ही पधार गए हैं। यहाँ तो पर्यूषण का सा ठाठ लग गया है' कानोड़ का श्रीसंघ भी यहाँ पहुँच चुका था। कानोड़ पधारने की विनति हुई कानोड़ में भी काफी दया व पौषधादि हुए। यहाँ से डूंगरा भटूम आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करती हुई चरितनायिका निम्बाहेड़ा पधारीं। यहाँ पर भी दया, पौषध बहुत हुए। कपासन के लोगों को पता लगा तो वे भी अपने यहाँ पदार्पण करने के लिए जोरशोर से विनति करने लगे। परन्तु वर्षा की ऋतु थी, चातुर्मास अत्यन्त सन्निकट आगया था, अतः उन्हें काफी लौटना पड़ा। कपासन-संघ के लोग आज भी उस बात को याद करते हैं तो कहते हैं, आपके पधारने की हमारे मन में ही रह गई। अगर उस समय आपका पदार्पण होजाता तो हमें यह बड़ी भारी आशा थी कि संघ में पड़े हुए दो पक्ष शीघ्र मिट जाते। पर होनहार की बात थी।"

चरितनायिका ने निम्बाहेड़ा से सीधे जावद की ओर

प्रस्थान किया । वर्षा ने अकस्मात् विकट रूप धारण कर लिया । सारा आकाश काले मेघों से आच्छादित होगया । रास्ते में इतने ज़ोर की वर्षा आई कि जिधर देखो उधर जल थल एकाकार होगए थे । लगातार दो घंटे तक वर्षा से चरितनायिका और साध्वीमंडली पिटती रहीं । रास्ते में एक वृक्ष मिला उसके नीचे वर्षा से बचने के लिए आश्रय भी लिया । पर वर्षा किसी का मुलाहजा करने वाली नहीं थी । उसने सभी साध्वियों के कपड़े तरबतर कर दिये थे । शास्त्रों के पन्नों पर भी अपनी मनोहर छाप लगा दी थी । ऐसा मालूम पड़ता था मानो कोई देवी ही वर्षा का रूप धारण करके परीक्षा लेने आई हो । परन्तु चरितनायिका परीक्षा देने में कभी पीछे रहने वाली नहीं थीं । उन्होंने वर्षा को अपनी परीक्षा से सन्तुष्ट कर दिया । कई साध्वियाँ ठंड के मारे ठिठुरने और काँपने लगीं । चरितनायिका ने साहस पूर्वक कहा— 'अरी, घबराती क्यों हो ? ऐसे परिषह देव तो कभी-कभी ही भूले भटके आते हैं । यही तो साधु जीवन में कसौटी का समय है । इन कष्टों को सह लेने में वीरता है और कर्मों को चूर्ण किया जासकता है ।"

चरितनायिका के वचनों में आत्मबल का अलौकिक पुट था । सभी साध्वियाँ समभाव से कष्ट को सहने लगीं । वर्षादेवी शान्त हुई । बादल फटे । चारों ओर प्रकाश होगया । चरितनायिका ने आगे कदम बढ़ाया । और यथासमाधि चातुर्मास के कई दिनों पहले ७ ठाणों से जावद पधार गईं ।

चरितनायिका ने कपासन संघ, व चित्तौड़-संघ की चौमासे के लिए आग्रह देख कर अपने पास की साध्वियों को दो भागों में विभक्त कर दिया । नगीनाकुमारीजी आर्या को तीन ठाणों से चित्तौड़ भेजा तथा साध्वी श्री बरदूजी ठा० ५ को कपासन भेजा ।

जावद पधारते ही चरितनायिका ने सुना कि आचार्यश्री
जवाहरलालजी म० के शरीर में ज्येष्ठ शु० १५ को अकस्मात्
लकवा की शिकायत हो गई है। उन्होंने सभी साधु-साध्वी,
श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ से हार्दिक क्षमायाचना करली
ही। इसके बाद ही लकवा की शिकायत पूरी तरह दूर भी नहीं हो
पाई थी कि कमर के पीछे बाई ओर कार्बंकल (अदीठा)
फोड़ा उठ आया है। उसने भयंकर रूप धारण कर लिया है।"

चरितनायिका को यह खबर सुन कर अत्यन्त खेद हुआ
जिन गुरुवर्य पूज्यश्री का यह दर्शन करने जारही थी उनके
शरीर में अचानक ऐसी भयंकर व्याधि सुनकर चरितनायिका
समझने लगीं, सम्भवतः अब दर्शन होना कठिन है।

बीमारी के कारण पूज्यश्री का चातुर्मास भी भीनासर में
ही था। युवाचार्यजी महाराज तथा सन्तमण्डली पूज्यश्री की
सेवा का लाभ उठा रही थी। चरितनायिका के मन में पूज्यश्री
की दिव्यमूर्ति, के दर्शन करने की बारबार उमंग आती रहती,
पर कर क्या सकती थी? चातुर्मास प्रारम्भ होगया था। चातु
र्मास में जावद संघ ने धर्मध्यान और सेवा का अच्छा उत्साह
दिखाया। चातुर्मास में आपके व्याख्यान सार्वजनिक विषयों
पर तथा कुव्यसनों के त्याग आदि पर अधिक होते थे। जनता
सुनकर गद्गद् हो जाती। जावद-निवासी भँवरलालजी कोठेर,
जो केवल नामके जैन होने के नाते पर्युषण में आने वाले थे, अब
आपके व्याख्यानों में इतना रस लेने लगे कि एक दिन न सुनते
तो उन्हें बड़ा खटपटा सा लगता था। चरितनायिका ने परस्त्री
संग के निषेध पर एक दिन व्याख्यान में जोरदार शब्दों में प्रकाश
डाला। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने संकोचवश आपके पास पर
स्त्री-संग के त्याग तो नहीं किये, पर मन में अटल संकल्प कर लिया
था। फिर आपकी शिष्या नगीनाकुमारीजी आर्या से उन्होंने

यावज्जीवन तक त्याग कर लिए । आपकी पवित्र वाणी, सौम्यता व शान्त मुखमुद्रा को देखकर कई व्यक्तियों ने व्याख्यान-श्रवण करना प्रारम्भ कर दिया । चातुर्मास में तपस्याएँ भी काफी हुई । चातुर्मास समाप्त हुआ, परन्तु चरितनायिका का विहार मार्गशीर्ष कृ० १ को न हो सका । उसका कारण था—आपकी एक नवदीक्षिता शिष्या इन्दुकुमारीजी की तबियत खराब हो जाना । उनके लिए करीब १ महीने और अधिक ठहरना पड़ा । आखिर मार्गशीर्ष सुदी में विहार हुआ ।

आमद से चरितनायिका का पदार्पण चित्तौड़ हुआ । चित्तौड़ के लोगों ने आपको काफी दिन तक ठहरा लिया । इधर दूसरी ओर से साध्वियाँ चातुर्मास बिताकर आने वाली थीं । उन्हें विचरने की व्यवस्था समझा कर विहार करना था, अतः रुकना पड़ा । थोड़े दिनों में साध्वियों के आने पर २३ ठाणे हो गये थे । यहाँ से सतियों को विचरण-व्यवस्था समझा कर आप का विचार पूज्यश्री की सेवा में पहुँचने का था, परन्तु प्रकृति की लीला कुछ और ही है । वह आपके स्वप्न को पूर्ण होने देना नहीं चाहती है ।

आप चित्तौड़ से भीलवाड़ा पहुँचती हैं, वहाँ कुछ दिन ठहर कर ज्यों ही विहार करना चाहती हैं तो पैर नहीं मानता है । अब तक वृद्धावस्था होते हुए भी मनोबल के कारण आपके पैर बड़ी तेजी से उठ रहे थे, वे अब आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं । घुटने में गहरा दर्द होने लगा । फिर भी मन को मारकर मार्ग की अनेक कठिनाइयाँ सहती हुई ब्यावर पधारीं । चरितनायिका की दर्शनों की अभिलाषा अब भी जारी है । आपके मन में उत्साह की प्रबल ज्वाला जल रही है । इधर पूज्यश्री के भी फोड़ा ठीक होकर स्वस्थ होने के समाचार मिले । साथ ही यह भी समाचार मिले कि पूज्यश्री प्रवर्तिनीजी से एक बार अवश्य मिलना

चाहते हैं। उन्हें पूज्यश्री ने याद किया है।

चरितनायिका के मन में अब आशा का संचार होगया था। वे सोच रही थीं कि अब तो कार्य जरूर सिद्ध होने वाला है; पर कुदरत आपका साथ नहीं दे रही थी। अन्तराय कर्म के उदय से यह आशा मन में ही विलीन होगई। चरितनायिका के घुटने में दर्द पकड़ा गया। ब्यावर में रह कर काफी उपचार कराने के बाद दर्द कुछ मिटा। चरितनायिका ने विचार किया- "पूज्यश्री से मिलने और दर्शन करने का कैसा अच्छा सुयोग था? पूज्यश्री ने स्वयं फरमाया भी था कि मैं तो अब किनारे बैठा हुआ हूँ मैं अपनी बीमारी की वजह से उधर नहीं आ सकता। अब क्या पता मिलना हो या न हो? परन्तु महासतीजी, चाहें तो पधार सकती हैं।" मिलना जरूर है पर मुझे बड़ा अफसोस है कि मैं नहीं जा सकूँगी। अगर मैं न जा सकूँ तो दूसरी साध्वियों को तो भेज दूँ, वे तो गुरुदेव के दर्शन और सेवा का लाभ उठा लेंगी।" ऐसा सोच कर चरितनायिका ने ब्यावर से ६ साध्वियों को बीकानेर की ओर पूज्यश्री के दर्शनार्थ विहार करवा दिया। पैर में थोड़ा-थोड़ा दर्द होते हुए भी, इस विचार से कि भ्रमण करने से शायद दर्द ठीक हो जाय, आपने अजमेर की ओर विहार कर दिया। अजमेर में कई दिनों तक इलाज करवाने और घूमने से घुटने का दर्द ठीक हुआ। इधर चातुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे। बीकानेर भी इतने थोड़े से दिनों में पहुँचना कठिन था। यह भी विचार था कि घुटने का दर्द रास्ते में हो जाय तो फिर अधबीच में ही रहना पड़ेगा। देवगढ़ के लोगों का चातुर्मास करने के लिए कई वर्षों से आग्रह चल रहा था। देवगढ़ के लोगों में भक्ति-भाव भी काफी था। अतः देवगढ़-संघ के आग्रह पर आपने देवगढ़ की ओर विहार कर दिया। रास्ता बड़ा विकट है, फिर भी चातुर्मास के लिए जाना

ही है ! साहसी वीर दुर्गम घाटियों को देखकर, थककर, मन मसोस कर बैठ नहीं जाता, वह अपना मार्ग तय करके मंजिल पर पहुँच कर ही विश्राम लेता है।

चरितनायिका आगे बढ़ रही हैं। कूकड़ा की दुर्गम घाटी सामने मस्तक उठाए खड़ी है। वृद्धावस्था है, फिर भी साहस के साथ घाटी पार की, उस पार तो देवगढ़ के भावुक नर-नारियों की भीड़ खड़ी थी —आपके स्वागत के लिये। वे उस समय ऐसे लगते थे मानो किसी वीर योद्धा के संग्राम में विजय प्राप्त करने पर स्वागत करने आए हों। चरितनायिका ने भी दुर्गम घाटियों पर विजय प्राप्त करके जय-जय कार के नारों के साथ आषाढ़ शु० ७ के दिन देवगढ़ में प्रवेश किया। देवगढ़-संघ में हर्ष के फौहारे छूटने लगे। सभी लोग उस दिन मांगलिक सुनकर अपने अपने कार्य में लगे। किसे पता था कि यह हर्ष अचानक ही शोक का रूप धारण कर लेगा ? दूसरे दिन अचानक ही भीनासर से ज्योतिर्धर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के दिवगत होने का तार आया। चरितनायिका व सभी साध्वियों को अत्यन्त दु:ख हुआ। जिन आराध्य देव गुरुवर की उपासना करने के लिए आपके मन में बारबार प्रबल-तरंगें उठा करती थीं, आज उनके आकस्मिक अवसान को सुनकर खेद क्यों न होता ?

पूज्यश्री के स्वर्गवास का यह आकस्मिक दु:खद समाचार संघ के लिये वज्रपात के समान था। सारे संघ में शोक का सागर लहराने लगा। देवगढ़ श्रीसंघ को ऐसा लगा मानो उसने समूचे संघ की धरोहर खो दी हो। देवगढ़ में पूज्यश्री के अवसान के कारण एक दिन बाजार बन्द रक्खा गया। शोक सभा की गई जिसमें दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गईं। तीन दिन तक व्याख्यान बंद रहा। चौथे दिन चरितनायिका ने सद्‌गत पूज्यश्री के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि

प्रकट करते हुए कहा—

"महामहनीय गुरुदेव आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज को अचानक ही क्रूर काल ने हमारे हाथों से छीन लिया है। वे जैन समाज के एक प्रकाशमान सूर्य थे। उनके व्यक्तित्व की, उनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और दयावृत्ति की मेरे हृदय पर अमिट छाप पड़ी है। पूज्यश्री स्थानकवासी समाज के एक अजोड़ विद्वान वक्ता और चरित्रशील महापुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन की अमर ज्योति जला कर जैन-धर्म को महान प्रकाश से संसार को जगमगाया है। मैं तो आशा कर रही थी कि उस महापुरुष के पवित्र दर्शनों का लाभ उठाऊँगी, पर हुआ कुछ और ही। जिस बात की सम्भावना नहीं थी, वही आँखों के सामने घटित हो गई। स्थानकवासी ही नहीं परन्तु जैन समाज के विशाल उद्यान में से निष्ठुर काल ने प्रस्फुटित और दिगन्त तक सौरभ विकीर्ण करने वाले सुमन को तोड़ लिया है। सुमन चला गया तो भी उसकी मधुर सुगन्ध तो युग-युग तक कायम रहेगी।

आचार्यश्री ने अपने 'जवाहर' नाम को सार्थक कर लिया था। वे जैन समाज के चमकते रत्न थे। भोली-भाली जनता के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके उन्होंने 'जीवसगा आयरिया' के सिद्धान्त को पूर्णतः चमकाया है। आचार्यश्री ने अपना-सा प्रकाश दीपक की तरह दूसरों में भी पसारा है। उन्होंने अपने महान् तपस्तेज की छाया में युवाचार्यश्री गणेशीलालजी महा० आदि से महान सन्त तैयार किये हैं, जो भविष्य में अधिकाधिक चन्द्रासित होते जाएँगे।

आप जैन समाज में एक "ज्योतिर्धर आचार्य थे। आपकी शैली इतनी चमत्कारपूर्ण थी कि जिस विषय को उठाते उसे आद्योपान्त ऐसा विचित्र करते कि जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती

थी। किसी भी समस्या पर आप सहसा अपनी अनुमति प्रदान नहीं करते थे। बड़ी गम्भीरता पूर्वक विचारने के बाद उस पर अपना निर्णय देते थे। मैंने जब २ आपके दर्शन और सेवा की आप किसी न किसी चिन्तन में डूबे रहते थे।

आत्मनिष्ठ और दूरदर्शी होने के साथ-साथ आपका प्रखर पांडित्य भी इतना उच्चकोटि का था कि जैनेतर विद्वान् भी, जो आपके सम्पर्क में आ जाता था, पूर्ण प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। समाज की अपदशा देखकर पूज्यश्री का चित्त कभी कभी व्यग्र एवं खिन्न हो जाता था। वे अपने जीवन में साधुता व संगठन के पूर्ण पक्षपाती थे।

एक सच्चे साधक का जीवन जैसा होना चाहिए, ऐसे जीवन की झलक मुझे उस महान् विभूति में देखने को मिली। आपने धर्म की रक्षा, और जैन समाज की रक्षा के लिए सुदूर स्थली प्रान्त में परिभ्रमण कर बड़े कष्टों का सामना किया। और जीवन के खुले मैदान में उतर कर दया-दान विरोधी मान्यताओं को खुल कर चुनौतियाँ दीं।

आपकी साहित्य-सेवा भी कम श्लाघनीय नहीं है। श्रावक के बारह व्रत धर्म-व्याख्या इत्यादि ग्रन्थों में अहिंसा और सत्य तथा दशधर्मों का मार्मिक वर्णन हृदय को गद्गद् कर देने वाला है। 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पाविचार' तो आपकी सब से बढ़ कर अमर कृतियाँ हैं। जिसमें जैनधर्म का तलस्पर्शी अध्ययन करके विरोधियों की मान्यताओं का चकाट्य सयुक्तिक उत्तर दिया गया है।

आपका विहार क्षेत्र अत्यधिक विशाल रहा है। आपने अपने जीवन में मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, पञ्जाब प्रांत आदि दूर-दूर प्रदेशों में भ्रमण करके जैन संस्कृति का विशुद्धरूप जनता के समक्ष उपस्थित किया है।

बड़े से बड़े राजा महाराजा, सेठ साहूकार, गाँधीजी, सरदार पटेल व लोकमान्य जैसे देशनेता आदि भी श्रद्धा और स्नेह का अर्घ्य लिए आपकी सेवा में पहुँचे हैं। वे वयोवृद्ध होते हुए भी नूतन दृष्टिकोण के विचारक थे, यह उनके जीवन में सब से बड़ी विशेषता थी।

आचार्यश्री का जीवन अनेक चमत्कारों से भरा पड़ा है। वे सारे संघ के आदरास्पद थे। उनके अनेकानेक गुणों का एक तुच्छ जिह्वा से वर्णन होना शक्य नहीं है। फिर भी आंशिक रूप से मुझे जरूर कहना है कि गुरुदेव आचार्यवर का जैन-संघ पर महान् उपकार है। हमें युग-युग तक उनका पथ प्रदर्शन मिलता रहेगा। संक्षेपतः—उनका जीवन सफल-जीवन था। द्रव्य से मृत्यु होने पर भी उनका भाव जीवन जीवित है। हम मंगल कामना करते हैं कि उस सद्गत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति !!!!

देवगढ़-चातुर्मास में चरित्रनायिका मार्मिक ढंग से ज्ञाता धर्मकथाङ्ग सूत्र सुनाती थीं। और साध्वीश्री कुसुमकुमारीजी (रतलाम वाली) रोचक भाषा में, आधुनिक शैली से हरिश्चन्द्र चरित्र सुनाती थीं। जनता सुनकर बड़ी हर्षित होती थी। धर्म ध्यान भी काफी हुआ। दया, पौषध, पचरंगियाँ आदि भी बहुत हुई थीं।

चातुर्मास में वर्षा की झड़ी लग गई। वर्षा के प्रबलरूप धारण करने पर आसपास के गाँवों के ९२ तालाबों में से पानी फूट निकला। चारों ओर जलमय सृष्टि दिखाई देने लगी। देवगढ़ के विशाल तालाब पर भी इसका असर हुआ। उसने भी अपनी मर्यादा उल्लंघन कर दी। पानी बाँध तोड़ कर जोरशोर से बह निकला। गाँव में पानी ही पानी दिखाई देने लगा। सभी लोग घबराने लगे। करीब तीन सौ मकान गिर गए। सारे गाँव

में कोलाहल मच गया। लोग इधर उधर दौड़ने लगे। परन्तु चरितनायिका अपने उपाश्रय की पहली मंजिल पर अपनी शिष्यामण्डली सहित शान्त भाव से बैठी रहीं। उनके अचल मन में जलकाण्ड कोई भी भयमूलक हलचल पैदा न कर सका। उस समय भी आप निश्चिन्त और धीरजवाली बनी रहीं। आप की यह धैर्यवृत्ति प्रशंसनीय है।

शहर का मुख्य दरवाजा, जो पहले जलकाण्ड के कारण बन्द कर दिया गया था, हाथी पर चढ़ कर खोला गया। पानी अपना मार्ग पाकर चला गया। आपका यह चातुर्मास बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा। आज भी उस बाढ़ को देखने वाले अपनी वाणी पर लाते हैं, और इन महान आत्मा के चरणों में श्रद्धा से झुक जाते हैं।

चातुर्मास के चार ही महीने भक्ति-भाव से भरे हुए रहे। इस तरह सं० २००० का चातुर्मास सफलता के साथ देवगढ़ में व्यतीत हुआ।

चातुर्मास के बाद विहार का दृश्य बड़ा ही हृदय-द्रावक था। लोग आपकी चरित्रनिष्ठा व प्रेमभाव से इतने आकर्षित हो गए थे कि आपको विहार भी कराना नहीं चाहते थे। वे कहने लगे—"आपके शरीर में बुढ़ापे ने काफी कब्जा कर लिया है। लम्बा विहार भी आप से नहीं हो सकता। अतः यहीं स्थिर वास विराज कर हमें कृतार्थ कीजिये।"

चरितनायिका ने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—"आप लोगों का प्रेमाग्रह मैं भूल नहीं सकती। देवगढ़ एकान्त, शान्त और स्थिरवास के उपयुक्त स्थल भी है। परन्तु मेरा यह विचार है कि जहाँ तक शरीर में शक्ति हो, वहाँ तक भ्रमण करना चाहिए। आप लोगों की भक्ति में कोई न्यूनता नहीं है।"

चरितनायिका को पहुँचाने के लिए बहुत दूर तक संघ के

लोग आए। पीपली की घाटी से तो लगभग ६० व्यक्ति राणा वास तक पहुंचाने आए। भावुक-हृदय जनता आपको छोड़ना ही नहीं चाहती थी। पर आप तो अप्रतिबद्धविहारिणी रहीं, जनता आपका मार्ग रोक भी नहीं सकती थी।

राणावास से क्रमश: मरुभूमि में धर्मजल सींचती हुए, मोजत में २१ ठाणा से हो गई थी, कुछ दिन ठहर कर बगड़ी पधारीं। यहाँ सभी १४ साध्वियाँ इकट्ठी हो गई थीं। बगड़ी में भी काफी धर्मोद्योत हुआ। यहाँ से पिपलिया (मारवाड़) में आपका पदार्पण हुआ। पिपलिया के सेठ प्रेमराजजी बड़े श्रद्धालु और धर्मिष्ठ श्रावक हैं। आप स्व० आचार्यश्री के अनन्य भक्त हैं। आप ने अपने गाँव में चरित्रनायिका की काफी भक्ति की। यहाँ से जयतारण में प्रवेश हुआ। जयतारण में मुनिश्री सूरजमलजी म० व चुन्नीलालजी म० के दर्शन हुए। जयतारण में कई दिनों तक ठहरना पड़ा, क्योंकि वृद्धावस्था ने आपको अपना नोटिस कई दिनों से दे रखा था, साथ ही बीच-बीच में वृद्धावस्था अपने भाइयों, घुटने के दर्द आदि को लेकर आजाती तो आगे पैर रखने नहीं देती थी। चरित्रनायिका अपने जीवन के ६६ वर्ष व्यतीत कर चुकी थी। अत: यहीं एक जगह विश्राम किये बिना कोई चारा नहीं था।

पुन ब्यावर में

आपने देखा होगा, सुदूर देशाटन करने वाला यात्री जब थक जाता है तो वह किसी शान्त और उपयुक्त स्थल को देखकर ठहर जाता है। वहीं अपना डेरा डाल देता है। यह क्यों ? इसीलिए कि थकावट दूर होकर फिर शरीर में ताजगी एवं स्फूर्ति पैदा हो जाय और आगे की यात्रा सुन्दर ढग से की जा सके।

चरितनायिका मोक्ष-नगर में प्रवेश करने की अमर अभिलाषिणी जीवन-यात्रिणी हैं। आप कोई साधारण यात्रा करने वाली नहीं, वरन् यथाशक्ति हजारों मील की यात्रा करने वाली हैं। आपकी यात्रा भव्य जनता में धर्म का अनुपम बीज बोने के लिए है। उसमें त्याग और वैराग्य का रस डालने के लिए हैं, और जिस पगडण्डी पर आप चल रही हैं, उस पर चलाने के लिये हैं।

आपकी यात्रा निरर्थक बंजारा भटकने के लिये नहीं है। आपको अपनी संयम-यात्रा करते-करते ५१ वर्ष बीत चुके हैं। अब आपका मन कुछ स्फूर्ति और ताजगी प्राप्त करने के लिए कहीं विश्रान्ति लेना चाहता है। लेना भी चाहिए। शरीर रूप रथ दुरस्त हुए बिना जीवन-यात्रा होगी किसके द्वारा ?

ब्यावर की श्रद्धालु जनता इस महान् यात्रिणी को अपने नगर में विश्राम लेने के लिए प्रार्थना कर रही है। ब्यावर निवासियों का कई वर्षों से निरन्तर स्थिरवास के लिये आग्रह चल रहा था। चरितनायिका अब भी ब्यावर में पदार्पण करतीं तो ब्यावर के भक्त अपना आग्रह जारी रखते। देवगढ़ में भी साध्वी श्री कुंकु बाई की दीक्षा के अवसर पर भी ब्यावर के भक्त कस्तुरचन्दजी कोठारी, अमरचन्दजी छिमेसरा, मांगीलालजी कोठा, शोभमलजी ओस्तवाल आदि कई श्रावकों ने ब्यावर के स्थिरवास के लिए विनति की थी। इसी तरह देवगढ़, रतलाम, जावरा, निम्बाहेड़ा आदि संघों की भी अपने यहाँ स्थिर-निवास करने की आग्रह भरी प्रार्थना थी।

ब्यावर-संघ सभी तरह से समर्थ है। यह क्षेत्र भी मारवाड़ का केन्द्रस्थल है। चरितनायिका का कार्य एक जगह तो था नहीं। उनके हाथ में सम्प्रदाय की बागडोर है, अतः जहाँ साध्वी संघ में कोई अव्यवस्था या अड़चन पड़े वे यहीं से सभी गति विधि जान कर उसे सुलझा सकती हैं। ब्यावर में यह सब सुलभ था। ब्यावर में आपकी पूर्व-प्रवर्तिनीजी श्रद्धेय श्रेयकुमारीजी म० भी यहाँ स्थिरवास रह चुकी हैं।

मयवारण से विहार होगया है। चरितनायिका की अधिक चलने की शक्ति नहीं रही है, एक प्रकार से वह क्षीण-सी होरही है। अस्वस्थ भी रहने लगी हैं। फिर भी साध्वी-संघ की सेवा को सुन्दर ढंग से लेती हुई वृद्ध-प्रवर्तिनीजी समय से युद्ध किये ही जारही हैं। धर्मवीर चरितनायिका के लिए समय के आगे घुटने टेक देने की कल्पना तक असम्भव होरही है। वृद्धावस्था ने शरीर पर पूर्णतः अधिकार जमा लिया है, फिर भी उत्साह की ज्योति से जगमगाते हुए मन ने अभी हार नहीं मानी है।

इधर ब्यावर की जनता, को पता लगा कि प्रवर्तिनीजी

पधार रही हैं, तो उनके मन में हर्ष उमड़ पड़ा। उत्साह से भरे हुए बहुत से भाई बहन आपके स्वागतार्थ पहुँचे। ब्यावर के बाहर महावीरगंज में पैर रखते ही, पन्नालालजी कॉंकरिया की माताजी व स्वयं उन्होंने महावीरगंजस्थित अपने मकान में ठहरने के लिए आग्रह किया। उनकी विनति मानकर आप महावीरगंज में ही ठहर गई।

यहाँ भी ब्यावर-संघ ने स्थिरवास करने की प्रार्थना नहीं छोड़ी। आग्रह चरमसीमा पर पहुँच गया। चरित्रनायिका ने ब्यावर-संघ का अत्यन्त आग्रह होने पर भी स्थिरवास (स्थानापति के रूप में निवास) की प्रार्थना स्वीकृत न की। यही कहा कि अच्छा, जब तक अशक्ति है, तब तक जितना ठहरा जायेगा ठहरूँगी। संघ के लिए इतना-सा वचन पाने में भी बहुत बड़ी सफलता थी।

इधर ब्यावर शहर में इगामकुमारीजी आर्या, तथा सुगुनकुमारीजी आर्या आदि विराज रही थीं। वे आपके दर्शन के लिए आई। संयोगवश दो तीन रोज से यहाँ साध्वीश्री अब्बाव जी अचानक बीमार थीं। चरित्रनायिका को सतियों के द्वारा जब यह पता लगा कि अब्बावजी आर्या को बहुत तकलीफ है तो साध्वियों के इन्कार करने पर भी दोपहर की कड़ी धूप की परवाह न करती हुई शहर में वैशाख शु० १० को करीब दो बजे पधार गई। उस समय शहर में आप सहित ३१ साध्वियाँ हो गई थीं। चरित्रनायिका ने आते ही साध्वीश्री अब्बावजी की हालत अत्यन्त बिगड़ी हुई देखी। उन्हें कुछ त्याग करा कर, संथारे के लिए कहने पर संथारा करा दिया। साध्वीजी मरणासन्न थी ही। अतः उसी दिन वे कालधर्म को प्राप्त हुई।

चरित्रनायिका ने कुछ दिन नयावास में अपना निवास रक्खा। बाद में श्रीपन्नालालजी कॉंकरिया ने अपने दालान में

ठहरने के बार बार आग्रह करना शुरू किया। यह देखकर चरित-नायिका कौंकरिया-शमशान में साध्वी-मण्डली सहित पधार गई।

व्यावर के संघ में उत्साह का पार नहीं था। सभी श्रावक श्राविकाएँ भव्य मुखमुद्रा देखकर हर्ष से आन्दोलित हो उठे थे। आपको अपने शहर में विराजते देख वे धन्य समझ रहे थे। चातुर्मास का समय नजदीक आ रहा था। व्यावर-संघ ने आप के कानों में अपनी पुकार डाल दी, कि चातुर्मास तो आपका यहीं होगा। सं० २००१ का चातुर्मास हो ही गया। इस चातुर्मास में आप १२ ठाणा से थीं। इधर ठाणापति सन्त विराजते थे। उनका व्याख्यान प्रातःकाल होता था। आप भी कभी-कभी यथासमय, यथाशक्ति व्याख्यान में पधारतीं। साध्वीश्री कुँकुँबाई जी की दीक्षा के अवसर पर व्यावर के लोग देवगढ़ आए थे तो उन्होंने चरितनायिका का व्याख्यान सुनकर यह उद्गार निकाले कि—"ऐसे तात्त्विक और वैराग्योत्पादक व्याख्यान साध्वियों के मुँह से सुनने का काम तो इस बार ही पड़ा है। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी रोचक है।"

लोगों को आपकी मधुरवाणी सुनने की बड़ी लालसा रहा करती थी। उन्होंने दोपहर का व्याख्यान सुनाने का आपसे आग्रह किया। आपने संघ का आग्रह देखकर यही फरमाया कि मुझ से बन सका तो मैं, नहीं तो विदुषी आर्याश्री सगीनाकुमारी जी, सम्पतजी आदि में से आपको कोई न कोई चरित्र सुनायेंगी। संघ के लोग यही चाहते थे। तदनुसार आपकी सुशिष्या विदुषी आर्याश्री सगीनाकुमारीजी ने आधुनिक शैली से 'मदनरेखा चरित्र' सुनाना प्रारम्भ किया। बीच-बीच में कभी-कभी आप भी अपनी माधुर्यरस परिपूर्ण वाणी की झाँकी दिखा देती थीं। श्रावक और श्राविकाएँ सुन कर मन्त्रमुग्ध से हो जाते थे। पर्युषण पर्वों में तो आप ही की वाणी-वीणा बजती थी। इस समय व्यावर के

आसपास व ब्यावर के लोग झुण्ड के झुण्ड व्याख्यान में एक-त्रित हो जाते थे। धर्म ध्यान में लोगों की तीव्र प्रगति रही। श्रावक-श्राविकाओं, और साधु-साध्वियों में तपस्या का भी ठाठ लगा रहा।

चातुर्मास में ही साध्वी श्री लछमाजी, व चाँदकुँवरजी वृद्धावस्था के कारण अस्वस्थ रहने लगीं। तबियत बिगड़ती देख कर दोनों को चरितनायिका ने संथारा कराकर परलोक-पाथेय पल्ले बँधाया। श्री लछमाजी आर्या को ६ दिन का व श्री चाँद कुँवरजी को आधे दिन का संथारा आया। कालधर्म को प्राप्त हुई। ब्यावर-संघ ने इनका अन्तिम संस्कार किया।

इस तरह सं २००१ का चातुर्मास ब्यावर में ही व्यतीत हुआ।

चातुर्मास के बाद आपका विहार शारीरिक अशक्तता के कारण नहीं हुआ। ऐसी हालत में विहार होना भी न चाहिये। ब्यावर-संघ यही चाहता था कि आप कहीं न जाएँ, यहीं विराजी रहें।

चातुर्मास में ही विदुषी साध्वी श्री सुगुनकुमारीजी (ब्यावर वालों) के पास ब्यावरवासी श्रीयुत् मिश्रीलालजी कोसीकी धर्मपत्नी श्रीमती चादामबाईजी थोकड़े, बोलचाल सीखती थीं। अपने परिवार के संस्कार के कारण, उनके हृदय में वैराग्य भाव उद्दीप्त हो उठा। दीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध होगई। उनके ससुरालवाले देवर चेयरचन्दजी कोसी से आज्ञा पत्र प्राप्त किया। और स० २००१ मार्गशीर्ष शु० १२ को शुभसमय में श्रीमती प्रवर्तिनीजी म० की निश्राय में वयोवृद्ध श्री मोतीलालजी महाराज के द्वारा बड़े समारोह के साथ दीक्षाविधि सम्पन्न हुई।

चरितनायिका शरीर से तो ब्यावर में विराजी हुई हैं, वृद्धावस्था ने उन्हें इस छोटे-से घेरे में अवरुद्ध कर लिया है;

परन्तु आपका कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वह कभी क्षुद्र घेरे में रुका नहीं रहा। वह तो ब्यावर के बाहर दूर-दूर, तक फैला हुआ है। प्रवर्तिनी एक कुशल वैद्य की भाँति साध्वी-संघ की नाड़ी हर-समय टटोलती रहती हैं। उसकी प्रत्येक गतिविधि से परिचित रहती हैं। ऐसा न होतो साध्वी संघ का संचालन ही आप कैसे कर सकतीं हैं? मारवाड़ में, मेवाड़ में, या किसी भी प्रान्त में साध्वी-संघ सम्बन्धी कोई उलझन खड़ी होती तो वह आपके चरणों में उपस्थित होती, और किसी न किसी तरह सुलझ जाती। ब्यावर-संघ में कोई भी महत्त्वपूर्ण योजना होती उसमें आपकी सम्मति ली जाती रही। जैन-समाज, आपकी कुशल कार्य शक्ति का पूरा-पूरा लाभ उठा रहा है।

ब्यावर नगर में आप एक हरे-भरे वृक्ष के रूप में हैं। श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज के शब्दों में—'मार्ग के किनारे का हरा भरा वृक्ष अपना, कितना महत्त्व पूर्ण अस्तित्व रखता है? ऊपर शाखा-प्रशाखाओं पर पक्षियों की चहल-पहल तो, नीचे आने जाने वाले थके-मान्दे यात्रियों की चहल पहल! शीतल छाया देखकर हर किसी यात्री का मन होता है, कुछ देर विश्रान्ति करने के लिए। और जब वह विश्राम करता है तो नई-स्फूर्ति एवं नई चेतना प्राप्त कर लेता है। बाहर तन का तो अन्दर मन का, हर कोना शान्त एवं प्रशान्त हो जाता है। कुछ महापुरुष भी इसी प्रकार का शीतल एवं मधुर जीवन रखते हैं। उनके पास हर कोई साधक आध्यात्मिक विश्रान्ति अनुभव करता है, फलतः रागद्वेष में जलते हुए मन को परम शीतलता प्राप्त होती है।'

उपाध्यायश्रीजी के इन शब्दों में यदि प्रवर्तिनी का जीवन देखा जाय तो अधिकांश-रूप से घटित होता है।

आपके ब्यावर में विराजने पर कितने ही मुनिराज व

साध्वियाँ आप से मिलीं और सबने आपके प्रति हार्दिक प्रसन्नता अनुभव की। आपका उदार-जीवन सभी के प्रति स्नेह का केन्द्र रहा है।

विक्रम संवत् २००१ के फाल्गुन महीने में बीकानेर की ओर से पूज्यश्री जवाहरलालजी म० के सुशिष्य पं० रत्न मुनिश्री भीमजी महाराज ब्यावर पधारे। आपसे मिल कर उन्होंने बड़ी सद्भावना प्रदर्शित की। आपको पण्डित मुनिश्री के दर्शन कई वर्षों से नहीं हुए थे, अत: दर्शन कर बड़ी खुशी हुई। उनकी कुछ दिन सेवा व व्याख्यान का लाभ उठाया।

जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म० के दिवंगत हो जाने पर संघ का नेतृत्व युवाचार्य पं० मुनिश्री गणेशीलालजी म० के सुयोग्य हाथों में आ गया था। आप बड़े ही सरल सौम्य और विद्वान् आचार्य हैं। साथ ही आप बड़े प्रभावशाली और विचारक भी हैं। लेखक तो स्वयं उन्हीं का शिष्य है। इसके ऊपर तो गुरुदेव का महान् उपकार है। संसार के जटिल जाल से निकाल कर मुनि-पद के योग्य बनाने में अपने महान् परिश्रम किया है। अब भी आपकी लेखक पर महती कृपा दृष्टि है।

हाँ, तो ब्यावर-संघ कई वर्षों से लगातार महानुभाव आचार्यश्री के चातुर्मास की विनति कर रहा था। श्रीसंघ चिरकाल से इस प्रतीक्षा में था कि किसी तरह ब्यावर का भाग्य चमके और पूज्यश्री चौमासा करने के लिये पधारें। भक्तों के हृदय की प्रबल भावना भक्ति पात्र को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। इधर चरितनायिका की भी प्रबल इच्छा थी कि आचार्य श्री का चौमासा हो तो दर्शन और सेवा का लाभ मिले। आपकी प्रबल भावना का असर कहें, चाहे ब्यावर के श्रीसंघ की भक्ति का असर कहें। बड़ी दौड़ धूप के बाद सं० २००२ का चातुर्मास ब्यावर में स्वीकृत हो गया। ब्यावर वाले गोगोलाव में मुनिश्री

इन्द्रचन्दजी व हनुमानमलजी की दीक्षा के अवसर पर चौमासे की जोरशोर से विनति करने गये। उधर गोगोलाव श्रीसंघ, व बगड़ी श्रीसंघ की ओर से सेठ लक्ष्मीचन्दजी धाड़ीवाल की भी आग्रह पूर्ण प्रार्थना थी। अन्ततोगत्वा, पूज्यश्री ने यथासमाधि ब्यावर चातुर्मास के लिये अपना निर्णय दे दिया। पूज्यश्री के चातुर्मास की स्वीकृति सुनकर चरितनायिका को इतनी प्रसन्नता हुई जैसे किसी तीन दिन के भूखे को स्वादिष्ट भोजन मिलने से होती है। तब लेखक भी गुरुवर्य आचार्यश्री के साथ चातुर्मास के लिए ब्यावर आया था।

पूज्यश्री ने ब्यावर की ओर विहार कर दिया था। चरितनायिका ने भी पूज्यश्री के स्वागत के लिए अपनी शिष्या सुगुनकुमारीजी आर्या आदि ठाणा ४ को ब्यावर व जैतारण से भेज दिया। नीमाज में उन्हें पूज्यश्री व साधुमण्डली के दर्शन हुए। इधर ब्यावर की जनता ने सेंदड़ा के आसपास पूज्यश्री का आगमन सुना तो एकदम बरसाती नदी की भाँति उमड़ पड़ी। पर पूज्यश्री को इतना आडम्बर पसन्द कहाँ था? पूज्यश्री सेंदड़ा पधारे उस दिन उपवास था, फिर भी इस आडम्बर की झटपट से बचने के लिये आपने तीन-चार सन्तों को लेकर एकदम सन्ध्या विहार कर दिया। और लोमाणी की बगीची में आकर ठहरे। सभी लोगों को वहाँ से लौटना पड़ा। किसी को रास्ते में दर्शन हुए, किसी को पूज्यश्री के निवास स्थल पर दर्शन हुए। आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को प्रातःकाल ही जयध्वनि के साथ पूज्यश्री ने ब्यावर में पदार्पण किया। चरितनायिका ने पूज्यश्री का गुणगान किया। वहाँ पधारने पर पूज्यश्री १४ ठाणों से हो गये थे। इधर चरितनायिका का चातुर्मास भी १४ ठाणों से हुआ। ब्यावर के लोगों के मन में बड़ा उत्साह और भक्तिभाव था। चरितनायिका ने पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री के दर्शन कर नेत्र सफल

किये। लेखक को तो ब्यावर चातुर्मास में ही चरितनायिका से मिलने का पहला प्रसंग मिला। लेखक के हृदय में तभी से चरित नायिका के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान है।

चातुर्मास में पूज्यश्री व्याख्यान के प्रारम्भ में प्रतिदिन प्रार्थना फरमाते, फिर 'अनाथी मुनि' के अध्ययन पर हृदयस्पर्शी विवेचना करते। तत्पश्चात् 'अञ्जना चरित्र' अत्यन्त भाव पूर्ण शब्दों में सुनाते। चरितनायिका भी अपनी शिष्यामण्डली सहित व्याख्यान में पधार कर व्याख्यान मण्डप की शोभा बढ़ाती थीं। पूज्यश्री की अपूर्व वाणी सुनकर चरितनायिका को ऐसा लगता मानो अमृतधारा बरस रही हो। आचार्यश्री ने चातुर्मास उठते उठते जब महासती रुक्मिणी का चरित सुनाया तो जनता की आँखों से आँसू बहने लगे। चरितनायिका चातुर्मास के अन्तिम दिनों में व्याख्यान में न पधार सकीं, इसका उन्हें बड़ा खेद रहा।

आश्विन मास में आपको अचानक बुखार आने लगा। मामूली बुखार की तो आपके दिल में कोई गणना ही नहीं थी। मामूली बुखार के समय भी आप पूज्यश्री की सेवा नहीं छोड़ती थीं। एक दिन आपको सेवा में न आए देखकर पूज्यश्री ने साध्वियों से पूछा—'आज प्रवर्तिनीजी क्यों नहीं आईं? क्या उनकी तबियत खराब है?' सतियाँ कहने लगीं—'आज उनकी तबियत नरम थी इस कारण न पधार सकीं।' इतने में तो चरित नायिका कुछ सतियों को साथ में लेकर पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधार गईं। पूज्यश्री से कुछ बात-चीत करके थोड़ी देर बाद वापिस स्थान पर पधार गईं। पूज्यश्री ने अनुमान लगा लिया कि आज प्रवर्तिनीजी के शरीर में कुछ ज्यादा असमाधि मालूम पड़ती है, इसी कारण जल्दी चली गईं।

उपाश्रय में आते ही आपके श्वास का वेग बढ़ने लगा।

लगभग ५ बजे आपने दवा ली। दवा ने कोई प्रभाव नहीं दिखाया। श्वास का दौरा तेजी से घुड़दौड़ लगाने लगा। शरीर की हालत बेहद खराब होगई। आपके जीवन की आशा प्रायः सभी को छूट गई। पूज्यश्री पधारे उस समय आप बेभान-सी होगई थीं, और शय्या पर ही छटपटा रही थीं। सभी साध्वियाँ यह देख कर घबरा रही थीं। साध्वियों ने पूज्यश्री से आपको त्याग-प्रत्याख्यान करवाने के लिए कहा। पूज्यश्री ने आपको बेचैनी-हालत में देख कर थोड़ी देर का त्याग कराया तत्पश्चात् पूज्यश्री पधार गये।

ब्यावर के कुछ भाइयों ने ऐसी स्थिति देख कर डॉक्टरजी को बुलवाया। डॉक्टरजी ने रोग का इतिहास सुन कर तथा जाँच करके एक इंजेक्शन लगाया। कहा—'हालत तो खतरनाक ही है, पर यदि इस इंजेक्शन से १२ बजे के बाद पेशाब की हाजत होजाय तो समझ लेना, हालत सुधर जायगी। सभी साध्वियाँ आपकी सेवा में एकनिष्ठा से लगी हुई थीं। बम्बई वाली केसरबहन, रतलाम वाली सेठानी आनन्दकुंवरबाई ने १२ बजे तक सेवा में रह कर जागरण किया। बारह बजे बाद आप कुछ बोलीं, लघुशंका के लिए पात्र मांगा। साध्वियों ने व बहनों ने समझा अब तबियत ठीक है। पूज्यश्री ने भी बाहर से तबियत का हाल पुछाया। जैन-संघ के परम सौभाग्य से कुछ शान्ति हुई। फिर तो सेवासमिति के वैद्यजी का इलाज चलता रहा। करीब २४ दिन तक साध्वियों ने सेवा की। दवा सफल हुई। स्वास्थ्य ठीक हुआ। परिवर्तनायिका को मथारा (अनशन) का प्रसंग नहीं आया। उसे अभी आना भी न चाहिए था। सत्पुरुष जब तक रहते हैं, तब तक समाज का कल्याण है। महान् व्यक्तियों का अस्तित्व ही समाज को प्रेरणा देने वाला होता है।

शरीर में अभी तक कमजोरी बहुत बढ़ी हुई थी। साध्वियाँ सेवा करने में दत्तचित्त थीं। वे आपकी इतनी सेवा करके मन में हैरानी नहीं अनुभव करती थीं। दूसरे दिन फिर पूज्यश्री दर्शन देने पधारे। चरितनायिका ने पूज्यश्री से नम्र निवेदन किया—कि "मेरा शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है। इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि इस भौतिक शरीर को छोड़कर प्राण-पखेरु कब उड़ जाँय। मेरी अवस्था करीब ७० वर्ष की है, दीक्षा लिए भी ५० वर्ष से अधिक हो गए हैं। सं० १६७८ से श्रीसंघ ने तथा पूज्यनीया प्रवर्तिनीजी मेय-कुमारीजी म० ने सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे निबल कन्धों पर डाल दिया था। मेरी इच्छा है कि मैं अपने इस गुरुतर भार को किसी न किसी योग्य साध्वी के हाथों में सौंप कर निश्चिन्त हो जाऊँ। अन्तिम जीवन की सुरीत्या साधना करूँ।'

पूज्यश्री बड़े दूरदर्शी महापुरुष हैं। वे जानते थे इस महा शक्ति के हाथों से संघ का काम सुचारु रूप से चल रहा है। अब अचानक ही तबियत खराब हो जाने व वृद्धावस्था में इनके रोगों का आक्रमण हो जाने की सम्भावना के कारण आपके मन में ऐसा संकल्प पैदा हुआ है। पूज्यश्री ने आपके विचारों की सराहना की और यह भी कहा कि इस विषय में आप काफी अनुभव रखती हैं। सम्प्रदाय की योग्य साध्वियों में से किसी न किसी को चुन लें; जो धैर्यशालिनी हो, प्रकृति की गम्भीर हो, समाज की गतिविधि को जानने वाली हो, प्रभावशालिनी एवं विदुषी हो। ऐसी साध्वी से ही समाज और सम्प्रदाय का गौरव अक्षुण्ण रह सकता है। आपने उस समय पूज्यश्री के सामने सम्प्रदाय में उदीयमान कई साध्वियों का नाम प्रस्तुत किया। पूज्यश्री ने इतना ही फरमाया कि जिसे आप चुनना चाहती हैं उससे पूछताछ करके चाहे तब उत्तराधिकार दे सकती

हैं। परिसनायिका ने पूज्यश्री के कथनानुसार पूछताछ कर भावी प्रवर्तिनी के विषय में स्थूल रूप से संकल्प कर लिया।

परिसनायिका का यह संकल्प कितना स्तुत्य है? जीवन के अमर राहगीर को अपनी यात्रा के लिए पहले से ही तैयारी रखनी चाहिये। न मालूम कब क्या होजाय? सच्चा यात्री प्रलोभन में फंस कर नहीं बैठ जाता, वह अपनी मंजिल तक पहुँचता है। परिसनायिका को अपनी पदवी के लिये इतना मोह नहीं है, वे तो पद लेकर काम करने में ही अपना महत्व समझ रही हैं। काश! आज समाज के उच्च पदों पर अधिष्ठित नेता लोग इस महत्वशाली आदर्श को ग्रहण करते!

हाँ, तो परिसनायिका अभी तक पदवी पाकर किसी विकट प्रसंग से घबराई नहीं! पूज्यश्री आपका स्वास्थ्य खराब देखकर लगातार लगभग सात-आठ दिन तक दोनों समय दर्शन देने पधारते। पूज्यश्री का आप पर पूर्ण अनुग्रह रहा। परिसनायिका के लिए पूज्यश्री कई बार निम्नाशय के उद्गार निकालते—"आप तो समाज में एक अनुभवी एवं वयोवृद्ध महासती हैं। आपके अस्तित्व से समाज का भाग्योदय है। मैं तो आपके सामने बालक हूँ, आपके सामने ही दीक्षित हुआ हूँ। आप मेरे लिए एक श्रद्धास्पद साध्वी हैं।"

चातुर्मास में साधुओं और साध्वियों में तपस्या काफी हुई। त्याग प्रत्याख्यान व शील के खन्ध भी काफी हुए। वयोवृद्ध मुनिश्री किशनलालजी महाराज ने ३४ की तपस्या की। तपस्वी फौजमलजी म० व मूलचन्दजी महाराज तथा मुनि ईश्वरचन्दजी म० ने काफी तपस्या की। परिसनायिका ने भी कई बेले तेले व ११ का तप किया।

चातुर्मास में पूज्यश्री के पैरों में बहुत दर्द बढ़ गया था।

अत: चौमासे बाद यहाँ से विहार कर छगन रोज सेठ शंकरलाल जी मुणोत की बगीची में विराजे। विहार का दृश्य बड़ा ही भव्य था। चरितनायिका अपनी साध्वी-मण्डली सहित विहार कराने पधारीं। विहार में लगभग ७-८ हजार जनता जय-जय कार करती हुई साथ में आरही थी। वहाँ से दूसरे दिन जैन गुरुकुल में पधारे। पैर में दर्द के कारण १८ दिन करीब गुरुकुल में विराजे। चरितनायिका ने गुरुकुल निवास कर पूज्यश्री की सेवा का लाभ उठाया। बाद में पूज्यश्री का विहार अन्यत्र हो गया। आप एक दिन बालमन्दिर में ठहर कर दूसरे दिन शहर में पधार गई। पूज्यश्री के विहार के समय चरितनायिका व साध्वियोंने भी अपनी मधुर आवाज से पूज्यश्री का गुणगान किया। चातुर्मास में पूज्यश्री के पदार्पण से बड़ा आनन्द रहा।

इस तरह स० २००२ का चातुर्मास चरितनायिका के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा। परन्तु शारीरिक कमजोरी बढ़ने के कारण कोई न कोई रोग अपना मौका देखकर आक्रमण कर बैठता था।

पूज्यश्री क विहार करने के बाद भी तीन विद्यार्थी सन्त ब्यावर में ही वयोवृद्ध मुनिश्री मोहनलालजी म० की सेवा में अध्ययनार्थ रह गये थे। आपका उदार जीवन विद्यार्थी सन्तों के प्रति स्नेह से सना हुआ था। जब कभी मिलतीं तो बड़ी नम्रता से झुक जातीं। विद्यार्थी सन्तों के हृदय पर भी आपने अपनी उदारता और स्नेह शीलता की छाप अङ्कित कर दी।

ब्यावर नगर आपके विराजने से साध्वियों क लिए एक संक्रान्त-सा बन गया है। जहाँ दूर-दूर से आकर साध्वियाँ आपके पास स्नेह और शान्ति का मधुर जल पान कर आगे बढ़ती हैं। वे आपकी छत्रछाया में कुछ दिन रह कर अतीव प्रसन्नता का

अनुभव करतीं। कई बहनें आपके पास ज्ञान ध्यान सीखकर बड़े आनन्द की अनुभूति करती। वे आपके प्रसन्नवदन, प्रेम पूर्ण व्यक्तित्व से आकर्षित होकर आपका आदर और स्वागत करतीं। इस दुःख दर्द से भरे संसार में जो दूसरों को क्षण भर के लिए भी स्वर्गीय आनन्द का स्वाद चखा सकेगा, उसका आदर और स्वागत कौन करना न चाहेगा ?

ब्यावर निवासी श्रीमान मिश्रीलालजी बोहरा की सुपुत्री सम्पतकुमारीजी कई वर्षों से वैराग्यरस में भूल रही थीं। चरित नायिका की शिष्याश्री मगीनाकुमारीजी सं० १९९६ में जयपुर चौमासा बिता कर मालवा देश में पधारीं। तब से सम्पतकुमारी जी को वैराग्य का रंग लग चुका था। आपका विवाह सं० १९९० में इन्दौर के श्रीयुत् कमलकालजी श्रीमाल के साथ कर दिया था। दुर्भाग्य से विवाह होने के २॥ साल बाद ही आपके पति का देहान्त हो गया। वैराग्य की जागृति होने पर आपने अपने पिताजी से दीक्षा की आज्ञा माँगी। उन्होंने कई वर्षों तक कसौटी करके आपको आज्ञा-पत्र लिख दिया। तदनुसार ब्यावर ग्राम के लोगों का आग्रह होने पर चरितनायिका की आज्ञा से ब्यावर गाँव में श्रीमती मेहताबकुमारीजी आर्या के कर-कमलों द्वारा सं० २००१ आषाढ़ कृ० १० को आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। चरितनायिका ने ब्यावर से ६ साध्वियाँ दीक्षा के लिए भेजी थीं। नवदीक्षिता शिष्या सहित सभी साध्वियाँ आपके पास लौट आईं।

इसके बाद चरितनायिका ने कई साध्वियों को भिन्न भिन्न क्षेत्रों में चातुर्मास के लिये भेज दिया। सं० २००१ का आपका चातुर्मास ब्यावर नगर में ही बीता।

संवत् २००४ में आपकी आज्ञानुवर्तिनी श्री वल्लूजी आर्या की तबियत अचानक बिगड़ गई। उन्हें संग्रहणी की

बीमारी हो गई। आखिरकार उसी बीमारी के कारण उनका देहावसान हो गया। ६ दिन का संथारा आया था।

सं० २००५ में ब्यावर शहर में पूज्यश्री हस्तिमलजी म० चातुर्मास के लिये पधारे। उस समय चरितनायिका के घुटनों में दर्द ज्यादा रहता था। पूज्यश्री से आपका पहली बार मिलन सेठाणा गाँव में हो गया था, वे आपकी प्रकृति, आपके व्यक्तित्व से काफी परिचय हो गए थे। और आपको दर्शन देने के लिए पधारे थे। आप वृद्ध होते हुए भी एक दिन स्वयं 'कुन्दन-भवन' में पूज्यश्री से मिलने पधारीं। पूज्यश्री ने आपसे मिलकर हार्दिक प्रसन्नता अनुभव की। चातुर्मास के दिन सद्भावनाओं में गुजरे। कई बार आप अपनी शिष्याओं को पूज्यश्री के दर्शन करने भेज देतीं। कभी-कभी शास्त्रीय प्रश्न भी पुछवा लेतीं। एक दिन चातुर्मास में, अकस्मात् आपका जीव घबराने लगा। एक दो कै हुई। चक्कर आने लगे। चार पाँच दिनों तक इस तरह की असमाधि रही। पूज्यश्री से निवेदन करने पर वे करीब चार पाँच बार दर्शन देने पधारे। दिल में बेचेनी होने पर भी आपकी गुणग्राहकता मधुरता और साहसीपन देख कर पूज्यश्री बड़े प्रभावित हुए।

स० २००६ में चातुर्मास करने के लिए पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० पधारे। उन्होंने सुना कि ब्यावर में प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी विराज रही हैं। वे घुटने के दर्द के कारण नहीं आ सकती हैं; तो स्वयं कोंकरिया बाजार में पधार कर उन्होंने दर्शन दिये। पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० बड़े शान्त स्वभावी और अनुभवी सन्त हैं। आपने चरितनायिका की कोमलता, विनयशीलता आदि देखकर कहा—"आपका और मेरा नाम तो एक ही है। वास्तव में जैसा आपका नाम है वैसी ही आनन्द

अनुभव करतीं। कई बहने आपके पास ज्ञान ध्यान सीखकर बड़े आनन्द की अनुभूति करतीं। वे आपके प्रसन्नवदन, प्रेम पूर्ण व्यक्तित्व से आकर्षित होकर आपका आदर और स्वागत करतीं। इस दुःख, दर्द से भरे संसार में जो दूसरों को क्षण भर के लिए भी स्वर्गीय आनन्द का स्वाद चखा सकेगा, उसका आदर और स्वागत कौन करना न चाहेगा?

ब्यावरा निवासी श्रीमान् मिश्रीलालजी बोहरा की सुपुत्री सम्पतकुमारीजी कई वर्षों से वैराग्यरस में झूल रही थीं। चरित नायिका की शिष्याश्री नगीनाकुमारीजी सं० १९९६ में जयपुर चौमासा बिता कर मालवा देश में पधारीं। तब से सम्पतकुमारी जी को वैराग्य का रंग लग चुका था। आपका विवाह सं० १९९० में इन्दौर के श्रीयुत् मन्नालालजी श्रीमाल के साथ कर दिया था। दुर्भाग्य से विवाह होने के २॥ साल बाद ही आपके पति का देहान्त हो गया। वैराग्य की जागृति होने पर आपने अपने पिताजी से दीक्षा की आज्ञा माँगी। उन्होंने कई वर्षों तक कसौटी करके आपको आज्ञा-पत्र लिख दिया। तदनुसार ब्यावर ग्राम के लोगों का आग्रह होने पर चरितनायिका की आज्ञा से ब्यावर गाँव में श्रीमती मेहताबकुमारीजी आर्या के कर-कमलों द्वारा सं० २००३ आषाढ़ कृ० १० को आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। चरितनायिका ने ब्यावर से ६ साध्वियाँ दीक्षा के लिए भेजी थीं। नवदीक्षिता शिष्या सहित सभी साध्वियाँ आपके पास लौट आईं।

इसके बाद चरितनायिका ने कई साध्वियों को भिन्न भिन्न क्षेत्रों में चातुर्मास के लिये भेज दिया। सं० २००३ का आपका चातुर्मास ब्यावर नगर में ही बीता।

संवत् २००४ में आपकी आज्ञानुवर्तिनी श्री कस्तूरीजी आर्या की तबियत अचानक बिगड़ गई। उन्हें संग्रहणी की

बीमारी हो गई। आखिरकार उसी बीमारी के कारण उनका देहावसान हो गया। ६ दिन का संथारा आया था।

सं० २००५ में ब्यावर शहर में पूज्यश्री हस्तिमलजी म० चातुर्मास के लिये पधारे। उस समय चरितनायिका के घुटनों में दर्द ज्यादा रहता था। पूज्यश्री से आपका पहली बार मिलन जेठाणा गाँव में हो गया था, वे आपकी प्रकृति, आपके व्यक्तित्व से काफी परिचय हो गए थे। और आपको दर्शन देने के लिए पधारे थे। आप दर्द होते हुए भी एक दिन स्वयं 'कुन्दन-भवन' में पूज्यश्री से मिलने पधारीं। पूज्यश्री ने आपसे मिलकर हार्दिक प्रसन्नता अनुभव की। चातुर्मास के दिन सद्भावनाओं में गुजरे। कई बार आप अपनी शिष्याओं को पूज्यश्री के दर्शन करने भेज देतीं। कभी-कभी शास्त्रीय प्रश्न भी पुछवा लेतीं। एक दिन चातुर्मास में, अकस्मात् आपका जीव घबराने लगा। एक दो कै हुई। चक्कर आने लगे। चार पाँच दिनों तक इस तरह की असमाधि रही। पूज्यश्री से निवेदन करने पर वे करीब चार पाँच बार दर्शन देने पधारे। दिल में बेचैनी होने पर भी आपकी गुणग्राहकता मधुरता और साहसीपन देख कर पूज्यश्री बड़े प्रभावित हुए।

स० २००६ में चातुर्मास करने के लिए पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० पधारे। उन्होंने सुना कि ब्यावर में प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी विराज रही हैं। वे घुटने के दर्द के कारण नहीं आ सकती हैं, तो स्वयं कोंकरिया दालान में पधार कर उन्होंने दर्शन दिये। पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० बड़े शान्त स्वभावी और अनुभवी सन्त हैं। आपने चरितनायिका की कोमलता, विनयशीलता आदि देखकर कहा—"आपका और मेरा नाम तो एक ही है। वास्तव में जैसा आपका नाम है वैसी ही आनन्द

मूर्ति हैं। आज मुझे आप जैसी महाभाग्यवती सती के दर्शन
हुए हैं।" चरित्रनायिका ने यह सुनते ही कहा—आप मेरे जैसी
तुच्छ संघ सेविका की प्रशंसा कर रहे हैं। मैं ऐसी नहीं हूं।

प्राय: चारों ही महीने आनन्द से बीते। आसोज सुदी ९
को आपकी आज्ञानुवर्तिनी श्रीकेसरजी आर्या का वृद्धावस्था के
कारण समहणी रोग से स्वर्गवास हो गया। उन्हें अन्तिम समय
में चरित्रनायिका ने संथारा (अनशन) करा दिया था। ७ दिन
का सथारा आया।

चातुर्मास के बाद आपकी शिष्या नगीनाकुमारीजी
आदि आर्याओं का आवागमन होता रहा। कई साध्वियाँ
आपकी सेवा में आई। इधर पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री का
२००६ का चातुर्मास जयपुर था। वहाँ से पूज्यश्री ने उपर्युक्त
पंक्तियों के लेखक को तथा मुनिश्री इन्द्रचन्दजी को वयोवृद्ध मुनि
श्री मोहनलालजी म० व तपस्वीश्री फौजमलजी म० की सेवा में
भेजा। लेखक का चरित्रनायिका से यह दूसरी बार का साक्षा
त्कार है। आपका माता के समान स्नेह परिप्लावित हृदय हमें
ब्यावर आए सुनकर गद्‌गद् हो गया।

उस समय आपके पास ब्यावर निवासिनी वैरागिन श्री
सायरकुमारीजी ज्ञानाभ्यास कर रही थीं। उन्हें दीक्षा लेने की
आज्ञा उनके ससुरालवाले व पीहरवाले कई वर्षों से प्रयत्न करने
पर भी नहीं देरहे थे। वैरागिन बहन के पिताजी का नाम मिश्री
मलजी गोलेछा है। सायरकुमारीजी ब्यावर के निवासी श्रीमान्
मिश्रीमलजी कोठारी के सुपुत्र श्री शान्तिलालजी कोठारी के
साथ ब्याही गई थी। विवाह होने के करीब २ वर्ष बाद आपके
पति का देहान्त होगया। आपके घर में सभी सुख-साधन उप
लब्ध थे, पर वैराग्यमत पान कर लेने पर संसार के सुख विषवत्

लगने लगते हैं। उक्त बहन को भी वैराग्य का रंग लग गया। लग भग चार वर्षों के दीर्घ परिश्रम के बाद आपके ससुराल व पीहर वालों ने आज्ञा पत्र लिख कर दिया। दीक्षा की तिथि सं० २००७ ज्येष्ठ शुक्ला ५ निश्चित होगई। दीक्षा दादावाड़ी में होने वाली थी। चरित्रनायिका अपनी शिष्याओं सहित वहाँ पधार गई थी। ब्यावर विराजित वयोवृद्ध मुनिश्री मोहनलालजी महाराज, इन पंक्तियों का लेखक, व सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचंदजी निश्चित समय परे दादावाड़ी पहुँच गये थे। अत: उक्त तिथि को लगभग ५ हजार जनता की उपस्थिति में मुनिश्री मोहनलालजी म० ने वैरागिन को 'करेमि भंते' का पाठ उच्चारण करके दीक्षा दी। तदनन्तर प्रवर्तिनीजी की निश्राय में आप करदी गई। चरित्रनायिका ने नवदीक्षिता शिष्या का लुञ्चन किया। प्रेक्षक लोग दीक्षा देख कर सहर्ष विदा होने लगे। संत भी अपने स्थान पर चले आये। चरित्रनायिका के शरीर में फोड़ा फुंसी हो जाने के कारण आप तो एक दो रोज वहीं नवशिष्या के पास विराज कर लौट आईं। आपने अपनी शिष्या नगिनाकुमारीजी आदि सतियों को शहर के बाहर 'बालकीलामन्दिर में कुछ दिन रहने की आज्ञा दी। बड़ी-दीक्षा शहर में होने पर देवगढ़ संघ की आग्रहपूर्ण विनति को मान देकर साध्वी श्री चतरकुँवरजी व नगीनाकुमारीजी, नवदीक्षिता साध्वी आदि को ठा० ५ से देवगढ़ चातुर्मास के लिए विहार करा दिया।

इस प्रकार सं० २००१ से २००७ तक के चातुर्मासों का सौभाग्य ब्यावर श्रीसंघ को ही मिला। इतने लम्बे काल में आप ने कई बार चाहा कि विहार करें परन्तु जहाँ एक ओर शारीरिक दुर्बलता बाधक बनी रही, तो वहाँ दूसरी ओर श्रीसंघ का आग्रह भी कुछ कम बाधक न था।

सं० २००७ में कविरत्न उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म०

का ब्यावर-संघ की ओर से चौमासा कराने के लिए प्रयत्न चल रहा था। श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री गणेशीलालजी म० का चातुर्मास अजमेर के लिए यथासमाधि निश्चित हो चुका था। परन्तु संघ के दुर्भाग्य से अचानक ही यमुना पार आगरावालमंडी में पधारते ? पूज्यश्री के शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई। व्याधि भी छोटी-मोटी नहीं, पर भयङ्कर रूप धारण करके आई। सभी सन्तों का चित्त उदास हो गया। ब्यावर में सभी साधुओं ने यह दुर्भाग्य पूर्ण खबर सुनी तो बड़ी चिन्ता पैदा हो गई। श्रीमती चरित्रनायिका व साध्वी-मण्डली ने भी सुनकर अत्यन्त चिन्ता प्रगट की। निद्रा भी पूरी न आई। दूसरे तीसरे दिन तार द्वारा फिर खबर आई कि अब तबियत कुछ ठीक है। तब जाकर जी में जी आया। संघ के प्रबल भाग्योदय से पूज्यश्री की तबियत सुधार पर आगई। चातुर्मास तो अजमेर न होकर दिल्ली ही हुआ। क्योंकि पूज्यश्री के शरीर में अभी तक पूर्णतः समाधि नहीं हुई थी। चरित्रनायिका तो बारबार पूज्यश्री के स्वास्थ्य के विषय में सन्तों व श्रावकों से पूछा करतीं। आपकी अपने आराध्य-देव गुरुवर के प्रति कितनी अटूट श्रद्धा और भक्ति है, यह उक्त बात से मालूम पड़ जाता है।

हाँ, तो सं० २००७ का चातुर्मास करने के लिए उपाध्याय कवि श्रीअमरचन्दजी म० आगरा से देहली, नारनौल आदि होते हुए बड़ी प्रतीक्षा के बाद ब्यावर पधारे। आषाढ़ शु० ६ को आपका पदार्पण शहर में हो गया था। उसी रोज कविश्री महाराज आपको दर्शन देने पधारे। कविश्री म० बड़े ही भावुक और स्नेह-शील व्यक्ति हैं। चरित्रनायिका से मिलते ही आपकी शान्त-मुद्रा देखकर हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की। आपकी भद्र प्रकृति ने कविजी म० के भावुक हृदय को हिला दिया। वह दृश्य कितना मनोमोहक एवं भव्य था। जब कि आपने उपाध्याय

कविजी म० को समक्तिभाव वन्दन किया, और अतीव प्रसन्नता प्राप्त की। चातुर्मास में आप अपनी शिष्याओं को कविजी म० के पास भेजतीं, आपकी ओर से सुख शान्ति पुछवातीं। चातुर्मास के दिन कितने स्नेह और सद्भावनाओं में व्यतीत हुए यह लिख कर बताने की बात नहीं, हृदय से अनुभव करने की बात है। चातुर्मास में एक बार आप 'कुन्दनभवन' में स्वयं कविजी महाराज के दर्शन करने पधारीं। कविजी महाराज ने बड़ा आदर दिया और आपकी सुखशान्ति वगैरह पूछी। चरित्र नायिका ने वन्दन करके कुछ प्रश्न पूछे। कविजी महाराज ने मार्मिक ढंग से उनका उत्तर दिया। थोड़ी देर बाद आप स्थान पर लौट आईं। आप पर कविजी म० का अतीव स्नेहानुग्रह था। चातुर्मास-समाप्ति के दिन वे स्वयं आपके पास पधारे और क्षमायाचना वगैरह करके वापिस पधार गए। चरित्रनायिका कविजी महाराज द्वारा लिखित 'सामायिकसूत्र' सविवेचन और 'श्रमणसूत्र' का कुछ अंश अपनी शिष्याओं द्वारा सुन चुकी थी। कविजी महाराज की लेखनी का चमत्कार आपको भी मालूम पड़ चुका था। चरित्रनायिका ने आपकी विद्वत्ता और लेखनशैली की भूरिभूरि प्रशंसा की। कविजी महाराज चातुर्मास के बाद विहार करके गुरुकुल पधारे तब भी आपने अपनी शिष्याओं को दर्शन के लिये भेजा। आपकी गुणग्राहकता से सभी व्यक्ति प्रभावित होजाते हैं। आपके स्थान के पड़ौस में ही तेरह पंथ सम्प्रदाय की नमरकुँवरबाईजी आदि सतियाँ ५ ठाणे से चातुर्मास में ठहरी हुई थीं। वे भी आपकी स्नेहमूर्ति देख कर कभी कभी कहतीं—'आप तो हमारे लिए मातृतुल्य हैं। बुजुर्ग हैं। हम बालिकाओं पर प्रेमभाव रक्खें। आप अब अपने जीवन के ७६ वें वर्ष में पदार्पण कर रहीं थीं। आपने अपने उत्तमोत्तम गुणों के द्वारा प्रवर्तिनी-जीवन में कई अमर कार्य कर दिखाये।

एकता का स्तुत्य प्रयास

स्थानकवासी जैन-समाज में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज का सम्प्रदाय एक विशिष्ट स्थान रखता है। त्याग और तपस्या में यह सम्प्रदाय सब से आगे रहा है। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज इस सम्प्रदाय के आचार्य थे। वे उत्कृष्ट संयम पालने और उत्कृष्ट विहार करने के लिए निकले थे। उन्होंने दूसरे तपश्चरणों के अतिरिक्त २१ वर्ष पर्यन्त बेले बेले पारणा भी किया। वे महापुरुष एक चादर को १२ महीनों तक चलाते थे। संघ के नायक बन कर उन्होंने मौज नहीं की, वरन् अधिकाधिक त्याग और संयम का आदर्श मुनियों के समक्ष उपस्थित किया।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के समय में ही महासती रँगूजी हुई। ये भी कठोर चारित्रशीला साध्वी थीं। वे स्वयं प्रवर्तिनी-पद नहीं लेना चाहतीं थीं पर संघ ने उनकी त्याग और तपस्या देख कर उन्हें यह दे दिया। प्रवर्तिनीजी रँगूजी, पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज को अपना गुरु मानतीं थीं। उनकी गुरुभक्ति पूज्यश्री की चारित्रनिष्ठा देख कर ही हुई थी। और तब से रँगूजी महासतीजी की सम्प्रदाय की साध्वियाँ इसी सम्प्रदाय के आचार्यों को गुरु मानती चली आई हैं।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म० के बाद पूज्यश्री शिवलालजी

म० संघ के अधिनायक बने, तदनन्तर संघ का नेतृत्व क्रमशः पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज, पूज्यश्री चौथमलजी महाराज और पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के सुयोग्य कर-कमलों में आया। उनके पश्चात् पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज आचार्य पद पर आसीन हुए। उन्होंने अपने संयमबल, ज्ञानबल और तपोबल से समाज की अत्यन्त सेवा की। समाज में कई पुरानी सड़ीगली मान्यताएँ पनप रहीं थीं, उन्हें अकाट्य युक्तियों द्वारा प्रबल विरोध होते हुए भी हटाया। अजमेर सम्मेलन में उन्होंने स्थानकवासी समाज में भिन्न-भिन्न परम्परा और प्रणाली को मिटाकर एकता की नींव डालने के लिए एक 'वर्द्धमान संघ' की विशेष योजना बनाई थी। पूज्यश्री स्थानकवासी समाज में एकता देखना चाहते थे। आप संगठन के प्रबल पक्षपाती थे। परन्तु दुर्भाग्य से वह योजना पूज्यश्री के जीवन-काल में सफलता के पथ पर न आसकी।

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उत्तराधिकारी वर्तमान आचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज इसी एकता को मूर्त रूप देने के लिए कटिबद्ध हैं। पिछ्ली चातुर्मास में पूज्यश्री ने एकता के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देने तक के उद्‌गार निकाले हैं। परन्तु पूज्यश्री जितने एकता के पक्षपाती हैं उतने चारित्र के भी हैं। वे बाहरी लीपापोती को और खोखली एकता को कतई पसंद नहीं करते। यही कारण है कि समाज की सुदृढ़ एकता होने में इतना समय व्यतीत हो रहा है। इसके सिवाय पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज चाहते हैं जो साध्वियाँ हमें गुरुरूप में मानती हैं, हमारे संयम और चारित्र से जिनका मेल खाता है, वे आज के जमाने में एक होजाँय। पूज्यश्री का यह मनोरथ कई वर्षों से था। पहले तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय में साध्वियाँ आचार्य के नियाय में नहीं

थी, वे अपनी प्रवर्तिनी की आज्ञा से ही चातुर्मास शेषकाल आदि बिताती थीं। परन्तु सभी दिन एक से नहीं होते हैं। आज चारों ओर से एकता की आवाज चली आरही है। आज के जमाने में अलग अलग टुकड़ियाँ बना कर चलने वालों को खतरा ही रहता है। जो समाज उन्नति करना चाहता हो, उसे सभी को साथ में लेकर एकता की पगडंडी पर चलना होगा, अन्यथा उस समाज का अस्तित्व खतरे में है। आजकल के राजनीतिक-युग में अलग अलग सम्प्रदायों का कोई मूल्य नहीं है। जैन-समाज इन फिरकेबाजियों के कारण ही इतना पिछड़ा हुआ है। न तो इसका सांस्कृतिक बल ज्यादा रहा है न सामाजिक बल ही। इसका कारण है—अपने अपने अलग अलग चौके चूल्हे चलाना। अपने अपने सम्प्रदाय का पालना पोषना। अतः इस परम्परा को मिटाने का पूज्यश्री का सुदृढ़ विचार था।

हाँ, तो पूज्यश्री के कई वर्षों के सुन्दर विचारों का प्रभाव समाज पर पड़ा। रतलाम में 'हितेच्छु श्रावक मंडल' इस सम्प्रदाय के संयम और त्याग को उन्नत बनाने के उद्देश्य से चल रहा था। साथ ही पूज्यश्री के साहित्य का प्रकाशन भी उसके हाथों में है। सं० २००४ में मण्डल की बैठक रतलाम में हुई। उसमें एक प्रस्ताव यह भी था कि 'पूज्यश्री को मानने वाली साध्वियों से बातचीत करके पूज्यश्री को उन्हें अपनी निश्राय में लेने के लिए प्रार्थना करने को कहा जाय' तदनुसार मण्डल के प्रमुख कार्यकर्ता श्री बालचन्दजी श्रीश्रीमाल ने ब्यावर संघ के नाम से यह कार्रवाई शुरू की। उन्होंने ब्यावर के मुख्य भाइयों को प्रवर्तिनी महा० से इस बाबत में परामर्श करने को लिखा। यह भी लिखा कि 'आज जमाना बदल गया है। इस समय संसार अलग अलग राग अलापना नहीं चाहता। वह संगठित बनने की आवाज देता है। साधुमार्गी जैनों की पृथक्

पृथक् सम्प्रदायें और इनमें चलती हुई प्रतिस्पर्धा एवं स्वच्छन्दता से समाज ऊब गई है। यह सब को एक करना चाहती है। जैन कॉन्फ्रेंस (बम्बई) की ओर से यह प्रयत्न चल रहा है। ऐसी हालत में साध्वियों को भी अपनी अपनी सम्प्रदाय में आचार्य की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिये। परम्परानुसार अलग अलग रहने की स्वतन्त्रता कहाँ तक रह सकेगी ?

चरितनायिका के लिए यह बात बड़ी विचारणीय थी। वे दुविधा में पड़ गयीं। एक ओर तो यह विचार था कि सम्प्रदाय की खास-खास साध्वियों से पूछे बिना यह गुरुतर प्रश्न कैसे हल किया जाय ? दूसरी ओर यह विचार चल रहा था कि पूज्यश्री पर मेरी और सम्प्रदाय की साध्वियों की परम गुरु भक्ति है। उनकी अधीनता स्वीकार करने में हर्ज ही क्या है ? जिस गुरु के चरणों में हमने भक्ति के पुष्प चढ़ा दिये हैं, उनके लिए एक सम्प्रदाय जैसी तुच्छ चीज का मोह क्यों रखना ?

बहुत दिनों तक चरितनायिका इन्हीं विचारों की उधेड़ बुन में लगी रहीं। अपने सम्प्रदाय की खास-खास सतियों की राय मगवाई। इसी बीच में लगभग एक वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। फिर पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज के स० २००६ के जयपुर चातुर्मास में मण्डल का अधिवेशन हुआ। उसमें भी प्रस्ताव नम्बर ७ में यही दोहराई गई।

फलस्वरूप मण्डल आफिस की ओर से श्रीमान् बालचन्दजी श्रीश्रीमाल व मोतीलालजी बरड़िया आदि इसी बात को लेकर चरितनायिका की सेवा में उपस्थित हुए और आपको इस विषय पर निर्णय प्रदान करने की प्रार्थना की।

चरितनायिका ने शीघ्र ही अपना निर्णय दे देने का वचन दिया और परिणामस्वरूप चौमासे बाद प्राय खास-खास सतियों की सहमति प्राप्त होने पर कॉन्फ्रेंस के प्रचारक आवद

निवासी श्रीमोहनलालजी चौधरी को सभी साध्वियों सहित प्रव र्तिनीजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। मोहनलालजी चौधरी ने लिखित मसविदा बना कर पूज्यश्री की सेवा में पेश कर दिया।

उसके बाद पूज्यश्री के शरीर में अचानक व्याधि पैदा हो गई। और सं० २००७ का चातुर्मास यथासमाधि अलवर में निश्चित हो जाने पर भी कारणवश देहली में ही करना पड़ा। आपका प्रार्थना-पत्र तो पूज्यश्री के पास पहुँच चुका था, परन्तु पूज्यश्री शारीरिक व्याधि के कारण उस पर विचार न कर सके। आशा है भविष्य में पूज्यश्री शीघ्र ही इसका निर्णय देंगे।

इसी साल ही श्रीमती खेतांजी महासतीजी के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी श्रीगुणकुमारीजी ने भी पूज्यश्री की आज्ञा में रह कर विचरने की स्वीकृति दे दी थी।

एकता का यह प्रयास कितना स्तुत्य है ? आपने अपनी ओर से पूज्यश्री की अधीनता में विचरने की स्वीकृति देकर कितना मजबूत कदम उठाया है ? संगठन की आवाज आपने ठुकराई नहीं। हमें आशा है कि भविष्य में भी ऐसा सुन्दरतम कार्य करके समाज की श्रीवृद्धि में सहायिका बनेंगी।

महा प्रयाण

जो प्राणी जन्म लेता है, वह एक दिन अवश्य मरता है, जो फूल खिलता है, वह अवश्य मुरझाता है, जो सूर्य उदय होता है वह अवश्य अस्त होता है। जन्म लेकर मरे नहीं, यह असम्भव है, सर्वथा असम्भव ! मृत्यु का आगमन निश्चित है। संसार की कोई भी शक्ति उसके मार्ग को रोक नहीं सकती। उसका 'वारंट' खाली नहीं जा सकता। कौन है, जो उसके सामने सीना तान कर खड़ा हो सके ? जीवन की सुनहली धूप मृत्यु की कालरात्रि आते ही सहसा विलुप्त हो जाती है। मृत्यु ! ओह ! कितना भीषण और भयंकर शब्द है। शब्द की भीषणता अर्थ की भीषणता के आगे कुछ भी नहीं है।

मनुष्य व्यर्थ के अहङ्कार में पागल बन जाता है। वह नहीं समझता कि मैं जिस शरीर पर गर्व करता हूं, जिसकी परिचर्या में दिन-रात एक कर देता हूँ जिसके लिए बड़े से बड़ा अनर्थ करते हुए नहीं चूकता, मृत्यु के आने पर इसका क्या होगा ? मृत्यु के आगे इस धन और जन के अहङ्कार का फूटी कौड़ी भी मूल्य नहीं है। मृत्यु की छाया पड़ते ही क्षण भर में मानव क्या से क्या हो जाता है ! स्वतन्त्रचारी मानव एक ही क्षण में नीरव, निष्पन्द और निष्क्रिय हो जाता है। अधिक क्या, शरीर का कण कण निश्चेष्ट हो जाता है।

परन्तु जीवन का मोह और मृत्यु का शोक किसे होता है? उसे होता है, जो संसार की झाड़ियों में गहरा उलझा रहता है, जो मोह माया में लिपटा रहता है, जो रात-दिन अपने स्वार्थ में तल्लीन रहता है, जिसे मानव जीवन की कुछ भी चिन्ता नहीं है। इस प्रकार के मनुष्य कीड़े-मकोड़ों की तरह जन्म लेते हैं और मर भी जाते हैं। संसार को उनके विषय में कुछ पता भी नहीं होता कि वे कौन थे, वे कब जन्मे और कब मरे? वह अगर कुछ पढ़े लिखे या धनाढ्य हुए तो भले ही थोड़े दिनों के लिये लोग उनके विषय में चर्चा करलें, पर आखिर तो उनका नामोनिशान इस दुनिया से मिट ही जाता है। ऐसे व्यक्ति पापों की भारी भरकम गठरी लादे हुए आते हैं, और ऐसे ही इस लोक से विदा होते हैं। ऐसा मानव जीवन निम्नकोटि का है।

एक मनुष्य जीवन वह है, जो जीवन के मोह और मरण के शोक से परे है। ऐसे महापुरुष अपने जीवन-मरण के सूत्र को कर्तव्य से बाँधे रहते हैं, मोह और शोक से नहीं। वे अपने जीवन-काल में अपना ही नहीं, विश्व का कल्याण करते हैं और जब इस लोक से विदा होते हैं तो जन जन के मन में अपने अभाव की खटक पैदा कर देते हैं। उपनिषद् की पवित्र वाणी भी उनका समर्थन करती है—

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'

"जो आत्मा को सब से भिन्न समझता है, उस महान् व्यक्ति को जीवन का मोह कहाँ और मृत्यु का शोक कहाँ?

ऐसे लोग मर कर भी अमर होते हैं। जैन-परिभाषा में उनकी मृत्यु को पण्डित मरण कहा जाता है। मृत्यु उनका स्थूल शरीर अवश्य छीन ले जाती है, यश शरीर नहीं। यह मानव जीवन उच्च-कोटि का है।

महासती प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी भी ऐसे ही उच्च

कोटि के मानव जीवन व्यतीत करने वालों में से एक थीं। वे मृत्यु पाकर भी अमर हैं। मृत्यु आई और हमारे बीच में से उन्हें उठा कर ले गई, यश शरीर के रूप में वे आज भी जीवित हैं और सन्मार्ग की ओर प्रगति करने का मूक-संकेत कर रही हैं। उन्होंने संयमी-जीवन में अहिंसा और सत्य की आराधना की, लोक सेवा और धर्म प्रचार का कार्य किया। जैन-समाज इस महान् नारी को, आनन्द के पुञ्ज को अभी कुछ दिन और पृथ्वि पर देखना चाहता था। परन्तु मन की इच्छा किसकी पूर्ण हुई है ? और यह भी मृत्यु को रोकने की, नितान्त असम्भव ! *'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'* यह अमर सत्य है। यह वाक्य मनुष्य को डिण्डिम घोष करके बतला रहा है कि तुम्हें जो कुछ सत्कर्म करना है सो करलो, तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।

हाँ, तो महासतीजी अपने जीवन के ७६ वें वर्ष में पदार्पण कर चुकी थीं। शरीर बल क्षीण हो गया था, केवल मनोबल से अपनी जीवन-यात्रा तय किए जा रही थीं। ब्यावर में स्थिर निवास करते हुए भी ७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। स्थिरवास का कारण और कुछ नहीं, शरीर की अशक्ति के कारण विहार न हो सकता था। यह कौन जानता था कि शरीर की यह अशक्ति किसी न किसी दिन अपने भाई रोग को बुला लाएगी। कई महीनों से जब तब श्वास का दौरा शरीर पर आक्रमण कर बैठता था। साथ ही बुखार भी आ धमकता था। वह दो चार दिन रह कर फिर अपनी राह चला जाता। घुटनों में दर्द भी कई दिनों तक उग्र रूप में रहा। दवाओं का प्रयोग भी किया गया। फिर भी कई दिनों तक दर्द न गया सो न गया। अन्ततोगत्वा हार मान कर उसे जाना ही पड़ा।

सं० २००७ का चातुर्मास समाप्त हो चुका था। चातुर्मास में ब्यावर विराजित कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महा०

सशिष्य अन्यत्र विहार कर चुके थे। चातुर्मास समाप्ति के बाद
से ही आपको श्वास और घुटने का दर्द परेशान कर रहा था।
ये दोनों रोग अपने दलबल सहित ज्यों ही गये, त्यों ही तीसरे
रोग ने आक्रमण किया।

चैत्र कृष्णा ११ के आसपास की बात है। उस समय
आपके शरीर में कोई खास व्याधि नहीं थी। अकस्मात् ही पेट
में दर्द होने लगा। श्वास का वेग भी तीव्र रूप में होने लगा।
रात्रि को बुखार इतने जोर का आता कि पसीने से सारे कपड़े
तरबतर हो जाते थे। आपने मामूली उपचार करवाया, पर उस
से कोई फायदा नहीं हुआ। दर्द ने भयंकरता का रूप ले लिया।
उस दर्द के जोर से गर्दन के पृष्ठभाग पर भी सूजन हो गया।
गर्दन की पीड़ा इतनी बढ़ गई कि गर्दन को इधर से उधर घुमाना
या मुँह ऊँचा करना भी बड़ा कठिन हो गया। आप पहले कमरे
में ही थोड़ी देर टहला करती थीं। पर अब तो वह भी बन्द हो
गया। उपस्थित सभी साध्वियाँ आपकी सेवा करने में तत्पर थीं।
आपका बस चला तब तक तो वैद्यों की ही दवा लेने का कहती
रहीं। परन्तु जब वैद्यों की दवा से कोई फायदा नजर न आया,
प्रत्युत गर्दन के पृष्ठ भाग का सूजन दिनों दिन दैत्य की तरह
विकराल होकर बढ़ने लगा, और आहार का कौर लेते ही वह
उछाल खाकर वापिस निकलने जैसा हो जाता, दूध या पानी
पिया जाता तो भी वह बाहर निकलना ही चाहता था, ऐसी
हालत देख कर ब्यावर निवासी श्रीमान् मोतीलालजी लोढ़ा,
सोहनलालजी चुरड़, गुलाबचन्दजी कोठारी आदि ने मिलकर
आपसे डाक्टरी इलाज करवाने का अनुरोध किया।

चरितनायिका बराबर इन्कार करती रहीं। आप से
साध्वियों ने, ब्यावर विराजित साधुओं ने और अन्यान्य गृहस्थों
ने भी यही अनुरोध किया। अन्ततोगत्वा उन्हें बात माननी पड़ी।

मनुष्य आखिर अपने सेवक और श्रद्धास्पद हितचिन्तकों की बात को सर्वथा ठुकरा नहीं सकता, यह एक सार्वत्रिक नियम है।

हाँ, तो डाक्टर किसनचन्द सिंघी को दिखा कर आपका इलाज कराने का निर्णय हुआ। उसी दिन उपा० कविरत्न अम रचन्दजी म० भी ब्यावरशहर में पधारे थे। वे आपकी बीमारी के समाचार सुन कर दर्शन देने पधारे। उन्होंने भी इसी इलाज का समर्थन किया और साध्वियों को धैर्य पूर्वक इलाज करवाने का कहा। डॉक्टर साहब ने रोग का इतिहास सुनकर और देखकर अपनी चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। परन्तु वह कामयाब न हुई। रतलाम निवासी श्रीबालचन्दजी श्रीश्रीमाल को बीमारी का पता लगा तो वे वहाँ से भी रामविलासजी वैद्य को साथ लेकर ब्यावर पहुँचे। वैद्यजी ने शरीर की हालत देखकर कहा— 'पेट में लीवर बढ़ा हुआ है, उसी की वजह से गर्दन पर सूजन है और वातवृद्धि भी होगई है, जिसके कारण भोजन का कौर लेते ही वह उच्छ्वास आकर वापिस निकलना चाहता है।' वैद्यजी ने दवा की पुड़ियाँ दी। उनका किञ्चित् भी आपके शरीर पर असर न हुआ। मालूम होता है यह रोग, रोग नहीं था, वह वह काल ही था, जो रूप बदल कर आया था।

रोग की स्थिति दिनोंदिन गम्भीर होती जारही थी। पहले आप थोड़ा बहुत चल फिर भी सकतीं थीं, पर अब तो एक कदम भी चलना कठिन होगया। आपकी शिष्याएँ दिन-रात परिचर्या में जुटी रहतीं थीं, उनसे आपका दर्द देखा न जाता था। गर्दन के पृष्ठ भाग पर दर्द होने के कारण गर्दन इतनी भारी मालूम होती थी, मानो पसेरी बाँध दी हो। मुख से बोलना भी कठिन प्रतीत होरहा था, फिर भी आपके हृदय में धैर्य का सागर लहरा रहा था, मस्तक पर अशान्ति की एक भी रेखा नजर नहीं आती थी। ब्यावर विराजित संत दर्शन देने पधारते तो

आप उनसे यही कहा करतीं— मैंने पूर्वभव में ऐसे कठोर कर्म किये हैं, जिनका दारुण फल भोगना पड़ रहा है। अपनी ही लगाई हुई विषवल्ली के ये कटु फल हैं, इन्हें भोगते में मुझे किसी प्रकार की आना-कानी क्यों होनी चाहिये ?' लेखक के बीमार पड़ जाने पर वह हमेशा चिन्तित रहा करती थीं और साध्वियों से पूछा करतीं—' अब महाराज के किस तरह है ? उनके शरीर में यह व्याधि क्यों हुई ? बड़ा कष्ट होता होगा।" सन्त जब कभी आप को दर्शन देने पधारते तो अशक्त होती हुई भी आप पट्ट से नीचे उतरने का प्रयत्न करतीं। सन्तों को खड़ा देखकर, कारणवश भी पट्ट पर बैठने में आप बड़ संकोच का अनुभव करती थीं। स्वस्थ अवस्था में आप अपने छोटे मोटे कार्यों को अपने ही हाथों से करके प्रसन्नचित्त रहा करती थीं। इस समय साध्वियों से कार्य लेना आपको बड़ा अटपटा मालूम पड़ता था। भला, जिसने जीवन भर किसी का विशेष सहारा न लिया हो, वह अब शारीरिक आवश्यकताओं के लिए पराश्रित होना कैसे सहन कर सकती थीं ?

साध्वियाँ आपकी परिचर्या के लिये सतत पास रहती थीं। आप उनसे कभी स्वाध्याय सुनतीं, कभी किसी विषय पर बातचीत करतीं। उस समय आपकी ज्ञान-चेतना बहुत निर्मल थी। स्मरण शक्ति भी पुरानी से पुरानी बात को दुहरा रही थीं। जिस विषय पर बात होती, उसमें वैराग्य का पुट मिला रहता था। उसमें आपकी प्रतिभा विलक्षण रूप से चमकती रहती थी।

वैशाख शु० १२ का दिवस था। आपकी तबियत ज्यादा अस्वस्थ सुनकर प्रातःकाल ही उपा० कवि श्री अमरचन्द्रजी म० व व्यावर-विराजित सन्त दर्शन देने पधारे। उस समय आपने कविश्री म० व सन्तों से क्षमायाचना की। दर्द अधिक हो रहा था, वाणी क्षीण हो चली थी। फिर भी शान्ति का स्रोत बह

रहा था। दिन के लगभग तीन बजे आपने अपनी शिष्या आर्या श्री दाखबाईजी को अपने पास बुलाया और कहा—"मेरा शरीर अब दिनों दिन अस्वस्थ होता जा रहा है। जीवन का क्या भरोसा है ? अभी मेरी चेतना शक्ति भी काम कर रही है। कौन जानता है, क्षण भर में क्या होगा ? कब वह घड़ी आ जाय, जब मुझे परलोक के लिए प्रयाण करना पड़े। अत मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि मैं अपने संयमी-जीवन में लगे हुए दोषों की खुले हृदय से आलोचना करके प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाऊँ।"

साध्वीजी यह बात सुन कर दुःखी हुई। बोली—अभी ऐसी कोई स्थिति पैदा नहीं हुई है कि आपको इतनी शीघ्र आलोचना करनी पड़े। चरितनायिका ने अपने मन में इस बात का पहले ही मन्थन कर रक्खा था। अत' अपने वचनों पर अटल रहीं और उसी समय संयमी जीवन में लगे हुए दोषों की आलोचना करके नि शल्य होकर स्वयं प्रायश्चित्त ले लिया।

संध्या हो आई थी। आज की संध्या जीवन की अन्तिम संध्या थी। लगभग ७ बजे होंगे। आपने आहार पानी से निवृत्त होकर, अपनी स्थिति गम्भीर देखकर स्वयं यावज्जीवन चौविहार अनशन कर लिया। स्वास्थ्य खराब हो रहा था। घबराहट बढ़ रही थी। समय पर प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया पूर्ण हुई। वन्दनादि के अवसर पर महासतीजी ने सभी छोटी-बड़ी साध्वियों को सस्नेह आशीर्वाद दिया। बाद में अपनी जीवन-लीला की पूर्ति में उन्हें अन्तिम संदेश स्वरूप उपदेश दिया—"साध्वियों ! तुम सब आनन्द में रहना। जिस उद्देश्य से तुम अपना घर-बार त्याग कर दीक्षित हुई हो, देखना, उस संयम-यात्रा में सावधान रहना अपने चरित्र में किसी भी प्रकार का धब्बा न लगने पाए। और इन वारद्धिक और बीमार वृद्ध साध्वियों (साध्वीश्री मेहताब कुमारीजी और केशरकुमारीजी) की अच्छी तरह परिचर्या

दिव्य शान्ति विराज रही थी। वेदना का विषाद कहीं लेश मात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। ऐसा मालूम होता था जैसे जीवन संग्राम में सफलता पाने के बाद एक वीराङ्गना संतोषपूर्वक विदाई ले रही हो। उनका समग्र जीवन भी आदर्श रहा और मृत्यु भी आदर्श रही।

जिन भाग्यशालियों ने उनकी मृत्यु की अन्तिम छवि देखी, उनके नेत्रों में यह सदा के लिये समा गई। कितनी भव्यता। कैसी शान्ति। कैसी समाधि। निहारने वाले निहाल हो गए।

प्रात काल ही महासतीजी श्री प्रवर्तिनीजी के स्वर्गवास के दु:खद समाचार सर्वत्र बिजली की तरह फैल गए। संघ में शोक की काली घटाएँ उमड़ पड़ीं। जैन जनता के लिए महासतीजी के वियोग का आकस्मिक-समाचार वज्रपात के समान था। दूर दूर से भक्त नरनारियों का जन-समूह अपनी महान् नेत्री के अन्तिम दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा। भक्त नरनारी अपने हृदय को किसी तरह थाम कर आते और प्रवर्तिनीजी के निष्प्राण शरीर का दर्शन करके अश्रुधारा की श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए चले जाते थे। ब्यावर के संघ को तो ऐसा लगा मानो समूचे संघ की एक अनमोल निधि खो गई हो।

बालक, वृद्ध, नर-नारी, गरीब अमीर, साक्षर निरक्षर प्राय: सभी के चेहरे पर अपूर्व गहरा विषाद था। सब की जिह्वा पर एक ही बात थी और एक ही प्रश्न था—महासतीजी के वियोग से जैन समाज की एक महान् क्षति हुई है, आनेवाली शताब्दियाँ इसकी पूर्ति कर सकेंगी या नहीं ?

ब्यावर शहर के बाहर शंकरलालजी मुणोत की बगीची में विराजित पूज्यश्री जयमलजी म० की सम्प्रदाय के प्रवर्तक वयोवृद्ध संत श्री हजारीमलजी महाराज ने यह सुना तो उन्होंने कहा-"मैं कई दिनों से महासतीजी से मिलने की उत्कण्ठा कर रहा

था, परन्तु मेरे मन की अभिलाषा मन में ही रह गई, अवसर चूक गया। महासतीजी बड़ी शान्तमूर्ति और भाग्यशालिनी थीं।

शनिवार का दिन है। ब्यावर की कतिपय जैन संस्थाएँ बन्द हैं। सब ओर शोक की लहरें उमड़ रही हैं। चाँदी का विमान तैयार ही था, अन्य आवश्यक सामग्री जुटा कर संघ के लोगों ने महासतीजी का शव बांस की निसेणी पर विराजित किया। चरितनायिका की आत्मा तो कभी की प्रस्थान कर चुकी थी और अपने निश्चित स्थान पर पहुँच भी चुकी थी। लगभग १२ बजे यह शरीर अन्तिम यात्रा के लिए चल पड़ा। इस समय का दृश्य बड़ा ही हृदय द्रावक था। जन-समूह की आँखों से अश्रु धाराएँ बह रही थीं। वातावरण गम्भीर हो रहा था। शवयात्रा प्रमुख बाजारों में से होकर निकल रही थीं। जनता बड़ी संख्या में साथ थी। 'श्रीमहावीर स्वामी की जय' 'जैनधर्म की जय' और 'प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी म० की जय' इत्यादि विविध जय के नारों से आकाश गूंज रहा था। दर्शन-प्रेमी भक्त-जनता आज इस अन्तिम झाँकी को अपनी आँखों में बसा लेना चाहती थी।

जीवन संग्राम की वह विजयिनी वीरांगना आज स्थूल देह के रूप में ब्यावर के बाजारों में अन्तिम विहार कर रही थीं। जनता अपनी महान् नेत्री को अन्तिम विदाई दे रही थीं। यथा समय जुलूस श्मशान-तट पर पहुँच गया था। ठीक समय पर चिता में अग्नि लगी, लकड़ियाँ धीरे धीरे प्रज्वलित हो रही थीं, जब कि आपका स्थूल शरीर शीघ्रगति से अग्नि में झुलस रहा था, मानो वह अपना अस्तित्व नहीं रखना चाहता था और प्रकाशमान बनना चाहता था। उधर चिता पर ज्वालाएँ आकाश की ओर उछल रही थीं। तो इधर शत शत कण्ठों की निकली हुई जयध्वनियाँ चरितनायिका के चरणों में स्वर्ग की ओर चली आ रही थीं। अग्नि उस वातावरण को प्रकाशमान

मना रही थीं।

महासती प्रवर्तिनीश्री के दिवंगत होने का समाचार जगह जगह पहुंचा। कई संघों में शोक का समुद्र उमड़ आया। महासतीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए उदयपुर, बड़ी सादड़ी, कानोड़, रतलाम आदि स्थानों में शोक सभाएं हुई। बाजार बन्द रक्खे गए और दूसरे प्रकारों से भक्ति एवं श्रद्धा प्रगट की गई।

रतलाम में प्रवर्तिनीजी के स्वर्गवास के समाचार मिलते वहां के श्रीसंघ द्वारा एक शोक सभा की गई, जिसमें सद्गत महासतीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रगट करते हुए, उनके सरलता, सौम्यता, धैर्य आदि गुणों का दिग्दर्शन कराया गया। तथा रतलाम में ही स्थानकवासी समाज की महिलासभा ने श्रीमती कञ्चनबाई श्रीश्रीमाल की अध्यक्षता में एक शोक सभा की। जिसमें प्रवर्तिनीजी के सम्मानिता, सरलता, साम्प्रदायिक कार्यक्षमता, शान्त प्रकृति, प्रसन्नता आदि गुणों पर प्रकाश डाला गया और प्रवर्तिनीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए उनकी अनुवर्तिनी साध्वियों के लिये हार्दिक समवेदना प्रगट की गई।

सरल स्वभावी श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री १००८ श्रीगणेशीलालजी म० को जब यह समाचार मिले तो उन्होंने प्रवर्तिनी महासतीजी के निधन पर खेद प्रगट किया, और उनकी आज्ञानुवर्तिनी साध्वियों के लिए एक संदेश दते हुए उन्हें, अपने कर्तव्य निर्वाह के विषय में सूचित किया। ब्यावर विराजित सन्तों ने भी प्रवर्तिनीजी के दिवंगत होने पर खेद प्रगट किया और उनकी सेवा में विराजित सतियों को सान्त्वना दी।

इसी तरह ब्यावर में श्रीमान् कन्हैयालालजी मूथा की अध्यक्षता में जैन-मित्र-मण्डल, व जैन-जवाहर-मित्र मण्डल की तरफ से सम्मिलित शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें

उमरसिंहजी मेहता, चिम्मनसिंहजी लोढ़ा, अमरचन्दजी लोढ़ा आदि वक्ताओं ने प्रवर्तिनीजी की जीवनी पर प्रकाश डाला और श्रद्धाञ्जलियां समर्पित कीं। साथ ही उनके निधन के उपलक्ष्य में एक स्मारकनिधि के लिए अपील की गई, जिसका जनता ने उत्साह जनक उत्तर दिया।

सच है आपका आदि काल प्रकाशमान था तो आपका अन्तकाल भी प्रकाशमान ही रहा। संयम-यात्रा की इस महान् साधिका को हजार, लाख और कोटि बार धन्य हो। आपका जीवन महान् था, तो मृत्यु भी महान हुई। आपने अपनी जीवन लीला बहुत ही सुन्दर और सरस वातावरण में समाप्त की। आप जिस साधना-पथ पर चली थीं, उसी साधना के पथ पर अन्तिम क्षण में भी चलती रहीं। मैं समस्त संघ की ओर से सौधर्म स्वर्गाधिपति इन्द्र के शब्दों में यह श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ, आप जहाँ भी हों वहीं स्वीकार करें—

"इहं सि उत्तमो भंते ! पच्छा होहिसि उत्तमो,
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ।"

सद्गुणों की झाँकी

मनुष्य की वास्तविक परीक्षा उसके शरीर के रूपरंग में या पुष्टता में नहीं होती, किन्तु उसमें रहे हुए गुणों से ही उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। अमुक मनुष्य कैसा है, यह अक्सर उसकी बाहरी चाल-ढाल से नहीं जाना जा सकता, अपितु उसके प्रत्येक व्यवहार में गुणों का अंश कितना है, इस पर से ही अनुमान लगाया जा सकता है। सच्चा विवेकी पुरुष किसी भी व्यक्ति के बाह्य चिह्नों को—स्त्रीत्व या पुरुषत्व को, अथवा वय को इतना महत्त्व नहीं देता जितना कि गुणों को देता है। इसीलिये भवभूति कवि ने कहा है—

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः'

महासती प्रवर्तिनी श्री आनन्दकुमारीजी का जीवन अनेक गुणों से जगमगाता था। उनके जीवन का हर पहलू प्रकाशमान था। मैंने उनके जीवन के इतिहास को कागज पर लिखा है, परन्तु क्या सचमुच ही वह लिखा गया है? मेरा हृदय उत्तर देता है, तू लिख कर भी कुछ नहीं लिख पाया है। उस अमर जीवन के विराट् रूप को, यह लेखनी अक्षरों के छोटे से घर में कैसे आबद्ध कर सकती है? हाँ तो, मैंने उस विराट् जीवन की बिखरी हुई गुण-मणियों को एक स्वर्णकार के समान, जीवन

चरित्र-रूप स्वर्ण पात्र में जड़ने का काम किया है, सम्भव है मेरे हाथों से वह जड़ाई ठीक-ठीक न हो पाई हो। इसलिए मैं इस प्रकार में अपने प्रिय पाठकों के लिए प्रवर्तिनीजी के विशेष सद्-गुणों की झाँकी दे देना चाहता हूँ।

चरित्र-बल

साधक-जीवन का सबसे बड़ा बल उसका अपना चरित्र-बल है। साधक चाहे गृहस्थ हो अथवा साधु, वह जितना ही उज्ज्वल चरित्रवाला होगा, उतना ही अधिक आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ होगा। भारतीय संस्कृति में मनुष्य की महत्ता चरित्रबल से ही आंकी जाती है।

महासती प्रवर्तिनीजी का चरित्रबल बहुत उच्चकोटि का था। प्रारम्भिक जीवन की तरुणाई में गोसत में रहीं, पर वहाँ भी उनका जीवन लक्ष्यशून्य नहीं था। साध्वी जीवन के लम्बे काल में अनेक प्रकार के झंझावात और तूफान आए। बड़े-बड़े कष्टों के पहाड़ उनका मार्ग रोकने आए, पर वे अपनी निराबाध गति से चलती रहीं। उनके संयमी जीवन पर एक भी धब्बा कहीं पड़ा हुआ नजर नहीं आता।

निरभिमानता

किसी बड़े पद को पाकर मन में अभिमान न आने देना साधक जीवन की महान् विशेषता है। चरितनायिका प्रारम्भ से ही निरभिमान थीं। आपके सम्प्रदाय की पूर्व प्रवर्तिनीश्री श्रेय' कुमारीजी ने आपको साध्वी-समुदाय में योग्य देखकर ही 'प्रव र्तिनी-पद' प्रदान किया था। इतना उच्च-पद प्राप्त हो जाने पर भी, साध्वी-संघ की एक नेत्री होते हुए भी, आपके मन में अभिमान न था। आप छोटी से छोटी साध्वी के साथ नम्रता

का व्यवहार करतीं। आप पद पाकर अहंकार में मत्त न हुईं, प्रत्युत कर्त्तव्य की ओर अग्रसर हुईं।

दयालुता

मानव-जीवन का उज्ज्वल प्रकाश दया की अमर भावना में रहा हुआ है। साधक का हृदय कितना महान है, उसमें उच्च भावनाओं का झरना किस प्रवाह से बह रहा है, यह यदि मालूम करना हो तो करुणा से छलकते हुए हृदय का दर्शन करो। जिसके हृदय में जितना ही करुणाभाव जागृत होगा वह उतना ही आदरणीय होगा।

हमारी चरितनायिका का करुणापूर्ण हृदय किसी भी दुःख एवं कष्ट में पड़े हुए भाई बहन को देखकर पसीज जाता था। धनी हो या निर्धन, साधारण हो या विशिष्ट, सब के लिये आपकी ओर से एक जैसी सान्त्वना प्राप्त होती थी। उनकी मधुर वाणी हर किसी के दुःख के लिए मरहम का काम देती थी।

आपने अपने जीवन में मनुष्यों पर ही नहीं, साँप जैसे क्रूर प्राणी पर भी अपार करुणा बरसाई है। आगरा में मुसलमानों के लड़कों द्वारा मारे जाते हुए साँप को बचाने की घटना आपके करुणापूर्ण हृदय का ज्वलन्तमान प्रमाण है।

शान्ति

साधक के जीवन में शान्ति का होना परमावश्यक है। वह संसार के विषय कषायों की आग में जलते व्यक्ति को वृक्ष की तरह अपनी शीतल छाया दे और उसमें शान्ति-जल छिड़क दे। हमारी चरितनायिका के मुखमण्डल पर हर समय शान्ति विराजमान रहती थी। चाहे कैसा ही क्रोधी व्यक्ति आपके निकट सम्पर्क में क्यों न आ जाता, क्षण भर में ही उसका क्रोध

रफूचक्कर हो जाता। आपकी शान्तमुद्रा को निहार कर उसका हृदय शान्ति के सरोवर में डुबकियाँ लगाने लगता। आपकी स्नेह सिक्त वाणी सुनकर अशान्त से अशान्त हृदय में शान्ति की सुनहली किरण प्रविष्ट हो जाती। रतलाम निवासी श्रीमान् सेठ वर्द्धमानजी पितलिया आपके रतलाम चौमासे में वो अक्सर कहा करते थे, 'मैं जिस दिन किसी आवेग में होता हूँ उस समय यदि आपकी शान्तमुद्रा का दर्शन कर लेता हूँ तो मेरा वह आवेग काफूर हो जाता है।"

धैर्य

सकट में पड़ कर भी धैर्य न छोड़ना मानव-जीवन का कितना महान गुण है। मनुष्य के उच्च व्यक्तित्व का पता ऊँचे धैर्य से ही लगता है। सच्चे धैर्यशाली पुरुष अपने प्रारम्भ किये हुए काम को पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं।

महासती प्रवर्तिनीजी बड़ी धैर्यशालिनी थीं। कठिन से कठिन स्थिति में भी उनका धैर्य भंग नहीं होता था। सोजत में कालज्वर फैलने पर आपके धैर्य की प्रगाढता पाठक पिछले प्रकरणों में पढ सकते हैं। इसी तरह देवगढ के जल काण्ड के समय आपका धैर्य ध्वस नहीं हुआ यह भी पिछले पृष्ठों में अङ्कित है। एक क्या ऐसे अनेक प्रसग हैं जो उनके धैर्य का उज्ज्वल चित्र उपस्थित करते हैं।

मन्दसोर की वह घटना फिर मैं स्मरण करा देता हूँ जब कि आपके पैरों में वाले का ऑपरेशन किया गया था। डाक्टर भी उस समय बेहोशी के लिए क्लोरोफॉर्म सु घाए बिना ऑपरेशन करवाते देखकर दंग रह गया और आपके महान् धैर्य की प्रशसा करने लगा।

सचमुच महासतीजी धैर्य की मूर्ति थीं। भयंकर-से-भयंकर परिषह आने पर भी उसका मन विचलित नहीं होता था। हिमालय की चट्टान क्या कभी अंधड़ के झोंकों से विचलित हुई है ?

स्वभाव की सरसता

प्रतिनायिका के कण कण में स्वभाव की सरसता एवं कोमलता रमी हुई थी। कठोर वचन बोलना शायद वे जानती ही नहीं थीं। कितना ही उत्तेजना का वातावरण हो, विरोधी चाहे कितना ही मर्यादा से बाहर होकर कहे सुने, प्रतिनायिका के हृदय की शान्ति, क्षमा और सहिष्णुता कभी भंग नहीं होती थी।

आपके मुखमण्डल पर सदा प्रसन्नता की झलक रहा करती थी। क्या परिचित और क्या अपरिचित, जो भी दर्शन करता आपके स्वभाव की सरसता और कोमलता को देख कर भक्ति से गद्‌गद हो उठता था। छोटी बड़ी सभी साध्वियों के प्रति आपका व्यवहार हमेशा मातृवत् रहता था। यही कारण है कि आप जहाँ भी गईं वहीं प्रेम का झरना बहा दिया, द्वेष और कलह की जलती हुई आग को बुझा दिया। गंगापुर में कई वर्षों से समाज में चली आई हुई दलबन्दी का एक ही बार के उपदेश से टूट जाना आपकी वाणी की सरसता का ज्वलन्त प्रमाण है। पाठक इसका विवरण पिछले पृष्ठों में देख सकते हैं।

सेवावृत्ति

सेवा की भावना तो प्रतिनायिका में कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने दीक्षा लेने के बाद लगभग १२ चौमासे तो अपनी पूजनीय वयोवृद्धा आर्या श्री बड़ी आनन्दकुमारीजी व केसरकुमारीजी आदि की सेवा में व्यतीत किए। प्रतिनायिका उनकी सेवा अटूट भक्ति-पूर्वक करती थी। यही नहीं दूसरी सम्प्रदाय की एक साध्वी के सोजत में मरणासन्न समय में आप सेवा के लिए कटिबद्ध हो गई थीं जब कि वह रुग्ण साध्वी आपके नाम से चिढ़ती थी। प्रवर्तिनी-पद प्राप्त हो जाने के बाद भी आप छोटी बड़ी साध्वियों की तबियत ठीक न होने पर कभी-कभी तो सेवा

शुश्रूषा का भार अपने ऊपर ले लेती थीं। सेवा का गुण आपके जीवन में प्रारम्भ से ही रहा। आपकी प्रकृति हमेशा विनयशील रही और सेवापरायणता में विनय की ही मात्रा अधिक होनी चाहिए। आपने अपने गृहस्थ जीवन में सेवा के कारण ससुराल और पीहर दोनों जगह प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। साध्वी जीवन में तो यह गुण और वृद्धिंगत ही हुआ।

तपस्यापरायणता

आपने अपने जीवन में लम्बी-लम्बी तपस्याएं की हैं। दीक्षा लेने के बाद जहाँ तक आपका शरीर सशक्त रहा प्राय हर साल ६ या ७ उपवास की तपश्चर्या तो किया ही करती थीं। इसके अतिरिक्त समय समय पर उपवास, बेला, तेला, एकान्तर तथा आयम्बिल तप भी बहुत किया करतीं थीं। तपस्वियों में अधिकतर क्रोध की मात्रा पाई जाती है, पर आप इसकी अपवाद थीं। आपकी तपश्चर्या सादी-सीधी बिना किसी आडम्बर के होती थी।

गुरु-भक्ति

आपमें 'गुरु-भक्ति' की मात्रा भी अत्यन्त प्रबल थी। आपके सम्प्रदाय की आद्य-प्रवर्तिनी श्री रंगूजी महासतीजी श्री तपोधनी पूज्यश्री दुल्लीचन्दजी महाराज को गुरु मानती थीं। चरितनायिका भी उन्हीं की सम्प्रदाय के परम्परागत आचार्यों को गुरुरूप में स्वीकार करतीं आई हैं। आप अपने जीवन काल में पूज्यश्री उदयसागरजी महा०, पूज्यश्री चौथमलजी महा०, पूज्यश्री श्रीलालजी महा० व पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज और उनके पट्टधर वर्तमान आचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज के दर्शन व सेवा कर चुकी थीं। वर्तमान आचार्यश्री के प्रति आपकी परम गुरु भक्ति थी। आप पूज्यश्री की आज्ञा को हर समय शिरोधार्य करतीं थीं। उनकी आज्ञा को उल्लंघन करना

आपको असह्य प्रतीत होता था। पूज्यश्री श्रीलालजी म० के संदेश से जोधपुर चातुर्मास के लिए भयंकर कष्ट उठाकर भी प्रस्थान करना, पूज्यश्री जवाहरलालजी म० के लकवे की व्याधि होने पर सुदूर मालवा प्रान्त से विहार कर देना, वर्तमान पूज्यश्री के समय में संघऐक्य की आवाज उठते ही समस्त साध्वी-संघ को पूज्यश्री का आज्ञानुवर्तिनी बना देना आदि कई घटनाएँ ऐसी हैं जो आपकी गुरुभक्ति का उज्ज्वल आदर्श हमारे सामने उप स्थित करती हैं।

उपसंहार

श्रीमती महासती प्रवर्तिनीजी उस सीमा पर पहुँची हुई साध्वी थीं जहाँ आत्मा का प्रत्येक गुण विराट् बनने की भूमिका पर होता है। उनका जीवन त्याग, तपस्या, शील, उदारता और सरलता आदि गुणों की विहारभूमि बन गया था। उनमें गीतोक्त वे दैवी सम्पत्तियाँ विद्यमान थीं, जो एक उच्चकोटि के पुरुष में हुआ करती हैं। वह महानारी एक प्रकार से कठोर-से कठोर अग्निपरीक्षा में परीक्षित महारी थीं। उनके जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा जाय वही थोड़ा है।

सम्प्रदाय में दीक्षित वर्तमान साध्वियां

क्या आपने नौका देखी है? नौका का खेवैया अगर चतुर न हो तो नौका को पानी में डुबा सकता है और साथ ही यात्रियों को भी। खेवैया (कर्णधार) अगर निपुण होता है तो वह नाव में बैठने वाले यात्रियों को सकुशल अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में हम सम्प्रदाय, संघ या धर्म को एक नौका कह सकते हैं। साधु-संघ का कर्णधार होता है—आचार्य और साध्वीसंघ की खेवैया होती है—प्रवर्तिनी। प्रवर्तिनी यदि सम्प्रदाय नौका को चलाने में कुशल और अभ्यस्त न हो तो नौका कहीं भी टकरा कर चूर-चूर हो सकती है। ऐसी टूटी-फूटी या जर्जर नौका में बैठने वाले को हर समय खतरा ही रहता है। कुशल कर्णधार न हो तो उस नौका में बैठ कर कौन अपनी जान गँवाएगा? ऐसे असावधान खेवैया की नाव में बैठ कर अभीष्ट स्थल—मोक्ष तक भी तो नहीं पहुँचा जा सकता। वह कहीं इधर उधर के वैषयिक भँवर में फँस जाती है, या किसी परिग्रहचट्टान से टकरा कर चूर्ण हो जाती है।

चरितनायिका साध्वी-संघरूप—सम्प्रदायरूप नौका को चलाने के लिये एक जागरूक खेवैया थीं। आपने अपनी सम्प्रदाय

नौका में कई साध्वियों को बिठा कर उनका कल्याण किया है और कर रही थी। परन्तु-यह ध्यान रहे कि नौका में बैठने वाले यात्रियों को भी साथ साथ सावधानी रखनी पड़ती है। यदि वे सावधानी न रक्खें और किसी प्रलोभन को देखकर बीच में ही कूदने को तैयार-हों तो, वह उनकी सफलता नहीं कहलाएगी। वह तो खेवैया को और बदनाम करने का कारण बनेगा। निष्कर्ष यह निकला कि खेवैया और यात्री दोनों को जागृत रहना है—विशेषत खेवैया को।

सम्प्रदायनौका में भी अगर अन्ट-सन्ट यात्री भर्ती कर लिये जाँय तो वे उल्टे बदनामी कराते हैं। चरितनायिका ने ऐसी अन्ट-सन्ट भर्ती नहीं की है। उन्होंने सम्प्रदाय की कर्णधारता भी स्वीकार की है तो बड़ी सावधानी के साथ। यह बात भी है कि अकेला खेवैया नाव चला कर करेगा क्या ? यात्रियों के बैठने पर नौका-प्रचालन किया जाता है। अत: यात्रियों का होना भी आवश्यक है।

वृक्ष केवल सूखा खड़ा हो, पत्ते और डालियाँ न हों तो उसका क्या मूल्य है ? कौन उसकी छाया में आकर बैठेगा? यही बात चरितनायिका के विषय में है। केवल अकेली प्रवर्तिनी बन जातीं तो कौन प्रवर्तिनी-वृक्ष की छाया में बैठता ? इसलिए पत्तों और डालियों की तरह साध्वियों की भी आवश्यकता है। चरितनायिका ने जब सम्प्रदाय की कर्णधारता स्वीकार की तब लगभग १० साध्वियाँ थीं। उसके बाद कितनी ही स्वर्गवासिनी हुई। कितनी नई दीक्षित भी हुई। इस समय सम्प्रदाय में कुल ४६ साध्वियाँ हैं। जिनका नेतृत्व आपके सुयोग्य कर-कमलों द्वारा हो रहा है। सम्प्रदाय में दीक्षित वर्तमान साध्वियों का नाम और परिचय नीचे दिया जाता है—

१ साध्वीश्री सोनाजी

श्रीमती प्रवर्तिनीजी श्रीआनन्दकुमारीजी म० की सम्प्रदाय में आजकल आप सब से बड़ी साध्वी हैं। आप बीकानेर-निवासी श्रीमान् सौभागमलजी बागा की धर्मपत्नी हैं। आपने १६ वर्ष की उम्र में सं० १६५७ मार्गशीर्ष कृ० ६ के दिन बड़े त्याग वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की। सम्प्रदाय में कोई नया नियम बनते समय आपकी सलाह ली जाती है। आपका त्याग भाव सराहनीय है। आपने श्रीमती स्व० प्रवर्तिनीजी मेयकुमारीजी की मौजूदगी में ही पौरुषीकाल से पहले आहार करने का तथा यावज्जीवन दूध पीने का त्याग कर रक्खा है। आजकल आप बीकानेर में ही स्थिर निवास कर रही हैं।

२ साध्वीश्री राजकुमारीजी

आप रतलाम निवासी श्रीमान् केसरीमलजी भण्डारी की बालब्रह्मचारिणी सुपुत्री हैं। आपने ६ साल की उम्र में अपनी माता सहित इस असार संसार को छोड़कर सं० १६६० मार्ग शीर्ष कृ० १३ को बड़े उच्चभावों से दीक्षा अङ्गीकार की। खेद है कि आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। आप दोनों को दीक्षा की आज्ञा बड़ी कठिनता से मिली। आपने जब आज्ञा माँगी, तब भुवाजी ने ऐसा षड्यन्त्र रचा कि राजकुमारीजी की गुप्त रूप से सगाई कर दी और वर पक्ष वालों को सिखा दिया कि तुम इसे बलात् पकड़ कर ले जाओ। उन्होंने ऐसा ही किया। आपको वहाँ पिंजरे में डाल कर बन्द कर दिया गया। आपकी माता से किसी ने कहा कि तुम वकील से कह कर बेटी को क्यों नहीं छुड़ा लेती ? माता को यह बात जँच गई। अदालत में दरख्वास्त देने पर कहा गया कि १८ वर्ष से पहले यहाँ दीक्षा नहीं

हो सकती। छुड़ाने के लिये बहुत प्रयत्न करने पर राजकुमारीजी को छोड़ दिया। इन दोनों को फिर स्वतन्त्र देख कर भुवाजी ने दूसरा कुचक्र करने की ठानी। उन्होंने सोचा कि महासतीजी का यहाँ से विहार होते ही ये दोनों साथ साथ दीक्षा ले लेंगी। अतः भुवाजी ने अदालत में फिर अपील की कि राजकुमारीजी को किसी हालत में अभी दीक्षा न लेने दी जाय। अदालत में माँ-बेटी दोनों को बुलाया गया। भुवाजी और राजकुमारीजी के बयान लिये गये। आखिर हाकिम ने यही फैसला दिया कि तुम अगर दीक्षा लेना चाहती हो तो रतलाम की सीमा के बाहर लेओ। तुम किसी हालत रुकने वाली नहीं हो। तुम्हारा नाम दफ्तर में दाखिल हो गया है। नहीं तो मैं स्वयं दीक्षा नहीं दिला देता। भुवाजी का जोश ठण्डा पड़ गया। आज्ञा सहर्ष दे दी। आखिर दीक्षा कालुखेड़ा से आधा कोस दूर पर श्रीपूज्यजी आर्या के कर-कमलों द्वारा हो कर रही।

दीक्षा लेने के बाद आप साधु जीवन की दैनिक क्रियाओं में बड़ी सावधानी रखती हैं। व्याख्यान अच्छा है। पुरानी बातों की धारणा अच्छी है। अनुभव भी काफी है।

३ साध्वीश्री सौभाग्यकुमारीजी

आप बड़ी-सादड़ी (मेवाड़) की निवासिनी हैं। आपने सं० १९६४ पौष कृ० ४ को भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप अल्पभाषिणी हैं। आप अकसर ज्ञानाभ्यास में ही लीन रहती हैं।

४ साध्वीश्री रत्नकुमारीजी

आप बीकानेर निवासी दानवीर सेठ भैरोंदानजी सेठिया के लघुभ्राता श्रीहजारीमलजी सेठिया की धर्मपत्नी हैं। आप गृहस्थावास में एक साधन-सम्पन्न एवं भरेपूरे परिवार की

सदस्या रही हैं। आपने संवत् १६६५ में अत्यन्त वैराग्य पूर्वक दीक्षा ग्रहण की। आप प्रकृति की शान्त एवं अल्पभाषिणी साध्वी हैं।

५ साध्वीश्री सोभागजी

आप भईसर (मेवाड़) की हैं। आपने संवत् १६६५ मार्गशीर्ष कृष्णा १० के दिन गार्हस्थ्य के घेरे को तोड़ कर साध्वी दीक्षा स्वीकार की। आप बड़ी साहसिन साध्वी हैं। व्याख्यान देना हो, गोचरी लानी हो तो आप उत्साह पूर्वक तैयार रहती हैं। आप पुराने विचार वालों को अनुकूल बनाने में सिद्धहस्त हैं। आपकी साध्वियों में 'भईसरा मैहूँ' के नाम से प्रसिद्धि है।

६ हरामजी आर्या

आप जावद निवासी श्री मच्छारामजी वंबोरिया की धर्मपत्नी हैं। आपने संवत् १९६६ ज्येष्ठ कृष्णा १ को भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप व्याख्यान देने में कुशल हैं। पुराने भजनों व स्तवनों की ओर आपकी रुचि अधिक है। आपका पुराने विचारवालों पर काफी प्रभाव है।

७ साध्वीश्री बख्तावरजी

आप जावद की रहने वाली हैं। आपने संवत् १९६६ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को संयम का मार्ग पकड़ा। आप क्षमाशीला एवं संतोषी-प्रकृति की साध्वी हैं। पुराने थोकड़े वगैरह का ज्ञान अच्छा है।

८ साध्वीश्री चम्पाकुमारीजी

आप रतलाम की रहने वाली हैं। आपने विक्रम संवत् १९६८ के मार्गशीर्ष-मास में संसार के बन्धनों को तोड़ कर

जैनेन्द्री दीक्षा धारण की। आप प्रकृति की भद्र एवं सरलात्मा आया हैं।

९ साध्वी सूरजकुमारीजी

आप रामपुरा-निवासिनी हैं। आपने विक्रम सं० १९९९ के मार्गशीर्ष मास में भवभय-भञ्जनी साध्वीदीक्षा स्वीकार की। आप कठोर-तपस्विनी साध्वी हैं। आप प्रतिवर्ष कभी मास-क्षपण, कभी अर्द्धमास क्षपण आदि तपस्यायें अक्सर करती रहती हैं। तपस्या के दिनों में आपके चित्त में ग्लानि या घबरा हट नहीं आती।

१० साध्वीश्री केशरकुमारीजी

आपका परिचय अगले प्रकरण में दिया गया है।

११ साध्वीश्री मेहताबकुमारीजी

आपका परिचय भी आगामी प्रकरण में देखें।

१२ साध्वीश्री राजकुमारीजी

आप आमुल्या की रहने वाली हैं। आपने दीक्षा ग्रहण करके शास्त्रों का अभ्यास किया है। आपको 'स्वाध्याय' करने में विशेष दिलचस्पी है।

१३ साध्वीश्री घापूजी

आप आमेट की रहने वाली हैं। आप श्रीयुत सरदार मलजी की सहधर्मिणी हैं। आप दोनों पति पत्नी ने सं० १९७२ कार्तिक शु० ७ को ब्यावर में सहर्ष दीक्षा ली। आपक पीहर वाले तेरहपन्थी हैं। आपने दीक्षा लेकर कुछ थोकड़ों का ज्ञान हासिल किया है। आपकी अभिरुचि गायनकला में अधिक है।

१४ साध्वीश्री चम्पाजी

आप मन्दसौर निवासी श्रीमान् सूरजमलजी म० की सह धर्मिणी हैं। आपने अपने पति को छोड़ कर सं० १६७३ मार्ग शीर्ष कृष्णा १२ के दिन संयम का पथ अंगीकार किया। बाद में श्री सूरजमलजी ने भी क्रियापात्र पूज्यश्री भोलालजी म० के चरणों में दीक्षा अंगीकार की। मुनिश्री सूरजमलजी म० को आपने पहले ही दीक्षा की आज्ञा दे दी। महासतीश्री चम्पाजी ने अपनी दादगुरुनी श्रीरत्नकुमारीजी आर्या की उन्मत्त अवस्था में बहुत परिचर्या की। चित्तविक्षेप होने पर सेवा करना आसान काम नहीं है। अब भी आप छोटी बड़ी साध्वियों की सेवा करती हैं। आप में नम्रता का गुण अधिक है।

१५ साध्वीश्री सुवाजी

आप ब्यावर की रहने वाली हैं। आपके पीहर वाले ओसवाल बोहरा हैं। आपने सं० १६७३ चैत्र शुक्ला ८ के दिन सांसारिक सुखों को छोड़कर वैराग्य की पवित्र पगडण्डी पकड़ी। आप सेवा के क्षेत्र में विशेष भाग लेती हैं।

१६ साध्वीश्री छोटाँजी आर्या

आप बीकानेर-वास्तव्या हैं। आपका ससुराल पारखों के यहाँ है। आपने सं० १६७१ कार्तिक शु० १३ को संयम की कठोर राह ली। आपने भीनासर में स्थिरवास विराजित वयो वृद्धा श्रीमती कालीश्री आर्या की अन्तिम समय तक अच्छी सेवा बजाई है।

१७ साध्वीश्री सुगनकुमारीजी

आप ब्यावर निवासी श्रीमान् गुलाबचन्दजी मक्काणा की बालब्रह्मचारिणी सुपुत्री हैं। आपको आपकी माता भी राज

कुँवरबाई ने १५ साल की उम्र में ही दीक्षा के लिए आज्ञा दे दी थी, परन्तु आपके काकाजी फूलचन्दजी को यह बात असह्य मालूम पड़ी। उन्होंने अजमेर-मेरवाड़ा राज्य की सरकार में इन की दीक्षा के बाबत में रिपोर्ट की। अजमेर के छोटे-साहब ने आपको न्यायालय में बुलाया। उस समय कनकमलजी लोढ़ा तथा राजमलजी लोढ़ा आदि भाई आपके मददगार थे। वे आप को तथा आपकी माताजी को लेकर कचहरी में पहुँचे। वहाँ छोटे साहब ने आपके बयान लिये। पूछा-'तुम अपने आप ही वैराग्य से दीक्षा ले रही हो या किसी की बहकावट में आकर ?' आपने कहा-'मैं अपनी इच्छा से दीक्षा ग्रहण कर रही हूँ, मुझे किसी ने बहकाया नहीं है। उन्होंने यह सुना तो वे अत्यन्त खुश हुए और दीक्षा के लिए हुक्म दे दिया। श्रीचाँदमलजी ढड्ढा ने खुश होकर आपके दीक्षा-महोत्सव में अपनी ओर से अजमेर से बैंड बाजा भेजा। सं० १६७६ भाद्रपद कृष्णा ५ के दिन बड़ी धूमधाम से आपकी दीक्षा हुई। आपने दीक्षा लेने के बाद करीब ८ शास्त्र कण्ठस्थ किये हैं। संस्कृत-व्याकरण में आपने लघुकौमुदी का अध्ययन किया है। थोकड़े व शास्त्रीय अभ्यास अच्छा है। प्रति दिन यथासमाधि नन्दीसूत्र, दशवैकालिक, सुखविपाक, अनुत्तरो पपातिक आदि कई आगमों का स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा है। आप शान्त एवं सौम्य प्रकृति की साध्वी हैं। सेवाभाविनी और परिश्रमनिष्ठा आर्या हैं। आपकी व्याख्यान-शैली भी अच्छी है। संयम की ओर अच्छा लक्ष्य है।

१८ साध्वीश्री सरजूजी

आप बीकानेर की रहने वाली हैं। आपने विक्रम संवत् १६७८ ज्येष्ठ शु० ७ के दिन मेरे हाथ से दीक्षा धारण की। आप सेवा भाविनी साध्वी हैं। आप विशेषतः ज्ञान ध्यान सीखने में ही तल्लीन रहती हैं।

१६ साध्वीश्री जड़ावजी

आप बीकानेर निवासी श्रीयुत् हस्तिमलजी कोचर की धर्मपत्नी हैं। आपने वि० सं० १६७८ में गृहस्थ के प्रपञ्चों से मुक्त होकर भगवती दीक्षा धारण की। आप सम्प्रदाय में काफी वृद्ध सती हैं। आपके शरीर में अशक्ति होते हुए भी आप भिक्षाचरी के लिये स्वयं जाती हैं।

२० साध्वीश्री दाखबाईजी

आपका परिचय अगले प्रकरण में देखें।

२१ साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी

आपका परिचय आगामी प्रकरण में दिया गया है।

२२ साध्वीश्री मैंनाकुमारीजी

आपका भी परिचय 'शिष्या परिवार' में है।

२३ साध्वीश्री गट्टूजी

आप निम्बाहेड़ा निवासी श्री किरणमलजी सिंघी की धर्मपत्नी हैं। आपने अपने प्रिय पुत्र समीरमलजी को दीक्षा देकर सं० १६८२ माघ शु० ५ को संसार के बन्धनों को छोड़कर जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। आपका स्वभाव अच्छा है। सेवा का गुण भी है।

२४ साध्वीश्री सरदारजी

आप उदयपुर निवासिनी हैं। आपने सं० १६८२ ज्येष्ठ कृ० १३ को इस असार संसार के प्रपञ्च से रहित होकर भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप सेवा के क्षेत्र में रस लेती हैं।

कुँवरबाई ने १५ साल की उम्र में ही दीक्षा के लिए आज्ञा दे दी थी, परन्तु आपके काकाजी धूलचन्दजी को यह बात असह्य मालूम पड़ी। उन्होंने अजमेर-मेरवाड़ा राज्य की सरकार में इस की दीक्षा के बाबत में रिपोर्ट की। अजमेर के छोटे-साहब ने आपको न्यायालय में बुलाया। उस समय कनकमलजी बोहरा तथा रतनमलजी लोढ़ा आदि भाइ आपके मददगार थे। वे आप को तथा आपकी माताजी को लेकर कचहरी में पहुँचे। वहाँ छोटे साहब ने आपके बयान लिये। पूछा-'तुम अपने आप ही वैराग्य से दीक्षा ले रही हो या किसी की बहकावट में आकर ?' आपने कहा-'मैं अपनी इच्छा से दीक्षा ग्रहण कर रही हूँ, मुझे किसी ने बहकाया नहीं है। उन्होंने यह सुना तो वे अत्यन्त खुश हुए और दीक्षा के लिए हुक्म दे दिया। श्रीचाँदमलजी ढढ्ढा ने खुश होकर आपके दीक्षा-महोत्सव में अपनी ओर से अजमेर से बैंड बाजा भेजा। सं० १९७६ भाद्रपद कृष्णा ५ के दिन बड़ी धूमधाम से आपकी दीक्षा हुई। आपने दीक्षा लेने के बाद करीब ८ शास्त्र कण्ठस्थ किये हैं। संस्कृत-व्याकरण में आपने लघुकौमुदी का अध्ययन किया है। थोकड़े व शास्त्रीय अभ्यास अच्छा है। प्रति दिन यथासमाधि नन्दीसूत्र, दशवैकालिक, सुखविपाक, अनुत्तरो पपातिक आदि कई आगमों का स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा है। आप शान्त एवं सौम्य प्रकृति की साध्वी हैं। सेवाभाविनी और परिश्रमनिष्ठा आर्या हैं। आपकी व्याख्यान शैली भी अच्छी है। संयम की ओर अच्छा लक्ष्य है।

१८ साध्वीश्री सरजूजी

आप बीकानेर की रहने वाली हैं। आपने विक्रम संवत् १९७८ ज्येष्ठ शु० ७ के दिन सैनेवड़ी दीक्षा धारण की। आप सेवा भाविनी साध्वी हैं। आप विशेषतः ज्ञान ध्यान सीखने में ही तल्लीन रहती हैं।

१६ साध्वीश्री अछावजी

आप बीकानेर निवासी श्रीयुत् हस्तिमलजी कोचर की धर्मपत्नी हैं। आपने वि० सं० १६७८ में गृहस्थ के प्रपञ्चों से मुक्त होकर भगवती दीक्षा धारण की। आप सम्प्रदाय में काफी वृद्ध सती हैं। आपके शरीर में अशक्ति होते हुए भी आप भिक्षाचरी के लिये स्वयं जाती हैं।

२० साध्वीश्री दाखबाईजी

आपका परिचय अगले प्रकरण में देखें।

२१ साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी

आपका परिचय आगामी प्रकरण में दिया गया है।

२२ साध्वीश्री मैंनाकुमारीजी

आपका भी परिचय 'शिष्या परिवार' में है।

२३ साध्वीश्री गट्टूजी

आप निम्बाहेड़ा निवासी श्री किरतमलजी सिंघी की धर्मपत्नी हैं। आपने अपने प्रिय पुत्र समीरमलजी को दीक्षा देकर सं० १६८२ माघ शु० ५ को संसार के बन्धनों को छोड़कर जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। आपका स्वभाव अच्छा है। सेवा का गुण भी है।

२४ साध्वीश्री सरदारजी

आप उदयपुर निवासिनी हैं। आपने सं० १६८२ ज्येष्ठ कृ० १३ को इस असार संसार के प्रपञ्च से रहित होकर भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप सेवा के क्षेत्र में रस लेती हैं।

४७ साध्वीश्री धापामकुमारीजी, ४८ साध्वीश्री सूयकुमारीजी,
४९ साध्वीश्री फूलकुमारीजी, ५० साध्वीश्री भ्रमरकुमारीजी, ५१
साध्वीश्री सम्पतकुमारीजी, (जावरावाली) ५२ साध्वीश्री सायर
जी, (राणावासवाली) ५३ साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी, (राणा
वास वाली) साध्वीश्री गुलाबकुमारीजी, (उदयपुर वाली) ५५
साध्वीश्री रत्नकुमारीजी, (उदयपुर वाली) ५६ साध्वीश्री सायर
कुमारीजी, (ब्यावरवाली) ।

उपर्युक्त सभी सतियों के सम्बन्ध में 'वर्तमान शिष्या परिवार
नामक प्रकरण में लिखा गया है। पाठक वहीं पर देख लें।

इस प्रकार श्रीमती प्रवर्तिनीश्री आनन्दकुमारीजी के नेतृत्व
में सम्प्रदाय में दीक्षित वर्तमान में' ५६ साध्वियाँ हैं। ये सब
प्रवर्तिनीजी की आज्ञा से चातुर्मास करती हैं।

प्राचीन काल में भी इस सम्प्रदाय में कई भाग्यशालिनी,
तपस्विनी व कठोर क्रियाकाण्डी साध्वियाँ हो चुकी हैं। उनमें
श्रीमती वरदूजी आर्या का नाम उल्लेखनीय है। आप चरितना
यिका की मासी गुरानी थीं। आप कोटावट की रहने वाली
थी। माता-पिता ने करीब ६ साल की उम्र में आपकी शादी
कर दी थी। दैवयोग से पति का अल्प समय में देहावसान
होगया। आपने ससुरालवालों से कठिनता-पूर्वक आज्ञा ग्रहण
कर साध्वीश्री मेहताबकुमारीजी (जयपुरवाली) के चरणों में
दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेने के बाद आपने बड़ी बड़ी लम्बी
तपस्याएँ की। संवत् १९६० में आपका चातुर्मास जावरा था।
चरितनायिका का चातुर्मास था—अजमेर। श्रीमती वरदूजी ने
चौमासे में ६२ दिन की (लगातार) तपस्या की। तपस्या में
शारीरिक व दैनिक संयमकार्य सभी अपने हाथों से ही करती
थीं। पारणे के दिन आप स्वयं झोली लेकर भिक्षाचरी के लिए

निकलीं। लोगों का प्रेमाग्रह कम नहीं था। सभी अपने यहां खींच-खींच कर गोचरी के लिए लजाने लगे। आपके क्रमश प्रायेण प्रत्येक घर से थोड़ा-थोड़ा आहार लेकर सबको संतुष्ट किया। साथ ही कई भाई बहिनों को हरी सब्जी खाने, चौविहार पालन करने, कच्चा जल न पीने तथा ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने की यावज्जीव तक प्रतिज्ञाएँ कराई। कितने ही लोगों ने विभिन्न नियम, व त्याग लिए। घर घर घूमते हुए करीब ४ बज गये थे। इधर भिक्षाचरी में समय अधिक होजाने से सभी पदार्थ ठण्डे होगए थे, तो भी पारणा करते समय मन में ग्लानि न लाई। उन्हीं ६२ दिनों में आपकी शिष्या रत्नकुमारीजी आर्या ने भिक्षाचरी के समय आई हुई सभी चीजों को एक ही पात्र में मिश्रित कर भोजन करने का नियम कर लिया था। इसी तरह श्रीमती वरदूजी आर्या ने एक समय बीकानेर में ८२ उपवास किये। उस समय उन्होंने ८२ दिनों के लिए निम्न प्रतिज्ञा अङ्गीकार की—"दिन व रात्रि में शयन न करना। शरीर में खाज चले तो खुजलाना नहीं, मुख से खों-खों करते हुए थूकना नहीं।"

इतनी भयंकर तपस्या का नाम सुनते ही लोगों के रोंगटे खड़े होगए। सभी ने धन्यवाद दिया। इस दीर्घ तपस्या के बाद थोड़े ही दिनों में आपने शुद्ध भाव से अनशन करके देहोत्सर्ग किया।

पाठक सोच सकते हैं कि चरितनायिका का अधीनस्थ सम्प्रदाय त्याग और तपस्या में कितना आगे बढ़ा हुआ है ?

वर्तमान-शिष्या-परिवार

महान् व्यक्ति के जीवन की महत्ता केवल अपने तक ही सीमित नहीं होती। वह अपने पारिपार्श्विक जन-समूह में एव आने वाली परम्परा में प्रतिबिम्बित होती है। चरितनायिका का जीवन केवल स्वकल्याण तक ही सीमित नहीं रहा है आपका काम संसार की मोहाग्नि की लपटों से, घबराई हुई व आत्मकल्याण लिप्सु जैन समाज की कन्याओं को दीक्षा देकर उन्हें सन्मार्ग पर चलाने का भी रहा है। आपके जीवन की सरलता और मधुरता की छाप आपकी कई शिष्याओं पर इस प्रकार की लगी है कि वे भविष्य में अपनी गुरुनी की महत्ता को सुरक्षित रखन एव परिवर्द्धित करने में सफल होंगी।

१ केशरकुमारीजी आर्या

आप सोजत के प्रसिद्ध शासक श्रावक शाहजीमो इन्द्रमल जी के भतीजे श्रीमान् कमकमलजी की धर्मपत्नी हैं। आपने विक्रम सं० १९७० चैत्र कृ० १० के दिन दीक्षा ग्रहण की और तब से संयम-साधना के पथ पर बढ़ी जा रही हैं। आप बड़ी सरल स्वभाविनी हैं। आपके जीवन में सेवा का गुण अधिक है। क्षमा शीलता भी है। आप इस समय अस्वस्थ हैं। साध्वियों से सेवा लेने में आपको बड़ा संकोच आता है। आप कई वर्षों तक चरितनायिका के साथ रहीं हैं।

२ साध्वीश्री मेहतावकुमारीजी

आप पिपाड़ निवासी श्रीयुत अमरचन्दजी मेहता की धर्म पत्नी हैं। आपने वि० सं० १६७१ फाल्गुन कृ० ७ के दिन दीक्षा ग्रहण की। आप वयोवृद्धा साध्वी हैं। इस समय आपकी आँखों की रोशनी चली गई है। आपको श्रीमती चरितनायिका की छत्र छाया में रहने का सब से अधिक सौभाग्य मिला है। आप चरितनायिका की कृपापात्र साध्वी हैं। जब कभी कोई साम्प्रदायिक समस्या आती है तो आप से सलाह ली जाती है। आपने अपने जीवन में १ मास तक की तपस्या की है।

३ साध्वीश्री दाखबाईजी

आप सोजत निवासिनी हैं। आपने अपने पति मोकिशनमलजी मांडोत से बड़ी कठिनता से आज्ञा प्राप्त की, और संसार के विद्यमान सुखों को छोड़कर सं० १६७६ मार्गशीर्ष कृ० ७ को बड़े त्यागभाव से दीक्षा अंगीकार की। आपने दीक्षा लेकर आगमों का अभ्यास किया। वास्तव में आप द्राक्षा के समान ही मधुर व मृदु प्रकृति की हैं। सेवा का कोई काय हो तो आप सहर्ष तैयार रहती हैं। आपने दीक्षा लेकर चरितनायिका से अलग चातुर्मास भी किये हैं। धम-प्रचार करने में काफी उत्साह दिखाया है।

४ साध्वीश्री नगीनाकुमारीजी

आप छोटी-सादड़ी निवासी श्रीमान भमकलालजी कटारिया की धर्मपत्नी हैं। आपने सं० १६८१ आषाढ़ शु० २ के दिन मन्दसौर में दीक्षा ग्रहण की। आप एक विदुषी सती हैं। गायन कला पर भी आप आधिपत्य रखती हैं।

आपने दीक्षा लेकर आगमों का अभ्यास किया है। संस्कृत और हिन्दी भाषा पर भी आपका काफी अधिकार है।

आपकी व्याख्यान शैली बड़ी रोचक और प्रभावोत्पादक है। आपके द्वारा मेवाड़, मालवा आदि क्षेत्रों में धर्म का सुन्दर प्रचार हुआ है। कई जगह संघ में पड़ी हुई फूट को मिटाने में आपका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

५ साध्वीश्री मैनाकुमारीजी

आप चौंदवा निवासी चुन्नीलालजी बाफणा की धर्मपत्नी हैं। आपने वि० सं० १९८१ की चैत्र शु० ९ को भगवती दीक्षा स्वीकार की। आप बड़ी सरलस्वभाविनी साध्वी हैं। चरितनायिका व सभी साध्वियों को निद्रा आ जाने पर भी आपकी निद्रा इतनी हल्की है कि थोड़ा-सा खटका होते ही भंग हो जाती है। और रात्रि की परिचर्या का कार्य प्रायः आप ही करती हैं। ज्ञानाभ्यास के साथ-साथ आप यथावसर लम्बी तपस्या भी करती रही हैं।

६ साध्वीश्री श्रेयःकुमारीजी

आप सोजत श्रीयुत गुलाबचन्दजी रयाटिया की धर्मपत्नी हैं। आपने वि० सं० १९८४ वैशाख शु० ५ को दीक्षा ग्रहण की। आप संयम लेकर तपस्या भी करती रही हैं। आपको नन्दीसूत्र का स्वाध्याय में विशेष रुचि है। स्वाध्याय ऐसे ढंग से करती हैं, कि श्रोताओं का चित्त रञ्जित कर देती हैं। आप नवीनवस्त्र अपने उपयोग में बहुत कम लेती हैं।

७ आर्याश्री रसालबाईजी

आप किशनगढ़-निवासिनी हैं। आप अजमेर निवासी श्रीमिश्रीमलजी लोढ़ा की भतीजी हैं। और साध्वीश्री छोटाँजी की सांसारिक पक्ष की सहोदर भगिनी हैं। आपने सं० १९९० चैत्र कृ० १ को दीक्षा अंगीकार की। तब से आप प्रायः ज्ञानाभ्यास

करने में ही रस रखती हैं। ज्ञान-ध्यान के साथ साथ व्याख्यान देने और भजन, संगीत में आपको काफी रस है।

८ साध्वीश्री सुगुनकुमारीजी

आप रतलाम निवासी श्रीचाँदमलजी फिरोदिया की सुपुत्री व केसरीमलजी मुणोत की धर्मपत्नी हैं। आपने १६ साल की वय में वि० सं० १६६० कार्तिक शु० १५ के दिन बड़े तीव्र वैराग्य से दीक्षा ली। दीक्षा लेने से पहले आपने श्रीयुत बालचन्दजी श्रीश्रीमाल के पास कई शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। आपका आगमिक ज्ञान अच्छा है। हिन्दीभाषा पर भी अच्छा अधिकार है। आप बड़ी ही विनयशीला एवं सेवाभाविनी साध्वी हैं। कई वर्षों से आप वृद्धा चरित्रनायिका की परिचर्या में जुटी हुई हैं। आपकी ज्ञान पिपासा अब भी जागृत है। व्याख्यानशैली बड़ी सरस है। जीवन-चरित्र लिखने में आपकी काफी सहायता रही है।

६ पानकुमारीजी आर्या

व

१० मनोहरकुमारीजी आर्या

आप दोनों ही उदयपुर निवासी श्रीमान् भेरारामजी हिंगड़ की बालब्रह्मचारिणी सुपुत्रियाँ हैं। आप दोनों सहोदर बहनें होने के साथ-साथ अध्ययन में एकसी रुचि रखती हैं। आप दोनों ने वि० स० १६६१ चैत्र शु० १३ को छोटी उम्र में वैराग्य पूर्वक दीक्षा अंगीकार की। आप दोनों साध्वियाँ संस्कृत भाषा पर अधिकार रखती हैं। दोनों की व्याख्यान शैली सुन्दर है। शास्त्रीय ज्ञान की जिज्ञासा भी काफी है। प्रकृति में कोमलता है।

११ साध्वीश्री सम्पतकुमारीजी

आप रतलामनिवासी श्रीऋषभचन्दजी शिशोदिया की अविवाहित सुपुत्री है। आपकी दीक्षा सं० १६६२ चैत्र शु० ६ को सम्पन्न हुई। आप विनयशीला और आज्ञाकारिणी हैं। आप भी कई वर्षों से चरितनायिका की सेवा में रह रही हैं। आपने हिंदी का मध्यमा तक अध्ययन किया है। शास्त्रीय अभ्यास भी अच्छा है। आपकी अभिरुचि आधुनिक ग्रन्थों की ओर विशेष है। आपका व्याख्यान भी बड़ा रुचिकर होता है। आप उदार विचारों की अध्ययन शीला साध्वी हैं। जीवन चरित्र की घटना वलियों को संगृहीत करने में आपका प्रयत्न सराहनीय रहा है।

१२ साध्वीश्री गुलाबकुमारीजी

आप जावरोद निवासी श्रीमान् प्यारचन्दजी मेहता की सुपुत्री हैं। सं० १६६२ वैशाख कृ० ६ के दिन आपने वैराग्यभाव से दीक्षा ली। आप सेवाभाविनी और विद्याभिलाषिणी साध्वी हैं। आप व्याख्यान देने में पटु हैं। गायनशैली भी सुन्दर है। आपने हिन्दी भाषा का मध्यमान्त अध्ययन किया है। नवीन भजन तथा शास्त्रीय थोकड़े आदि सीखने में आपका अच्छा उत्साह है। जीवन-चरित्र के काय में भी आपने सहयोग दिया है।

१३ साध्वीश्री राजकुमारीजी

आप बीकानेर निवासी श्री चौथमलजी म० की सहधर्मिणी हैं। आप दोनों पति-पत्नी ने वि० सं० १६६६ ज्येष्ठ शु० ३ को साथ-साथ ही बड़े वैराग्यभाव से दीक्षा ग्रहण की। आप सेवाभाविनी हैं। दीक्षा लेकर आप अधिकतर तपश्चर्या में ही अपनी आत्मा को रमा रही हैं।

१४ श्री धापूजी आर्या

आप मीनासर निवासी रामलालजी बाँठिया की धर्मपत्नी और श्री बींजराजजी पटवा की सुपुत्री हैं। आपने सं० १६६८ भाद्रपद कृष्णा ११ को दीक्षा अंगीकार की। आप एक साधन सम्पन्न एवं भरे पूरे परिवार की सदस्या रही हैं। आपके ससुराल वाले समण्यान एवं संघ के कार्यों में काफी भाग लेते हैं। दीक्षा लेने के बाद शास्त्राध्ययन की ओर आपकी रुचि विशेष रहती है।

१५ श्री कुँकुबाईजी आर्या

आप देवगढ़ निवासी श्रीचौथमलजी गाँधी की पुत्रवधू हैं। आपका परिवार देवगढ़ में प्रतिष्ठासम्पन्न है। आपने सं० १६६८ मार्गशीर्ष शु० १ को अपने छोटे पुत्र को छोड़ कर भगवती दीक्षा स्वीकार की। आप अध्ययनशीला साध्वी हैं।

१६ साध्वीश्री पेंपजी

आप बीकानेर निवासिनी हैं। आप बीकानेर के श्रीभँवरलालजी नाहटा की धर्मपत्नी व श्रीसोहनलालजी कोठारी की सुपुत्री हैं। आपने सं० १६६६ ज्येष्ठ कृ० ७ को भगवती दीक्षा अंगीकार की। आपकी व्याख्यान शैली अच्छी है। प्रकृति शान्त व सौम्य है।

१७ साध्वीश्री नानूजी

आप बीकानेर मण्डलान्तर्गत देशनोक के श्रीयुत सूरजमलजी बोथरा की धर्मपत्नी हैं, और श्री किशनलालजी बाफणा की सुपुत्री हैं। आपने वि० सं० १६६६ आषाढ़ शु० ३ के दिन बड़े वैराग्यभाव से दीक्षा ली। आपने दीक्षा लेकर ज्ञानध्यान में

काफी प्रगति की है। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी रोचक है। आप इस समय संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन कर रही हैं।

१८ साध्वीश्री लाडबाईजी

आप श्रावक श्री हीरालालजी मुकीम बीकानेरवालों के सहोदर भ्राता श्रीजेठमलजी मुकीम की धर्मपत्नी हैं। आपने सं० २००० चैत्र कृ० १० के दिन उच्च परिणामों से दीक्षा ग्रहण की। आप एक भरेपूरे घर की सदस्या रही हैं। आपकी अभिरुचि थोकड़े व शास्त्रीय अभ्यास करने में अधिक है।

१९ साध्वीश्री धापूबाईजी

आप धकारड़ा निवासी श्रीप्यारचन्दजी कोठारी की धर्म पत्नी हैं। आप श्रद्धेय मुनिश्री नानालाल महाराज के सांसारिक पक्ष की सहोदर बहन हैं। आप भद्र प्रकृति की, आत्मार्थिनी साध्वी हैं। आपने सं० २००१ चैत्र शु० १ को दीक्षा ग्रहण की।

२० साध्वीश्री बादामकुमारीजी

आप ब्यावर निवासी श्रीमान् मिश्रीमलजी बोसी की धर्म पत्नी हैं। आपने बड़े परिश्रम से अपने ससुराल वालों से आज्ञा प्राप्त कर सं० २००१ मार्गशीर्ष शु० १२ को दीक्षा अंगीकार की। आप सेवाभाविनी साध्वी हैं। दीक्षा लेने के बाद कई थोकड़ों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है

२१ साध्वीश्री सूर्यकुमारीजी

आप बरसावल निवासी श्रीमान घेवरचन्दजी सोनी की धर्मपत्नी हैं। आपने वि० सं० २००२ माघ शु० १३ के दिन दीक्षा ग्रहण की। आपने हिन्दी भाषा का मध्यमान्त अध्ययन किया है। आप एक अध्ययननिष्ठा साध्वी हैं। नवीनज्ञान सीखने की रुचि

अच्छी है। व्याख्यान भी ठीक है। आप आजकल संस्कृत भाषा अध्ययन कर रही हैं। प्रकृति बड़ी शान्त है।

२२ आर्याश्री फूलकुमारीजी

आप सवाई माधापुर के श्रीयुत नरसिंहजी की धर्मपत्नी तथा श्रीमान् बजरंगजी की सुपुत्री हैं। आपने सं० २००३ चैत्र शु० ६ को दीक्षा ग्रहण की। आप शान्त प्रकृति की अध्ययनशीला साध्वी हैं। आप अभी हिन्दी भाषा का अध्ययन कर रही हैं।

२३ साध्वीश्री अमरकुमारीजी

आप बीकानेर निवासी श्रीमान् नथमलजी बाँठिया की धर्मपत्नी हैं। आपने सं० २००३ वैशाख कृ० १० के दिन भगवती दीक्षा स्वीकार की। आप एक विद्याभिलाषिणी साध्वी हैं। आपने *सिद्धान्त चन्द्रिका आदि संस्कृत के ग्रन्थों का अध्ययन* किया है। अभी जैनन्याय पढ़ रही हैं। प्रकृति शांत व सौम्य है।

२४ साध्वीश्री सम्पत्कुमारीजी

आप मावरा निवासी श्रीमान् मिसरीलालजी बोहरा की सुपुत्री व श्री मकनलालजी भीमाल की धर्मपत्नी हैं। आपने सं० २००३ आषाढ़ कृ० १० को भगवती दीक्षा अंगीकार की। आपके चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता रहती है। साधु जीवन पाकर आपने काफी प्रगति की है। हिन्दी भाषा का मध्यमान्त अध्ययन किया है। आपका व्याख्यान देने का ढंग भी ठीक है। आप अभी संस्कृत भाषा का अध्ययन कर रही हैं। प्रकृति शान्त है।

२५ साध्वीश्री सायरकुमारीजी

आप *राजावास निवासी श्रीयुत शोभमलजी गाँधी* की सुपुत्री हैं। आपने सं २००३ में दीक्षा अङ्गीकार की। त्यागभाव अच्छा है। आपकी रुचि थोकड़े वगैरह सीखने की ओर अच्छी है।

२६ साध्वीश्री नगीनकुमारीजी

आप राणावास निवासी श्री दौलतरामजी कटारिया के साले श्रीमान् गुलाबचन्दजी की धर्मपत्नी हैं। आपने सं० २००५ मार्ग शीर्ष शु० ५ को दीक्षा अंगीकार की। आपकी रुचि अध्ययन की ओर विशेष है।

२७ साध्वीश्री गुलाबकुमारीजी

आप उदयपुर के श्रीमान् पन्नालालजी धर्मावत की सुपुत्री और श्रीयुत सज्जनसिंहजी खेमसीबाला की धर्मपत्नी हैं। आपके साधन-सम्पन्न प्रतिष्ठित परिवार की साध्वी हैं। आपने सं०२००६ में बड़े उत्साह से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय आपने बहुत-सा द्रव्य त्याग कर अपना सच्चे वैराग्य को प्रदर्शित किया है। आप शास्त्रीय अध्ययन करती हैं।

२८ साध्वीश्री रत्नकुमारीजी

आप भी उदयपुर निवासी श्रीयुत फूलचन्दजी की सुपुत्री हैं। तथा श्रीमान् तजसिंहजी रांका की धर्मपत्नी हैं। आपने ता० २५ ४ ५० को प्रात काल १० बजे भगवती दीक्षा अंगीकार की। आपको दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने मे बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा। आप अभी अध्ययन कर रही हैं। आपने दीक्षामहोत्सव के अवसर पर अपनी ओर से स्थानीय पौषधशाला में १००१) रु० दान देने की जाहिरात की थी। आपकी ममत्व त्याग की यह वृत्ति प्रशसनीय है।

२९ साध्वीश्री सायरकुमारीजी

आप ब्यावर निवासी श्रीमान् मिश्रीलालजी गुलेछा की सुपुत्री तथा मिश्रीमलजी कोठारी की पुत्रवधू हैं। आपके पति का

नाम श्री शान्तिलालजी कोठारी था। आपने गृहस्थ-जीवन में ही हिन्दी भाषा का मध्यमापर्यन्त अध्ययन किया है। और परिहनायिका स 'संझाओयणा' आदि कई थोकडे सीखे हैं। आप करीब ८ वर्षों तक दीक्षा की आज्ञा न मिलने के कारण वैरा ग्यावस्था में रहीं। और सं० २००८ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को ब्यावर में ही आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। आप अध्ययनशीला साध्वी हैं। व्याख्यान देने का ढंग भी अच्छा है। इस समय आप संस्कृत भाषा का अध्ययन कर रही हैं।

इस तरह आपके निश्राय में वर्तमान साध्वियाँ २६ हैं। भूतकाल में जिन शिष्याओं का देहावसान होगया है, उन्हें मिलाकर जोड़ लगावें तो करीब ४० साध्वियाँ आपकी निश्राय में दीक्षित हो चुकी हैं। वर्तमान शिष्याओं के साथ आपका माता-पुत्री का सा सम्बन्ध है। सभी शिष्याएँ आपको उच्च दृष्टि से देखती हैं।

चातुर्मास तथा संक्षिप्त परिचय।

श्रीमती महासती प्रवर्तिनीश्री आनन्दकुमारीजी ने दीक्षा ग्रहण करने के बाद निम्नलिखित क्षेत्रों में चातुर्मास व्यतीत किये:—

संख्या	संवत्	क्षेत्र का नाम
१	१९५१	बिलाड़ा (मारवाड़)
२	१९५२	जावरा (मालवा)
३	१९५३	प्रतापगढ़ (मालवा)
४	१९५४	विनोता
५	१९५५	प्रतापगढ़
६	१९५६	सोजत
७	१९५७	जेठाणा
८	१९५८	जयपुर
९	१९५९	अजमेर
१०	१९६०	अजमेर
११	१९६१	अजमेर
१२ से २१ तक	१९६२ से १९७१ तक	सोजत
२२	१९७२	पीँदला
२३	१९७३	कोशाणा
२४	१९७४	जोधपुर
२५	१९७५	सोजत
२६	१९७६	जावरा

संख्या	संवत्	क्षेत्र का नाम
२७	१९७७	छोटीसादड़ी
२८	१९७८	जयतारण
२९	१९७९	ब्यावर
३०	१९८०	रतलाम
३१	१९८१	बदनावर (मालवा)
३२	१९८२	निम्बाहेड़ा
३३	१९८३	मन्दसौर
३४	१९८४	बालोतरा (मारवाड़)
३५	१९८५	बीकानेर
३६	१९८६	चुरू
३७	१९८७	अजमेर
३८	१९८८	जावरा
३९	१९८९	उदयपुर
४०	१९९०	रतलाम
४१	१९९१	जावरा
४२	१९९२	गंगापुर
४३	१९९३	सोजत
४४	१९९४	जयतारण
४५	१९९५	जयपुर
४६	१९९६	चित्तौड़गढ़
४७	१९९७	जावरा
४९	१९९८	ब्यावर
५०	१९९९	मावद
५०	२०००	देवगढ़

५१ से ५७ तक २००१ से २००७ तक ब्यावर

(शारीरिक अशक्ति एवं वृद्धावस्था के कारण स्थिरनिवास।)

संक्षिप्त परिचय

जन्म—	संवत् १९३२ भाद्रपद शु० ५
जन्मभूमि—	सोजत शहर (मारवाड़)
माता—	श्रीअमृतकुंवरबाई
पिता—	श्रीकिशनमलजी सिंघी
जाति—	ओसवाल
पति—	श्रीलछमणदासजी मुथा
श्वसुर—	श्रीशंकररावजी मुथा
दीक्षा—	संवत् १९५० पौष कृ० त्रयोदशी
दीक्षाभूमि—	सोजत शहर (मारवाड़)
गुरुनी—	श्रीमती लक्ष्मीकुमारीजी
सखी सहायिकाबहन—	फूलकुंवरबाई
प्रवर्तिनीपद—	संवत् १९७८
प्रवर्तिनी पद भूमि—	ब्यावर
प्रथम शिष्या—	साध्वीश्री मूलीबाई
स्थिर-निवास—	ब्यावर
देहावसान—	ब्यावर, वि० सं० २००८ वैशाख शु० १२

॥ समाप्त ॥